धातुपाठों में अर्थनिर्देश

डॉ॰ माया ए॰ चैनानी

धातुपाठों में अर्थनिर्देश

लेखिका
डॉ० माया ए० चैनानी

विद्यानिधि प्रकाशन
दिल्ली

प्रकाशक :

विद्यानिधि प्रकाशन

डी० १०/१५४८, खजूरी खास

(समीप श्री महागौरी मन्दिर)

दिल्ली-११००९४

वितरक : बुक्स एशियाटिका, RP/19, मौर्य एन्क्लेव,
पीतमपुरा, दिल्ली-११००३४

प्रथम संस्करण : १९९५

मूल्य : रु० ३००.००

मुद्रक :

चौहान प्रिन्टर्स, बी-७२/१६ ए, गली मन्दिर वाली, उत्तरी घोण्डा, दिल्ली-५३

समर्पण

पूज्या श्वश्रू (श्रीमती पुष्पा चैनानी), पति श्री अशोक चैनानी, आयुष्मान् पुत्र अवि तथा आयुष्मती पुत्री अन्जु को कार्तिक पूर्णिमा वि०स० २०५१ पर सादर, सस्नेह ।

प्राक्कथन

डॉ० माया चैनानी द्वारा लिखित **धातुपाठों में अर्थनिर्देश** ग्रन्थ को विद्वानों से परिचित कराते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही हैं। डॉ० चैनानी ने बड़े श्रम एवं मनोयोग से इस ग्रन्थ को तैयार किया है। वस्तुत: यह दिल्ली वि०वि० की १९७७ में पी-एच्०डी० उपाधि के लिये स्वीकृत शोधप्रबन्ध का प्रकाशित रूप है।

पाणिनीय अथवा अन्य आचार्यों के द्वारा प्रोक्त धातुपाठ यद्यपि पञ्चाङ्ग व्याकरण के अन्तर्गत एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है, पुनरपि धातुपाठों को विषय बनाकर किये गये शोध सीमित ही हैं।

प० भगीरथप्रसाद त्रिपाठी द्वारा रचित पाणिनीय धातुपाठसमीक्षा, धात्वर्थ-विज्ञानम् तथा (शोधलेख) अनेकार्था हि धातव:; अभिनवपाणिनि प० चारुदेव शास्त्रीविरचित (शोधलेख) पाणिनीये धातुपाठेऽर्थनिर्देश:, प० युधिष्ठिर मीमांसक द्वारा प्रणीत काशकृत्स्नधातुव्याख्यानम्, श्री जी०बी० पलसुले का—द संस्कृत धातुपाठाज़—ए क्रिटिकल स्टडी, श्रीशचन्द्र चक्रवर्ती द्वारा सम्पादित धातुप्रदीप, ह्विटनी का रुट्स वर्ब-फार्म्स एण्ड प्राइमरी डैरिवेटिव्स आदि कुछ गिने चुने कार्य ही इस क्षेत्र में हुए हैं। इनमें भी प० चारुदेव शास्त्री द्वारा लिखित शोधलेख पाणिनीये धातुपाठेऽर्थनिर्देश: प० भगीरथप्रसाद त्रिपाठी के धात्वर्थ-विज्ञानम् तथा लेख अनेकार्था हि धातव: प्रस्तुत विधा में हुए महत्त्वपूर्ण कार्य हैं। उन कार्यों में सीमित संकेतों के द्वारा व्यक्त भावों को विस्तार तथा विश्लेषणात्मक ढंग से व्यक्त करना एवं पाणिनीयेतर सभी धातुपाठों को अपने अध्ययन का विषय बनाना और यथाशक्य उपलब्ध भारतीय भाषाओं में तुलनात्मक अर्थविचार प्रस्तुत ग्रन्थ का अपना वैशिष्ट्य है। इतना ही नहीं, विदुषी लेखिका ने बोलचाल की कन्नड़, गुजराती, मराठी, बंगला, पञ्जाबी तथा सिन्धी भाषाओं में प्रयुज्यमान धातुओं के विविध रूपों को समझाने का भी प्रयत्न किया है।

प्राचीनतम धातुओं को अधुनातन प्रयोगों में खोजना, साथ ही अनेक अप्रसिद्ध, अल्पप्रसिद्ध एवं अप्रचलित धातुओं के अर्थ एवं प्रयोगों की तर्कपूर्ण समीक्षा प्रस्तुत अध्ययन का वैशिष्ट्य है। मैं इसके लिये लेखिका को शुभाशी: एवं वर्धापन देता हूँ तथा प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि वे भविष्य में डॉ० माया चैनानी को और अनेक शोध-कार्यों को करने की प्ररोचना दें।

अवनीन्द्र कुमार
प्रोफेसर
संस्कृत विभाग, दिल्ली वि०वि०

भूमिका

प्रत्येक ध्वनि, जिसे हम व्याकरणशास्त्र में शब्द के अभिधान से प्रकट करते हैं, अपने में एक अर्थ, भाव या विचार रखती है। शब्द का वह अर्थ ही उसका सार या आत्मा है। जिस प्रकार अतिशय प्रयोग में आने से मुद्रा या सिक्के घिसते और अपने स्वरूप में परिवर्तन पाते हैं, उसी प्रकार किसी भी भाषा के शब्द एवं उनके अर्थ घिसते-घिसते बदलते रहते हैं। इतना अवश्य है कि भाषा में होने वाला यह परिवर्तन मुद्रा की अपेक्षा शनैः शनैः होता है। लेकिन जिस प्रकार से वायु या जल का प्रवाह अवरुद्ध नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार प्रचलन में होने वाली भाषा के प्रवाह को भी रोकना सहज नहीं है। भाषा में होने वाले ये परिवर्तन वाक्य के प्रत्येक अङ्ग (कर्तृ, कर्म, क्रिया आदि) को समान रूप से प्रभावित करते हैं; इसलिये यह स्वाभाविक है कि धातुओं में होने वाले अर्थों में परिवर्तन तज्जन्य शब्दों को भी उस आधार पर एक बड़ी सीमा तक प्रभावित करे। इससे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि धातुओं और उनके अर्थों का विभिन्न दृष्टियों से अध्ययन अपने आप में पर्याप्त महत्व एवं रुचि का विषय है।

एम्०ए० के पाठ्यक्रम में निर्धारित भाषाविज्ञान के एक प्रकरण 'अर्थ-विज्ञान' को पढ़ते हुए अर्थ की परिवर्तनशीलता पर कार्य करने की रुचि हुई और यह मेरा सौभाग्य था कि मुझे धात्वर्थनिर्देश पर काम करने का अवसर मिला।

'धातुपाठों में अर्थनिर्देश' ग्रन्थ २९४ धातुओं के अर्थ-विचार-निर्णय पर एक प्रयास है। इस ग्रन्थ में पाणिनीय, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम और कविकल्पद्रुम धातुपाठ एवं पाणिनीय धातुपाठ पर आधारित क्षीर-तरंगिणी, धातुप्रदीप, सिद्धान्तकौमुदी, प्रक्रियाकौमुदी, रूपावतार, दैवम् ग्रन्थों में निर्दिष्ट अर्थों का तुलनात्मक अध्ययन एवं उनकी समीक्षा की गई है। पाणि-नीय धातुपाठ की विस्तृत व्याख्या के लिए माधवीय धातुवृत्ति ही वर्तमान काल में सर्वाधिक प्रामाणिक एवं स्पष्ट ग्रन्थ प्रतीत होने से उसे ही आधार बनाया है। धातुओं का वर्गीकरण पाणिनीय गणानुसार है।

'धातुपाठों में अर्थनिर्देश' एक आलोचनात्मक निबन्ध है। इस ग्रन्थ का लक्ष्य अस्पष्ट धात्वर्थों को स्पष्ट करना है । १००० धातुएँ अस्पष्टार्थ एवं धात्वर्थभेद के अन्तर्गत आती हैं । साहित्य में २६४ धातुओं के सम्बन्ध में प्रमाण मिले हैं, अतः उन्हीं धातुओं को यहाँ लिया गया है । धात्वर्थनिर्देश जिन जिन प्रकारों से किया गया है, उनके उदाहरण देते हुए प्रत्येक प्रकार की प्रतिशत संख्या दिखाई गई है । किस धातुपाठ में कौन सी विशेषता है ? क्या सभी प्रकार उचित धात्वर्थबोध में समर्थ हैं, यदि नहीं, तो किस प्रकार से धात्वर्थनिर्देश होना चाहिये था, इन सब बातों पर विचार किया है । धातुपाठों में जहाँ-जहाँ धात्वर्थभेद है, उस विशिष्ट धात्वर्थ के प्रचलन में प्रमाण खोजने का यत्न किया है । धात्वर्थों के स्पष्टीकरण (अर्थनिर्णय) के लिए यथासम्भव उपलब्ध संस्कृत साहित्य को देखने का प्रयत्न किया है । संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, वेदाङ्ग, उपनिषद् एवं लौकिक संस्कृत साहित्य से क्रमपूर्वक उदाहरण देने का प्रयास रहा है । पाणिनि से पूर्ववर्त्ती साहित्य से अधिकाधिक उदाहरण खोजने का प्रयत्न किया है । यदि पूर्ववर्त्ती साहित्य में उदाहरण उपलब्ध नहीं हुए तब उत्तरकालीन साहित्य को भी खोजने का प्रयत्न किया है ।

संस्कृत साहित्य के अतिरिक्त हिन्दी, प्राकृत, मराठी, कन्नड़, बंगला, पंजाबी, सिन्धी भाषाओं से भी यत्र तत्र यथाशक्य धात्वर्थों की पुष्टि का प्रयास किया है । पंजाबी और सिन्धी भाषा की अपेक्षा मराठी, कन्नड़ और बंगला भाषा में उन्हीं अर्थों में संस्कृत शब्दों का प्रयोग अधिक है ।

प० भगीरथप्रसाद त्रिपाठीकृत 'पाणिनीय धातुपाठ-समीक्षा' तथा 'धात्वर्थ-विज्ञानम्', प० चारुदेवकृत 'पाणिनीये धातुपाठेऽर्थनिर्देशः' लेख तथा 'व्याकरण-चन्द्रोदय', डॉ० पलसुले का 'द संस्कृत धातुपाठाज़—ए क्रिटिकल स्टडी' एत-द्विषयक अद्यावधि प्रकाशित कार्य हैं । 'धात्वर्थविज्ञानम्' शोधप्रबन्ध में केवल ५७ धातुओं की अनेकार्थता एवं उपसर्ग द्वारा अर्थ की परिवर्तनशीलता पर विचार किया गया है। उन ५७ धातुओं में से ७ धातुओं पर प्रस्तुत ग्रन्थ में भी विचार किया है । पाणिनीय धातुपाठ-समीक्षा' में धात्वर्थों के प्रयोग बहुत कम दिखाये गये हैं; कई धात्वर्थ ऐसे हैं, जिनकी पुष्टि में प्रमाण उप-लब्ध हैं; किन्तु 'पाणिनीय धातुपाठसमीक्षा' में उनका उल्लेख नहीं किया गया । उनके अतिरिक्त प्रयोग संस्कृत और प्राकृत भाषा से दिखाये गये हैं, मराठी, बंगला, कन्नड़, पंजाबी, सिन्धी भाषाओं का विवेचन वहाँ नहीं है । डॉ० पलसुले के शोध-प्रबन्ध में धातुपाठों के स्वरूप का अधिक विवेचन किया गया है । धात्वर्थनिर्देश की शैली पर स्वल्प चर्चा की गई है । धात्वर्थ-

निर्देश की शैली के जिन प्रकारों की उन्होंने चर्चा की है, उनसे नितान्त भिन्न प्रकारों का प्रस्तुत निबन्ध में निर्देश किया गया है। अतः 'धातुपाठों में अर्थ-निर्देश' ग्रन्थ में प्रस्तुत सामग्री एक मौलिक विनम्र प्रयास है।

'काशकृत्स्न धातुपाठ' पर आज टीकाकार चन्नवीरकृत व्याख्या उपलब्ध है। जहाँ तक मैंने अध्ययन किया है उससे ऐसा प्रतीत हुआ कि चन्नवीर टीकाकार ने काशकृत्स्ननिर्दिष्ट धात्वर्थ की व्याख्या न कर कन्नड़ प्रदेश में प्रचलित अर्थ में धातु की व्याख्या की है। २६४ धातुओं में से जहाँ-जहाँ प्रतीत हुआ वहाँ-वहाँ चन्नवीरकृत टीका से असहमति भी प्रकट की है। धातुओं के चुनने का माध्यम भिन्न होने से चन्नवीरकृत टीका पर गहन अध्ययन नहीं किया गया है; इस क्षेत्र में और अधिक शोध-कार्य किया जा सकता है। प्रत्येक धातु की चन्नवीरकृत व्याख्या को लेकर कन्नड़ भाषा से तुलनात्मक अध्ययन कर वास्तविक निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है।

इस ग्रन्थ को लिखने में मैं सर्वाधिक कृतज्ञता के साथ जिनका नाम स्मरण कर सकती हूँ वे ऋषिकल्प विद्यावयोवृद्ध (अब स्व०) प० चारुदेवजी शास्त्री एवं माननीय प्रो० अवनीन्द्र कुमार हैं; जिनकी सतत प्रेरणा, अनुकम्पा और कुशल निर्देशन ने मेरा मार्ग-दर्शन किया। लिखने में उठने वाली प्रत्येक ग्रन्थि, शंका का निवारण किया। मैं उनके प्रति विनयावनत हूँ। आद० प्रो० अवनीन्द्रकुमार ने प्राक्कथन लिखकर जो स्नेह मुझे दिया है, मैं उससे अत्यन्त उपकृत एवं गौरवान्वित हूँ।

मैं अनेक विद्वानों और संस्थाओं के प्रति आभार प्रकट करती हूं, जिन पर निर्भर रहकर मुझे विचारों एवं सामग्री के क्षेत्र में पर्याप्त सहायता मिली है। उनमें से कतिपय सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची में उल्लिखित हैं; पुनरपि अनेक ऐसे भी हैं, जिन्होंने मेरे विचार और प्रणाली को बनाने में पर्याप्त सहायता दी है, उनके प्रति मैं सर्वाधिक आभारी हूँ।

संस्कृत व्याकरण-शास्त्र के मूर्धन्य विद्वान् प० युधिष्ठिर मीमांसक, डॉ० गौरीनाथ शास्त्री, डॉ० रामसुरेश त्रिपाठी, डॉ० एस्०डी० जोशी एवं डॉ० कपिलदेव द्विवेदी के ग्रन्थों से मुझे बहुत लाभ हुआ है, उनके प्रति मैं श्रद्धा-सुमन अर्पित करती हूँ।

इस ग्रन्थ के निर्माणकाल में डॉ०विजयपाल जी, आ०पाणिनि महाविद्यालय, बहालगढ़ ने बड़े स्नेह से मेरी सहायता एवं दिशानिर्देश किया, मैं हृदय से उनकी आभारी हूँ। सम्भव है, उनके सुझावों के अभाव में यह ग्रन्थ कुछ भिन्न-रूप में होता।

संस्कृत विभाग, दिल्ली वि०वि० के आचार्य एवं पूर्व अध्यक्ष प्रो० सत्यव्रत

शास्त्री, प्रो० रसिकबिहारी जोशी, प्रो० सत्यकाम वर्मा, प्रो० वाचस्पति उपाध्याय, वर्तमान में कुलपति श्री लालबहादुरशास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली तथा डॉ० राजेन्द्र कुशवाह के अनेकविध वैदुष्यपूर्ण सुझावों से मैं अनुगृहीत हूँ ।

मेरे पूज्य पिताजी, जो अब स्वर्गस्थ हैं तथा मेरी स्नेहिल माँ का वरद हस्त प्रत्येक पग पर मेरी शोधयात्राओं में मेरे साथ रहा है । उनसे उऋण होनासम्भव भी नहीं है, शायद ऋणी रहने में ही मेरा गौरव है । अवसाद के अनेक क्षणों में मेरा मनोबल बढ़ाने वाली भ्रातृजाया आद० शोभा ए०कुमार को भी मैं सादर सप्रेम स्मरण करती हूँ ।

संस्कृत अध्ययन की प्रेरक शोभना दीदी को मैं सादर स्मरण न करूँ तो यह मेरी धृष्टता होगी । उनकी प्रेरणा के अभाव में, मैं सम्भवतः संस्कृत से भिन्न किसी क्षेत्र में होती ।

मेरी मित्रों सुश्री कमला, आभा माथुर, एनाक्षी चटर्जी तथा डॉ० मिथिलेश चतुर्वेदी को सप्रेम स्मरण करती हूँ । विषय को पूर्ण बनाने में इनका सहयोग स्तुत्य है ।

इस कार्य को प्रकाशित रूप में लाने की प्रेरक आत्मजाकल्पा कु० शालिनी पुञ्जानी को मेरा स्नेहाशीः । प्रभु उसे अनामय, यशस्वी दीर्घजीवन दें । कार्य के १७ वर्षों के बाद बिना उसकी प्ररोचना के यह ग्रन्थ निश्चयेन अप्रकाशित ही रह जाता ।

दिल्ली विश्वविद्यालय पुस्तकालय, पुरातत्त्व सर्वेक्षण पुस्तकालय, ब्रह्मदत्त जिज्ञासु शोध संस्थान, बहालगढ़ का मैंने भरपूर उपयोग किया । श्री भगवत साही ने पुस्तकों के खोजने में पर्याप्त सहायता की, मैं इन सबके प्रति आभारी हूँ ।

विद्यानिधि प्रकाशन के अध्यक्ष श्री बद्रीनाथ तिवारी को मैं हृदय से धन्यबाद देती हूँ, जिनके उत्साह से यह ग्रन्थ प्रकाशन में आया ।

कार्त्तिक पूर्णिमा
वि०स० २०५१

—माया ए० चैनानी

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

धातुपाठों का स्वरूप और प्रवचन

व्याकरण का स्वरूप—

सहस्रों वर्ष पूर्व संस्कृत साहित्य के इतिहास में व्याकरण-शास्त्र रूपी एक ऐसा महत्वपूर्ण अनुसन्धान हुआ, जिससे भाषा का अध्ययन अत्यन्त सुगम हो गया। महाभाष्य के पस्पशाह्निक से पहले की स्थिति का पर्याप्त संकेत मिलता है, जब शब्दों का ज्ञान कराने के लिए प्रतिपदपाठ किया जाता था, एक-एक शब्द को लेकर शब्दार्थ-ज्ञान कराया जाता था, किन्तु वह ज्ञान भी अपूर्ण रह जाता था[1], क्योंकि मनुष्य की आयु तो १०० वर्ष है; और इतने अल्पकाल में प्रतिपदरीति से विशाल शब्द-समुदाय के अर्थ का ज्ञान सम्भव नहीं। इस दुरूहता को समझकर शब्द-विश्लेषण-पद्धति प्रारम्भ हुई, अर्थात् शब्दों में प्रकृति और प्रत्यय की कल्पना की गई। तैत्तिरीय संहिता[2] में कहा गया है—

"वाग्वै पराच्यव्याकृतावदत्। ते देवा इन्द्रमब्रुवन्, इमां नो वाचं व्याकुर्विति……तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोत्।"

"वाणी पुराकाल में अव्याकृत (व्याकरण-सम्बन्धी प्रकृति-प्रत्ययादि संस्कार से रहित अखण्ड पदरूप) बोली जाती थी। देवों ने इन्द्र से कहा कि इस वाणी को व्याकृत करो। इन्द्र ने उस वाणी को मध्य से तोड़कर व्याकृत (प्रकृति-प्रत्ययादि-संस्कार से युक्त) किया।"

शब्दों में प्रकृति और प्रत्यय के विभाग करने का कार्य व्याकरण का है—

---

१. बृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यं वर्षसहस्रं प्रतिपदोक्तानां शब्दानां शब्दपारायणं प्रोवाच—महा०पस्पशा०
दिव्यं वर्षसहस्रमिन्द्रो बृहस्पतेः सकाशात् प्रतिपदपाठेन शब्दान् पठन् नान्तं जगामेति—प्रक्रि०कौ० १।७

२. ६।४।७।

'व्याक्रियन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरणम्।'[1] शब्दार्थबोध में लाघव के लिए शब्दों में प्रकृति-प्रत्यय-विभाग किया गया है।[2] कुमारिलभट्टकृत तन्त्रवार्तिक[3] में भी स्पष्ट रूप से कहा गया है—

"प्रकृतिप्रत्ययानन्त्या यावन्तः पदराशयः,
लक्षणेनानुगम्यन्ते कस्तानध्येतुमर्हति।"

कोष आदि की शक्ति व्याकरण की अपेक्षा अल्प है; क्योंकि कोष में जितने शब्दों का संकलन है, केवल उन्हीं शब्दों का ज्ञान हो सकता है; किन्तु व्याकरण की अन्वाख्यान पद्धति से, उत्सर्ग और अपवाद सूत्रों की रचना से साधु-असाधु सभी शब्दों का ज्ञान अल्प समय में हो जाता है। व्याकरण-शास्त्र यास्क से पूर्व ही अपने पूर्णरूप में विद्यमान था। गोपथ ब्राह्मण[4] का यह उद्धरण—

"ओंकारं पृच्छामः, को धातुः, किं प्रातिपदिकं, किं नामाख्यातम्, किं लिङ्गं, किं वचनं, का विभक्तिः, कः प्रत्ययः, कः स्वर उपसर्गो निपातः, किं वै व्याकरणं, को विकारः, को विकारी, कति मात्राः, कति वर्णाः, कत्यक्षराः, कति पदाः, कः संयोगः, किं स्थाननादानुप्रदानानुकरणम्"

व्याकरण शास्त्र की प्राचीनता को सिद्ध कर रहा है।

व्याकरण वेदार्थबोध में सहायक है। वेद शब्दमय हैं, और व्याकरण शब्द का ही संस्कार करता है, अतः वाक्यपदीय में कहा भी गया है—

"प्रथमं छन्दसामङ्गं प्राहुर्व्याकरणं बुधाः।" निघण्टु और निरुक्त भी वेदार्थबोध में सहायक हैं, किन्तु प्राथमिकता व्याकरण को दी गई है। निघण्टु एक प्रकार का वैदिक कोष है, जिसमें कठिन वैदिक पदों का अर्थनिर्देश किया गया है। अर्थनिर्देश करना कोष का कार्य है, व्याकरण का नहीं।[5] व्याकरण का कार्य अमुक धातु में अमुक प्रत्यय लगने से शब्द का यह रूप बनेगा, अर्थात्

---

१. महा० पस्पशा०

२. नागेश ने लघुमञ्जूषा में लिखा है—तत्र प्रतिवाक्ये सङ्केतग्रहासम्भवात्त-दन्वाख्यानस्य लघूपायेनाशक्यत्वाच्च कल्पनया पदानि प्रविभज्य पदे प्रकृति-प्रत्ययभागकल्पनेन कल्पिताभ्यामन्वयव्यतिरेकाभ्यां तदर्थविभागं शास्त्रमात्र-विषयं परिकल्पयन्ति स्म आचार्याः —स्फोटनिरूपणम्, पृ० ५

३. जैमिनि-मीमांसा-दर्शन, १।पृ० २७६

४. १।२४

५. न त्वर्थे नियोगः क्रियते —महा०प्र० ५।१।६०

शब्द की सिद्धि करना है। शिष्ट-प्रयुक्त शब्दों का अन्वाख्यान करना व्याकरण का कार्य है[1], अतः कोष और व्याकरण में अन्तर है। व्याकरण-शास्त्र लोक-प्रसिद्ध शब्दों का ही अन्वाख्यान करता है, अप्रयुक्त या अपूर्व शब्दों पर विचार नहीं करता।[2] वैयाकरण उन्हीं शब्दों में प्रकृति और प्रत्यय की कल्पना करते हैं, जिनमें क्रिया प्रत्यक्ष होती है, किन्तु नैरुक्त अतिपरोक्ष शब्दों में भी धातु और प्रत्यय की कल्पना करते हैं;[3] इसके विपरीत वैयाकरण ऐसे स्थलों को अव्युत्पन्न प्रातिपदिक कहकर छोड़ देते हैं। नैरुक्त अर्थ को दृष्टि में रखकर शब्द की सिद्धि करते हैं। उदाहरणार्थ 'होतृ' शब्द को लीजिये, जिसका अर्थ है—होता (ऋत्विज्)। होता का कार्य मन्त्रों से स्तुति कर देवताओं का आह्वान करना है। वैयाकरण होतृ शब्द की सिद्धि 'हु' धातु में तृच् प्रत्यय से करते हैं, किन्तु नैरुक्त होतृ शब्द की सिद्धि ह्वे धातु से करते हैं; क्योंकि हु धातु के अर्थ (दान और आदान) होता के कार्य से साम्य नहीं रखते। चूँकि 'ह्वेञ्' धातु का अर्थ भी आह्वान करना है, और होता का कार्य भी आह्वान करना है, अतः अर्थसाम्य को दृष्टि में रखकर नैरुक्त 'होतृ' शब्द की सिद्धि ह्वेञ् धातु से करते हैं। उनका यह सिद्धान्त है – **'अर्थनित्यः परीक्षेत, न संस्कारमाद्रियेत'**[4]। नैरुक्तों को इस बात की चिन्ता नहीं होती कि व को उ कैसे हुआ, ग को प कैसे हुआ, व्याकरण-शास्त्र का सूत्र उसमें घटे या न घटे, वे किसी न किसी तरीके से शब्द की सिद्धि कर देते हैं, जबकि वैयाकरणों का उद्देश्य ही शब्द का संस्कार करना है, लोक-प्रचलित शब्दों में प्रकृति-प्रत्यय की कल्पना कर शब्दों के साधुत्व का प्रतिपादन करना है।

प्रकृति-स्वरूप और उसका महत्व (विकास की अवस्थाएँ)—

प्रकृति से तात्पर्य शब्द का मूल भाग है, जिसे दूसरे शब्दों में धातु कहते हैं। धातु आज उपसर्ग, विकरण, प्रत्यय-रहित शब्द का मूल भाग है। प्राचीन

---

१. शिष्टप्रयोगानुविधायि इदं शास्त्रम् —महा०दीपिका, पृ० १२६

२. सिद्धानां च शब्दानां संकरनिरासाय अन्वाख्यानं क्रियते, न त्वप्रयुक्तापूर्व-शब्दव्युत्पादनाय – महा०प्र० ३।१।८

३. तद्येषु पदेषु स्वर-संस्कारौ समर्थौ प्रादेशिकेन गुणेनान्वितौ स्यातां तथा तानि निर्ब्रूयात्। अथानन्वितेऽर्थेऽप्रादेशिके विकारेऽर्थनित्यः परीक्षेत केनचिद् वृत्तिसामान्येन अविद्यमाने सामान्येऽप्यक्षरवर्णसामान्यान्निर्ब्रूयात्। न त्वेव न निर्ब्रूयात् —निरु० २।१

४. २।१ निरु०

समय में प्रकृति (धातु) निश्चित रूप से इस स्वरूप में नहीं थी। कण्ड्वादिगण में पठित शब्दों एवं नाम-धातु-प्रक्रिया पर यदि आलोचनात्मक दृष्टिपात किया जाये, तो धातु की प्राचीन स्थिति एकदम स्पष्ट हो जाती है कि उस समय तक ही शब्द से धातुरूप, सुबन्त-रूप, तद्धित-रूप, कृदन्त-रूप और निपात-रूप अवयव सिद्ध किये जाते थे। कण्ड्वादिगण में पठित उषस् शब्द के प्रचलित उषस्यति, उषाः, उषसौ, उषसिता, उषस् आदि तिङन्त, सुबन्त, कृदन्त और निपात रूप इस स्थिति के संकेत हैं। अश्वीयति, गर्दभीयति नामधातुप्रक्रिया भी इस तथ्य को पुष्ट करती हैं कि प्रातिपदिक से आख्यात रूप बना लिये जाते थे। शब्दों की इस प्राचीन स्थिति को समझ लेने पर यह अनायास ही सिद्ध हो जाता है कि उस समय तिङन्त रूप ही धातु कहलाता था; क्योंकि तिङन्त, सुबन्त विभक्तियों से रहित होने पर वही एकमात्र शब्द निपात कहलायेगा, और तिङ् विभक्तियों से युक्त होने पर वह शब्द धातुवाच्य था। निघण्टु और निरुक्त शास्त्र इस तथ्य को और अधिक सबल बना देते हैं, क्योंकि निरुक्त में[1] आख्यात शब्द भी धातु के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—

"नामान्याख्यातजानीति शाकटायनो नैरुक्तसमयश्च"[2]

एक अन्य स्थल पर धातु पद 'आख्यात' रूप के लिए प्रयुक्त हुआ है—

"गतिकर्माण उत्तरे धातवो द्वाविंशशतम्।"[3]

"ऐश्वर्य-कर्माण उत्तरे धातवश्चत्वारः।"[4]

यहाँ गत्यर्थक आदि धातुओं के उदाहरण के रूप में तिङन्त रूप ही दिखाये गये हैं, जिससे यह सिद्ध हो जाता है कि एक समय में तिङन्त रूप ही धातु-वाच्य था[5]। इसके अतिरिक्त उस समय उपसर्गों की पृथक् सत्ता नहीं थी, वे धातुओं के ही अवयव थे, धातुपाठ में उपलब्ध संग्राम, वीर, निवास आदि धातुएँ इस तथ्य की परिचायक हैं।

धीरे-धीरे उपसर्ग और प्रत्ययों की पृथक् सत्ता स्वीकार की गई, किन्तु विकरण धातु का ही अंग माने जाते थे, व्याकरण-शास्त्र में प्रचलित सार्वधातुक

---

१. १।४

२. महा० ३।३।१ में भी कहा गया है—
नाम च धातुजमाह निरुक्ते, व्याकरणे शकटस्य च तोकम्।

३. निरु० ३।२

४. वही

५. पलसुले—द संस्कृत धातुपाठाज़, ए क्रिटिकल स्टडी, पृ० १०

और आर्धधातुक संज्ञाएँ प्रमाण-स्वरूप हैं। सार्वधातुक और आर्धधातुक से तात्पर्य आज धातुओं के पश्चात् आने वाले प्रत्यय हैं। लट्, लोट् लङ्, और विधिलिङ् लकार ही सार्वधातुक माने जाते हैं, और अन्य आर्धधातुक। ये संज्ञाएँ ऐसी स्थिति को द्योतित कर रही हैं, जब 'भव' धातुवाच्य था, अर्थात् जिनमें अकार का लोप नहीं होता वे सार्वधातुक कहलाते होंगे, और भू आदि जिनमें अकार का लोप हो जाता है, वे आर्धधातुक कहलाते होंगे।[1]

अन्त में ऐसी स्थिति भी आई जब वैयाकरणों ने छानबीन से शब्द के मूलरूप को पहचाना। विकरण, उपसर्ग, प्रत्ययों की पृथक् सत्ता स्वीकार की गई, और आज वैयाकरणों की इस पारभेदिक दृष्टि से शब्द की आन्तरिक रचना और उसके लचीले विकास को आर-पार देखने की शक्ति प्राप्त होती है। धातुस्वरूप में यह परिवर्तन बहुत मन्द गति से हुआ देखते हैं।

इन धातुओं को संग्रह कर उन्हें जिस रूप में निबद्ध किया गया, उसे आज धातुपाठ कहते है। धातुपाठ व्याकरण-शास्त्र का ही एक महत्वपूर्ण अंग है। धातुपाठ आदि अंग शब्दानुशासन के लिए माने जाते हैं।[2] आज से पर्याप्त पहले धातुपाठ आदि अंग शब्दानुशासन के अन्तर्गत ही थे, किन्तु उत्तरकाल में मनुष्यों की स्मरणशक्ति तथा आयु में ह्रास के कारण एवं शब्दानुशासन के लाघव के लिए धातुपाठ आदि खिलपाठों को शब्दानुशासन से पृथक् किया गया।[3]

धातुपाठ चूंकि व्याकरणशास्त्र का महत्वपूर्ण अंग है, अतः यह निश्चित है कि जिस-जिस वैयाकरण ने व्याकरण ग्रन्थ का प्रवचन किया होगा, उस-उस ने धातुपाठ का भी प्रवचन किया होगा, किन्तु आज केवल आठ धातुपाठ उपलब्ध हैं। नाम इस प्रकार हैं—

पाणिनीय, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम और कवि-कल्पद्रुम धातुपाठ।

चान्द्र आदि धातुपाठ पाणिनीय धातुपाठ से परवर्ती होने के कारण पाणिनीय धातुपाठ पर ही मुख्य रूप से आधारित है; किन्तु कहीं कहीं उनमें पाणिनीय धातुपाठ से अन्तर भी देखा जाता है, अतः प्रस्तुत ग्रन्थ में अध्ययन का प्रमुखतया आधार पाणिनीय धातुपाठ ही होगा।

---

१. पलसुले—द संस्कृत धातुपाठाज, ए क्रिटिकल स्टडी, पृ० ११

२. काशि० न्यास—खिलपाठो धातुपाठः, पृ० २११ (१।३।२)
पदमञ्जरी—खिलपाठो धातुपाठः, प्रातिपदिकपाठो वाक्यपाठश्च।'
—पृ० २१३ (१।३)

३. मीमांसक, सं०व्या०शा० इति० २।३

पाणिनीय धातुपाठ—

पाणिनीय धातुपाठ की रचना सूत्रपद्धति से की गई है। जिस प्रकार पाणिनि के शब्दानुशासन में विधि, निषेधादि अनेक प्रकार के सूत्र अनुवृत्ति से बंधे हुए हैं, उसी प्रकार पाणिनीय धातुपाठ में भी हैं। प्रत्येक का एक एक उदाहरण दिखाना पर्याप्त होगा, जैसे—भू सत्तायाम्[१] (विधि), न कम्यमिचयाम्[२] (निषेध), राधोऽकर्मकाद् वृद्धावेव (नियम), स्वादय ओदितः[४] (अतिदेश) घटादयो मितः[५] (संज्ञा), अदन्ताः[६] (अधिकार)। इन सूत्रों में अनुवृत्ति के अनुकर्षण के लिए 'च' का प्रयोग भी किया गया है। विकल्प-विधान के लिए 'वा' (आधृषाद् वा—चुरा०)[७], विभाषित' (शक विभाषितो मर्षणे-दिवा०)[८] आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। अन्तर्गणों की समाप्ति 'वृत्' शब्द से दर्शाई गई है। मित् संज्ञा के सूत्रों की रचना कुछ विचित्र है। उदाहरणार्थ—

जनीजृष्क्नसुरञ्जोऽमन्ताश्च[९] (प्रथमान्त),

ज्वलह्वलह्मलनमामनुपसर्गाद्वा[१०] (पञ्चम्यन्त)

धात्वर्थनिर्देशक सूत्रों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है (१) अधिकांश सूत्रों में विभक्तिरहित एक या अनेक धातु को पहले रख कर एक या अनेक सप्तम्यन्त पद से अर्थ दर्शाया गया है। प्रायः धातु अविभक्तिक हैं, परन्तु कुछ सूत्रों में सविभक्तिक भी हैं, जैसे राधोऽकर्मकाद् वृद्धावेव[११] (दिवा०), भुवोऽवकल्कने[१२] (चुरा०), कृपेस्तादर्थ्ये[१३] (चुरा०)। (२) कुछ सूत्रों में पहले एक या अनेक अर्थ रखकर सविभक्तिक धातु को रखा गया है, जैसे मारणतोषणनिशामनेषु ज्ञा[१४] (ध्वा०), कम्पने बलिः[१५] (भ्वा०), जिह्वोन्मन्थने लडिः[१६] (भ्या०)। (३) कुछ सूत्रों में पदों का क्रम है—उपसर्ग (पञ्चम्यन्त),

---

१. पा०धा० १।१
२. १।५४६
३. ४।७६
४. ४।३२
५. ६।५४२
६. १०।२४३
७. १०।२००
८. ४।८३
९. १।५४३
१०. ४।७६
११. ४।७६
१२. १०।१८२
१३. क्षीर० १०।१८६
अनित्यण्यन्तत्वार्थम्पञ्चमी
क्षीर० १०।१८५
१४. क्षीर० १।५३५
१५. १।५३६
१६. १।५३८

धातु (विभक्तिरहित), अर्थनिर्देश। जैसे आङः शासु इच्छायाम्[1] (अदा०), अनौ रुच कामे[2] (दिवा०)।

कुछ धातुओं का पाठ एक से अधिक गणों में किया गया है। इसके मुख्यतः तीन कारण हैं। प्रथम—समान अर्थ किन्तु रूपभेद, जैसे पुष पुष्टौ-[3] पोषति (भ्वा०) पुष्यति (दिवा०), पुष्णाति (क्र्या०)। द्वितीय—अर्थभेद तथा रूपभेद, जैसे विद[4]—वेत्ति (अदा०), विद्यते (दिवा०), विन्ते (रुधा०)। तृतीय—स्वरभेद, जैसे षद्लृ[5]—सीदति (भ्वा०) आद्युदात्त, सीदति (तुदा०) मध्योदात्त।

पाणिनीय धातुपाठ में कुल १९०५ धातुएँ हैं, और इन धातुओं का दस गणों में विभाजन किया गया है। गणों का नामकरण उसमें आने वाली प्रथम धातु के आधार पर है।

भ्वादिगण[6] में १०१० धातुएँ पढ़ी गई हैं, और इस गण में पठित धातुओं की यह विशेषता है कि इनसे पर शप् विकरण लगता है।

अदादिगण[7] में ७१ धातुएँ हैं, और इस गण में पठित धातुओं से शप् विकरण का लोप हो जाता है।

जुहोत्यादिगण[8] में २४ धातुएँ हैं, और इस गण में पठित धातुओं से पर शप् का लोप एवं धातु को द्वित्व होता है।

दिवादिगण[9] में १३७ धातुएँ हैं, और 'श्यन्' विकरण[10] लगता है।

स्वादिगण[11] में ३४ धातुएँ हैं, और 'श्नु' विकरण लगता है।

तुदादिगण[12] में १५४ धातुएँ है, एवं 'श' विकरण लगता है।

---

१. २।१५
२. ४।६६
३. १।४५१, ४।७८, ९।६१
४. २।६९, ४।६९, ७।१७
५. १।५८३, ६।१३४
६. कर्तरि शप् ३।१८३
७. अदिप्रभृतिभ्यः शपः (२।४।७२) लुक् स्यात्।
८. जुहोत्यादिभ्यः श्लुः (२।४।७)
९. दिवादिभ्यः श्यन् (३.१.६९)
१०. पाणिनीय व्याकरण में श्यन्, श्नु, श, श्नम्, उ, श्ना विकरण शप् विकरण के अपवाद हैं; शप् विकरण का बाध करते हैं।
११. स्वादिभ्यः श्नुः ३।१।७३
१२. रुधादिभ्यः श्नम् ३।१।७८

रुधादिगण[1] में २५ धातुएँ हैं. एवं 'श्नम्' विकरण लगता है।

तनादिगण[1] में १० धातुएँ हैं, और 'उ' विकरण लगता है।

क्र्यादिगण[3] में ६० धातुएँ हैं, इनमें 'श्ना' विकरण लगता है।

चुरादिगण[4] में ३८० धातुएँ हैं, और इनसे (स्वार्थ में) शप् के साथ 'णिच्' विकरण होता है।

इन गणों में अन्तर्गण भी हैं—

द्युतादिगण-७४१ से ७६३ तक धातुएँ द्युतादिगण के अन्तर्गत आतीं हैं।

द्युतादिगण में ही एक अन्य 'वृत्-गण' अन्तर्गण है, यह वृत् गण ७५९ से ७६३ तक है। द्युतादिगण में[5] पठित धातुओं की यह विशेषता है कि लुङ् के स्थान पर परस्मैपद-संज्ञक प्रत्यय विकल्प से होते हैं। वृतादिगण में[6] पठित धातुओं से परे सकारादि आर्धधातुक को इट् आगम नहीं होता। लृट् और सम् के विषय में परस्मैपद-संज्ञक प्रत्यय विकल्प से होते हैं।

घटादिगण[7] ७६३ से ८२२ तक है। इस गण में पठित धातुओं की मित् संज्ञा होती है, और मित् संज्ञा का फल विच् प्रत्यय पर में रहते उपधावृद्धि के बाद ह्रस्व प्रयोजन है, और चिण् या णमुल् पर में रहते विकल्प से दीर्घ होता है।

फणादिगण[8] ८२२ से ८२८ तक है। फणादि[9] धातुओं को कित् लिट् और सेट् थल् पर रहते विकल्प से एत्व और अभ्यास-लोप होते हैं।

ज्वलादिगण[10] ८३२ से ८६२ तक है। ज्वलादि धातुओं में, उपसर्ग-रहित प्रयोग होने पर, विकल्प से ण प्रत्यय लगता है। ज्वलादिगण में पठित धातुओं की मित् संज्ञा होती है।

---

१. तनादिकृञ्भ्य उः ३।१।७९
२. क्र्यादिभ्यः श्ना ३।१।८१
३. सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच् ३।१।२५
४. द्युद्भ्यो लुङि २।३।९१
५. वृद्भ्यः स्यसनोः १।३।९२, न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः ७।२।५९
६. घटादयो मितः; मितां ह्रस्वः ६।४।९२
७. फणाञ्च सप्तानाम् ६।७।१२५ (एत्चाभ्यासलोपौ किति लिटि सेटि च थलि)।
८. फण धातु घटादि और फणादि दोनों हैं।
९. ज्वलितिकसन्तेभ्यो णः ३।१।१४०

यजादिगण[1] १००३ से १०१० तक है। यजादिगण की धातुओं को कित् प्रत्यय पर में रहते सम्प्रसारण होता है। इस अन्तर्गण की धातुओं के लिट् में अभ्यास के अवयव यण् के स्थान में सम्प्रसारण-संज्ञक वर्ण होते हैं।

अदादि में दो अन्तर्गण हैं—

रुदादिगण[2] ५७ से ६१ तक है। इस गण की धातुओं से परे वलादि आर्धधातुक को इट् आगम होता है, और हलादि सार्वधातुक को ईट् होता है।

जक्षादिगण[3] ६१ से ६७ तक है। ये धातुएँ अभ्यस्त-संज्ञक होती हैं, और 'नाऽभ्यस्ताच्छतुः' से नुम् का निषेध होता है।

दिवादिगण में (१) षु और (२) पुषादि अन्तर्गण हैं; और पुषादि अन्तर्गण में भी दो अन्य गण हैं (१) रधादि (२) शमादि। स्वादि[4] अन्तर्गण २४ से ३२ तक है। स्वादिगण की धातुएँ ओदित् संज्ञक हैं, अतः निष्ठा में त को न होता है।

पुषादिगण[5] ७४ से १३७ तक है। पुषादि[6] धातुओं से पर लुङ् में पुषादित्वप्रयुक्त च्लि को अङ् होता है।

---

१. लिट्यभ्यासस्योभयेषाम् ६।१।१७,
वचिस्वपियजादीनां किति ६।१।१५

२. रुदादिभ्यः सार्वधातुके ७।१।७६
रुदादिगण के अन्तर्गत ही स्वपादिगण माना जाता है। यह अन्तर्गण ५८ से ६७ अदादिगण के अन्त तक जाता है। काशिका में कहा गया है—'स्वपादिवृत्करणात्'। क्षीरस्वामी ने भी अदादिगण के अन्त में कहा है—'स्वपादयः स्वरार्थं वर्तिताः'। वोपदेव भी स्वपादिगण को अदादिगण का अन्तर्गण मानते हैं, किन्तु माध० धा० में स्वपादियों के वृत् का उल्लेख नहीं किया गया।

३. जक्षित्यादयः षट् ६।१।६

४. स्वादय ओदितः, ओदितश्च (इति निष्ठानत्वम्) ८।३।४५

५. पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु ३।१।५५

६. क्षीरस्वामी पुषादि-अन्तर्गण के सम्बन्ध में अन्य वैयाकरणों के मत का उल्लेख करते हैं, जिसके अनुसार पुषादि अन्तर्गण ष्णिह प्रीतौ धातु के बाद समाप्त हो जाता है—
एतदन्तः पुषादिरित्येके। अतो अग्रे अशमीत्।

रथादिगण[1] ८५ से ९२ तक है। रथादि[2] धातुओं से पर वलादि आर्ध-धातुक को विकल्प से इट् होता है, पक्ष में एत्त्व और अभ्यासलोप।

शमादिगण[3] ९३ से १०० तक है। श्यन् पर में रहते शमादि धातुओं की उपधा दीर्घ होती है।

तुदादिगण में तीन अन्तर्गण हैं—(१) कुटादि (२) किरादि (३) मुचादि।

कुटादि[4] ८४ से ११७ तक है। कुटादि धातुओं से पर ञित् एवं णित् से भिन्न प्रत्यय ङित् होते हैं।

किरादिगण[5] १२५ से १२९ तक है। किरादि धातुओं से सन् में इट् होता है।

मुचादिगण[6] १४६ से १५३ तक है। मुचादि[7] धातुओं से श प्रत्यय पर में रहते नुम् आगम होता है।

क्र्यादिगण में २ अन्तर्गण हैं—

---

१. रथादिभ्यश्च ७।२।४५

२. रथादिगण में ८९ से ९२ तक चार धातुओं का अन्तर्गण बन सकता था; क्योंकि 'वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम्,' सूत्र में चारों धातुओं से विशेष कार्य का उल्लेख किया गया है। मैत्रेयरक्षित का इस विषय में कहना है—द्रुहादीनामिति गणनिर्देशो न क्रियते। वैचित्र्यार्थमित्येके। यङ्लुगन्तनिवृत्त्यर्थमित्यपरे।

३. शमामष्टानां दीर्घः श्यनि ७।३।७४

४. गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित् १।२।१

५. किरश्च पञ्चभ्यः ७।२।७५

६. शे मुचादीनाम् ७।१।५९

७. मुचादिगण में कुछ तृम्फादि धातुएँ नुम्युक्त हैं, और उनमें 'शे तृम्फादीनाम्' वार्तिक से नुम् आगम होता है। यह वार्तिक 'शे मुचादीनाम्' सूत्र पर महाभाष्य में पढ़ा गया है। तृम्फादि धातुओं का धातुपाठ में वृत्करण नहीं किया गया। यहाँ आदि शब्द सादृश्य अर्थ में प्रयुक्त होता है, अतः तृम्फसदृश अर्थात् उपधा में नकार वाली धातुओं को नुम् आगम हो, शपर में रहते—यह अर्थ है। श विकरण में इन धातुओं का अपना नकार 'अनिदितां हलः' से लुप्त हो जाता है, तब इस वार्तिक से नकार आकर, अनुस्वार और परसवर्ण करने पर वैसा रूप बन जाता है।

प्वादि[1] अन्तर्गण १० से ३२ तक है। शित् प्रत्यय पर में रहते हुए प्वादि धातुओं को ह्रस्व होता है।

ल्वादि[2] अन्तर्गण भी ११ से ३२ तक ही है। इन धातुओं की निष्ठा में तकार का नकार होता है।

चुरादिगण में ४ अन्तर्गण हैं—

१. आकुस्मीयाः १३८ से १७९ तक हैं, और आत्मनेपदी हैं।

२. आस्वदीयाः २१४ से २५० तक हैं।

३. आधृषीयाः २५१ से २९४ तक हैं। इन धातुओं में विकल्प से णिच् लगता है, विकल्प से भ्वादिगण में भी पढ़ी जाती हैं।

४. आगर्धीयाः ३४१ से ३५० तक हैं। इस गण की धातुएँ आत्मनेपदी हैं।

कई धातुएँ अनुबन्धों से युक्त हैं, और अनुबन्ध किसी प्रयोजन के लिए ही जोड़े गए हैं—

अनुबन्ध	प्रयोजन
अ (उदात्त)	परस्मैपद।
अ (अनुदात्त)	आत्मनेपद।
अ (स्वरित)	उभयपद।
आ	आदितश्च[3] सूत्र से निष्ठा (क्त, क्तवतु) में इट् का निषेध।
इ	इदितो नुम् धातोः[4] सूत्र से नुम्।
इर्	इरितो वा[5] से लुङ् में च्लि को अङ्।
ई	श्वीदितो निष्ठायाम्[6] से निष्ठा में इट्-निषेध।
उ	उदितो वा[7] से क्त्वा में विकल्प से इट्।
ऊ	स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा[8] सूत्र से विकल्प से इट्।

---

१. प्वादीनां ह्रस्वः ७।३।८०

२. ल्वादिभ्यः ८।२।४४

३. ७।२।१६

४. ३।१।५८

५. ३।१।५७

६. ७।२।१४

७. ७।२।५६

८. ७।२।४४

ऋ	नाग्लोपिशास्वृदिताम्[1] से णि में उपधा-ह्रस्व का निषेध।
लृ	पुषादिद्युताद्य्लृदितः परस्मैपदेषु[2] सूत्र से लुङ् में च्लि को अङ् आदेश।
ए	ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम्[3] से लुङ् में वृद्धि का निषेध।
ओ	ओदितश्च[4] से निष्ठा के तकार को नकार।
ङ्	अनुदात्तङित आत्मनेपदम्[5] सूत्र से आत्मनेपद। स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले[6] सूत्र से उभयपद।
ञि	ञीतः क्तः[7] से वर्तमान में क्त।
टु	ट्वितोऽथुच्[8] सूत्र में अथुच्।
डु	ड्वितः क्त्रिः[9] से क्त्रि।
मित्	मितां ह्रस्वः[10] से उपधा को ह्रस्व।
ष्	षिद्भिदादिभ्योऽङ्[11] से भाव में अङ् प्रत्यय।

धातुएँ परस्मैपदी, आत्मनेपदी और उभयपदी हैं। पाणिनीय धातुपाठ में इन तीनों पदों का साङ्कर्य देखा जाता है, उनमें कोई क्रम नहीं है। उदाहरणार्थ भ्वादिगण को ही लीजिए, जिसका प्रारम्भ भू धातु से किया गया है। भू धातु के बाद परस्मैपदी धातुओं का वर्ग ही आना चाहिए था, किन्तु ऐसा न कर आत्मनेपदी धातुएँ रखी गई हैं, और फिर परस्मैपदी और फिर आत्मनेपदी। इस प्रकार १ से ८६२ तक धातुएँ परस्मैपदी और आत्मनेपदी हैं। उभयपदी धातुओं का वर्ग ८६३ से प्रारम्भ होकर ८९६ तक जाता है, और फिर आत्मनेपदी धातुएं प्रारम्भ हो जाती हैं। क्र्यादि गण में उभयपदी धातुओं का पाठ पहले किया गया है। १ से ७ तक धातुएँ अनिट्

---

१. ७।४।२
२. ३।१।५५
३. ७।२।५
४. ८।३।४५
५. १।३।१२
६. १।३।७२
७. ३।२।१८७
८. ३।३।८९
९. ३।३।८८
१०. ६।४।९२
११. ३।३।१०४

उभयपदी हैं, ८ से १५ तक सेट् उभयपदी हैं और उभयपदी धातुओं के बाद परस्मैपदी धातुओं का पाठ है। १० से २७ तक सेट् परस्मैपदी, २८ से ३७ तक अनिट् परस्मैपदी तथा ३८ वीं धातु आत्मनेपदी है। इस प्रकार पदों में कोई क्रम नहीं है।

भ्वादिगण में १ से ८९६ तक धातुएँ व्यञ्जनान्त हैं[1], किन्तु व्यञ्जनान्त धातुओं में भी क्रम को ध्यान में नहीं रखा गया है। उदाहरणार्थ २ से ७५ तक धातुएँ दन्त्यवर्णान्त, ७६ से १६९ तक कण्ठ्यवर्णान्त, १६४ से २५६ तक तालव्यान्त, २५७ से २६४ तक मूर्धन्यान्त हैं, जबकि व्यञ्जनान्त धातुओं का क्रम इस प्रकार होना चाहिए—**कण्ठ्य, तालव्य, मूर्धन्य, दन्त्य**।

किन्तु यहाँ दन्त्य व्यञ्जनान्त धातुएँ पहले पढ़ीं गई हैं।

पतञ्जलि ने हयवरट् सूत्र पर भाष्य करते हुए कहा है कि—**एषा ह्याचार्यस्य शैली लक्ष्यते यत्तुल्यजातीयांस्तुल्यजातीयेषूपदिशति**[2]-अर्थात् पाणिनि तुल्यजातीय पदार्थों का एक साथ उपदेश करते हैं, किन्तु पाणिनीय धातुपाठ में अतुल्यजातीय पदार्थों का सन्निवेश दिखाई पड़ता है। सेट् धातुओं में अनिट् का पाठ और अनिट् धातुओं में सेट् धातुओं का पाठ देखा जाता है, और क्रम में पाठ न करने से पाणिनि का कोई विशेष प्रयोजन भी सिद्ध नहीं होता; अतः प्रतीत होता है कि पाणिनि ने ऐसे स्थलों को प्राग्धातुपाठों से अतिकाल रूप में एकत्र कर पूर्वाचार्यों के प्रति आदरभाव व्यक्त किया है। क्षीरस्वामी ने भी स्पष्ट रूप में कहा है—

पाठमध्येऽनुदात्तानामुदात्तः कथितः क्वचित्,
अनुदात्तोऽप्युदात्तानां पूर्वेषामनुरोधतः॥[3]

पाणिनीय धातुपाठ में वैदिक धातुओं का भी पाठ किया गया है। अदादिगण में ६६-६७, जुहोत्यादि गण में १४ से २६, स्वादिगण में २३ से ३४, तुदादिगण में ११४ धातु छान्दस हैं।

अदादिगण में दो बातें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, अदादिगण में 'चर्करीतं च' सूत्र का उल्लेख किया है। पाणिनि से पूर्ववर्ती आचार्य यङ्लुगन्त धातु को चर्करीत कहते थे। पाणिनि ने भी अपने समय में प्रसिद्ध उस संज्ञा

---

१. भू, क्षि और जि धातुएँ अपवाद रूप में हैं।

२. १।१।२

३. १।१४९

का उसी अर्थ में प्रयोग किया है। यङ्लुगन्त धातुओं का अदादिगण में परिगणन इसलिए किया गया है कि इनसे पर (अदिप्रभृतिभ्यः शपः) शप् का लोप किया जा सके, किन्तु इस सूत्र का परिगणन धातुपाठ में न होकर सूत्रपाठ में होना चाहिए था।

दूसरी विशेषता यह है कि अदादिगण का अन्त 'ह्नुङ्' धातु से किया गया है। 'ह्नुङ्' धातु अनिट् आत्मनेपदी है, अतः इस धातु का पाठ 'इङ्' आत्मनेपदी धातु के बाद ही होना चाहिए था, क्योंकि बाद में सेट्, अनिट् परस्मैपदी धातुओं का वर्ग प्रारम्भ होकर अदादिगण के अन्त तक जाता है।

तनादिगण की धातुएँ उ अनुबन्ध में अन्त होती हैं, और सेट् हैं (डुकृञ् धातु को छोड़कर)।

क्र्यादिगण में १ से ३६ धातुएँ स्वरान्त हैं, और ३७ से ६० तक व्यञ्जनान्त हैं, इस प्रकार यहाँ क्रम को ध्यान में रखा गया है।

चुरादिगण की धातुओं में स्वार्थ में णिच् प्रत्यय लगता है, सब धातुएँ सेट् हैं। णिच् शप् का अपवाद न होकर शप् के साथ साथ आता है। चुरादिगण में १३८ से १७९ तक और ३४१ से ३५० तक धातुएँ आत्मनेपदी हैं, अन्य परस्मैपदी हैं। चुरादिगण में २९५ से कथादि अदन्त धातुएँ प्रारम्भ होतीं हैं। इनमें अन्त्य अकार चुर धातु की तरह उच्चारण के लिए नहीं, अपितु धातु का एक अंग है। चुरादिगण में नामधातुएँ अधिक पढ़ी गई हैं।

चान्द्र धातुपाठ—

यह धातुपाठ पाणिनीय धातुपाठ की अपेक्षा अल्प आकार वाला है। इस धातुपाठ में कुल १५७५ धातुएँ हैं। पाणिनीय धातुपाठ से ३३० धातुएँ कम पढ़ी गई हैं। चान्द्र धातुपाठ में अधिकांश धातुएँ एकार्थी हैं, केवल १७ स्थल ऐसे हैं, जहाँ धातुएँ अनेकार्थी हैं।

चान्द्र धातुपाठ में प्रयुक्त अतङाना, तङानिन्, और विभाषिताः शब्द[1] पाणिनि द्वारा प्रयुक्त परस्मैपद, आत्मनेपद और उभयपद के द्योतक हैं।

---

१. तङानना, विभाषिताः पारिभाषिक संज्ञाओं के सम्बन्ध में चन्द्रगोमी पाणिनि के ऋणी हैं। इन संज्ञाओं का उल्लेख पाणिनि के इन सूत्रों से मिलता है—
तङानावात्मनेपदम् १।४।१००
शक विभाषितो मर्षणे ४।८३
टैक्नीकल टर्म्स—पृ० १०२-३

धातुओं के क्रम की दृष्टि से भी पाणिनीय धातुपाठ और चान्द्र धातुपाठ में अन्तर है। १ से ३०५ सूत्र तक धातुएँ परस्मैपदी और ३०६ से ५२२ तक आत्मनेपदी हैं। सौत्र धातुओं का पाठ परस्मैपदी, आत्मनेपदी और उभयपदी वर्ग के अन्तर्गत किया गया है।

चुरादिगण में पाणिनीय धातुपाठ में जहाँ ३८० धातुएँ पढ़ी गई हैं, चान्द्र धातुपाठ में वहाँ केवल ११२ धातुएँ हैं। चान्द्र धातुपाठ में भाषार्थक धातुओं का वर्ग लुप्त है। इसके अतिरिक्त आकुस्मीय, आश्वदीय, आधृषीय और कथादि अन्तर्गण भी नहीं गढ़े गए।

चान्द्र धातुपाठ में पाणिनीय ञि अनुबन्ध का प्रयोग नहीं किया गया।

जैनेन्द्र धातुपाठ—

यह धातुपाठ चान्द्रधातुपाठ से भी अल्प आकार वाला है। इसमें कुल १४७८ धातुएँ हैं। पाणिनीय धातुपाठ से ४२७ और चान्द्र धातुपाठ से २७ धातुएँ कम हैं। पाणिनीय परस्मैपद, आत्मनेपद और उभयपद संज्ञाओं के लिए जैनेन्द्र धातुपाठ में भवन्ता, ङेदित् और जित् संज्ञाओं का प्रयोग किया गया है। भू धातु के बाद पहले आत्मनेपदी फिर परस्मैपदी और फिर उभयपदी धातुओं का पाठ किया गया है।

जुहोत्यादिगण अदादिगण से पूर्व पठित है। ऐ और औ दो नये अनुबन्धों का प्रयोग किया गया है। ऐ अनुबन्ध आत्मनेपदी धातुओं के लिए किया है, और औ अनिट् धातुओं का द्योतक है।

छान्दस धातुएँ जैनेन्द्र धातुपाठ में नहीं पढ़ी गईं।

जैनेन्द्र धातुपाठ में कुछ धातुएँ ऐसी हैं, जिनके अर्थ पाणिनि-निर्दिष्ट धात्वर्थों से एकदम भिन्न हैं। उदाहरणार्थ—

क्षुभ-सञ्चलने पा० १।४८६; संक्षोभे जै० १।४६१

सार कृप श्रथ-दौर्बल्ये पा० १०।२५७; शैथिल्ये जै० १०।५०४

काशकृत्स्न धातुपाठ—

यह धातुपाठ सब धातुपाठों से विस्तृत आकार वाला है। इसमें कुल २४११ धातुएँ हैं। इसमें पाणिनीय से ५०६ धातुएँ अधिक पढ़ी गईं हैं। इस धातुपाठ में ९ ही गण हैं। जुहोत्यादिगण अदादिगण के अन्तर्गत है।

पाणिनि ने जिन धातुओं को परस्मैपदी अथवा आत्मनेपदी पढ़ा है, उनमें से बहुत सी धातुओं को काशकृत्स्न ने उभयपदी माना है, उदाहरणार्थ—वस

निवासे, टुओश्वि गतिवृद्धयोः धातुएं[1] पाणिनीय धातुपाठ में परस्मैपदी हैं, किन्तु काशकृत्स्न धातुपाठ में उभयपदी पढ़ी गई हैं।

पाणिनीय धातुपाठ में एकविध पढ़ी गईं बहुत सी धातुएँ काशकृत्स्न धातु-पाठ में दो रूपों से पठित हैं—पाणिनीय ईड धातु काशकृत्स्न धातु में 'ईड ईल स्तुतौ' दो रूपों में पढ़ी गई है।[2] पाणिनीय फुल्ल धातु काशकृत्स्न धातुपाठ में फुल, फुल्ल उभयविध रूपों में पढ़ी गई है।[3] इसी प्रकार केलृ धातु भी काशकृत्स्न धातुपाठ में केलृ, ओलृ उभयविध रूपों में पढ़ी गई है।[4]

पाणिनीय धातुपाठ में क्र्यादिगणपठित मृ धातु काशकृत्स्न धातुपाठ में भ्वादि गण में पढ़ी गई है[5]; अतः म्रियते के स्थान पर मरति आदि रूप बनते हैं।

पाणिनि-पठित मीमृ धातु काशकृत्स्न में मी और मृ दो धातुओं के रूप में पढ़ी गई है।[6] अनुबन्धों को भी धातु मान लिया गया है। उपसर्गों को भी धातु मानकर अर्थनिर्देश किया गया है। यथा अट्ट धातु पाणिनीय धातुपाठ में[7] 'अतिक्रमणहिंसनयोः' अर्थ में पढ़ी गई है; किन्तु काशकृत्स्न धातुपाठ में[8] अति उपसर्ग को धातु मानकर 'क्रमणहिंसयोः' अर्थ किया गया है।

काशकृत्स्न धातुपाठ में चुष, तुष, पुष, युष और षुष पाँच धातुएँ[9] ह्रस्व स्वर में पढ़ी गई है, और इनकी उपधा को दीर्घ करने के लिए 'चुषादेर्दीर्घः[10] सूत्रविशेष बनाया गया है।

काशकृत्स्न धातुपाठ में अधिक पढ़ी गईं धातुओं के वर्ग को छोड़ दिया जाये तो काशकृत्स्न धातुपाठ और कातन्त्र में कोई अन्तर नहीं रह जाता। काशकृत्स्न व्याकरण में प्रयुक्त कई पारिभाषिक संज्ञाएँ कातन्त्र व्याकरण में

---

१. पा० धा० १।७३५; काश०धा० १।७०५, १।७०७
२. पा०धा० २।१२; काश०धा० २।४१
३. पा०धा० १।३५०; काश०धा० १।२४४
४. पा०धा० १।३५२; काश०धा० १।२४७
५. पा०धा० ६।२३; काश०धा० १।२२४
६. पा०धा०; १।३०८; काश०धा० ६।२२४
७. पा०धा० १।१५६
८. काश०धा० १।४३०
९. काश०धा० १।२८४, १।२८५, १।२८६, १।२८७, १।२८८
१०. काश०धा०व्या० १७

उपलब्ध हैं, यथा—नामिन्, सन्ध्यक्षर आदि ।[1] सूत्र यथा—पः पिबः, वृद्धिरादौ सणे, ध्मो धमः, प्नो प्नः, क्रो जिघ्रः[2] आदि ।

कातन्त्र धातुपाठ—

कातन्त्र धातुपाठ में १८५८ धातुएँ हैं । काशकृत्स्न धातुपाठ की तरह कातन्त्र धातुपाठ में भी धातुएँ ६ गणों में विभाजित हैं । जुहोत्यादि गण अदादि गण के अन्तर्गत है । धातुक्रम भी कातन्त्र धातुपाठ में काशकृत्स्न धातुपाठ की तरह ही है ।

घटादि सूत्रों की शब्दानुपूर्वी में भी काशकृत्स्न धातुपाठ और कातन्त्र धातुपाठ में साम्य है—ज्वलह्वलह्मलनमोऽनुपसर्गाद्वा-काशकृत्स्न, कातन्त्र धातुपाठ (ज्वलह्वलह्मलनमामप्रमादीनां वा) ग्लास्नावनुवमश्वनकम्यमिचमः (काशकृत्स्न, कातन्त्र), चान्द्र, पाणिनीय, ग्लास्नावनुवमां च, कम्यचिमाम् (चान्द्र, पाणिनीय धातुपाठ) ।

काशकृत्स्न और कातन्त्र धातुपाठ में अव धातु[3] पालन अर्थ में पढ़ी गई है, जबकि अन्य[4] अव धातु १९ अर्थों में पढ़ते हैं ।

चर धातु काशकृत्स्न और कातन्त्र धातुपाठ में 'असंशये' अर्थ में[5] पढ़ी गई है, जबकि अन्य[6] वैयाकरण 'संशय' अर्थ में पढ़ते हैं । मन्द धातु[7] दोनों धातु-

---

१. काश० व्या० — कात०व्या०

काश० व्या०	कात०व्या०
२२	१।१।७
२६	१।१।८

२. काश०व्या० — कात०व्या०

काश०व्या०	कात०व्या०
३०	३।६।७१
१२६	३।२।४९
३२	३।६।७३
३४	३।६।७५
३१	३।६।७२

३. काश०धा०व्या० १।२७१; कात०धा० १।२०२

४. पा०धा० १।३८४; जै०धा० १।४९६; शाक०धा० १।८०२, है०धा० १।४८९; क०क०ह०धा० २८६; चा०धा० अपवाद रूप है । है० धा० अपवाद रूप है ।

५. काश०धा० ९।१७५; कात०धा० ९।१२०५

६. पा०धा० १०।१८०; शाक०धा० १०।१५८८

७. काश०धा० १।३८१; कात०धा० १।३००

पाठों में 'सौख्ये' अर्थ में निर्दिष्ट है, जबकि अन्य[1] धातुपाठों में 'सुखे' अर्थ में पढ़ी गई है।

इस प्रकार कातन्त्र धातुपाठ काशकृत्स्न धातुपाठ का ही संक्षेप है। काशकृत्स्न धातुपाठ में अधिक पढ़ी गई धातुओं के वर्ग को छोड़ दिया जाये, तो कातन्त्र धातुपाठ काशकृत्स्न धातुपाठ का ही पुनः शोधित पाठ प्रतीत होता है।

शाकटायन धातुपाठ—

इस धातुपाठ में कुल १८५१ धातुएँ हैं, जिनका १० गणों में विभाजन किया गया है। शाकटायन धातुपाठ जैनेन्द्र धातुपाठ का ही परिवर्धित रूप है। प्रथम और दसवें गण में धातुएँ जैनेन्द्र धातुपाठ की तरह ही पठित हैं।

वैदिक धातुओं का पाठ जैनेन्द्र धातुपाठ की तरह शाकटायन धातुपाठ में भी नहीं किया गया।

शाकटायन धातुपाठ में गणों के क्रम में पर्याप्त हेर फेर किया गया है— १,२,३,४,५,९,६,८,७,१०।

इस धातुपाठ में अन्य धातुपाठों से एक विशेष अन्तर यह है कि शाकटायन ने भू धातु का पाठ परस्मैपदी धातुओं के अन्तर्गत किया है। केवल यही एक धातुपाठ है, जिसका प्रारम्भ भू धातु से नहीं है। भू धातु को अपने उचित स्थान पर रखा गया है।

धातुपाठ को मूल प्रकृति-पाठ कहा गया है।

हैम धातुपाठ—

इस धातुपाठ में १९८० धातुएँ हैं। धातुएँ अकारादि क्रम से रखी गई हैं। आनुपूर्वी १०वें गण तक स्थित है। अन्तर्गणीय धातुएँ भी अकारादि क्रम से रखी गई हैं।

काशकृत्स्न और कातन्त्र धातुपाठ की तरह हैम धातुपाठ में जुहोत्यादि गण अदादि गण के अन्तर्गत है।

'क्ष' वर्ण को स्वतन्त्र वर्ण मानकर क्षकारान्त धातुओं को हकारान्त धातुओं के बाद पढ़ा गया है।

प्रत्येक गण किसी एक विशेष अनुबन्ध में अन्त होता है। उस गण की प्रत्येक धातु उस अनुबन्ध से युक्त है, जिससे धातु किस गण की है, जानने में अत्यन्त सुविधा होती है।

---

१. पा०धा० १।१२; जै०धा० १।४८९; शाक०धा० १।११; है०धा० १।७२२

हैम धातुपाठ में अनिट् धातुओं को द्योतित करने के लिए अनुस्वार का प्रयोग किया गया है ।

कविकल्पद्रुम धातुपाठ—

यह धातुपाठ पद्यात्मक है । पद्य अनुष्टुप् छन्द में हैं, और धातु के अन्तिम वर्ण के आधार पर बनाये गए हैं । एक विशेष अनुबन्ध का प्रयोग कर प्रत्येक गण का द्योतन किया गया है । प्रथम १४ पद्यों में विषय की भूमिका बांधी गई है । प्रथम पद्य में आदित्य को नमस्कार किया गया है, और उसके बाद जिन जिन आचार्यों के धातुपाठों का अध्ययन किया है, उन उन आचार्यों का उल्लेख किया गया है । इसके अतिरिक्त अनुबन्धों का स्थान, उसके प्रयोजन एवं अनिट् धातुओं के द्योतन के लिए 'औ' अनुबन्ध का उल्लेख है । इस प्रकार १५वें पद्य से धातुपाठ का प्रारम्भ होता है ।

कविकल्पद्रुम धातुपाठ में २३५८ धातुएँ हैं । काशकृत्स्न धातुपाठ के बाद कविकल्पद्रुम धातुपाठ है, जिसमें सबसे अधिक धातुएँ पढ़ी गयी हैं ।

कविकल्पद्रुम धातुपाठ क्षीरतरंगिणी और हैम धातुपाठ से अधिक प्रभावित है, केवल क्षीरतरंगिणी में पढ़ी गई धातुएँ भी वोपदेव ने ली , जैसे—कुपि च्युस, टिप, तिघ, दबि, दाय, प्युस, प्लक्ष आदि ।[1]

केवल हैम धातुपाठ में पढ़ी गई धातुओं का भी कविकल्पद्रुम धातुपाठ में सन्निवेश किया गया है, उदाहरणार्थ—रवु, रिबु, कूणिण्, पसुण् ।[2] किन्तु कहीं कहीं उन्होंने क्षीरस्वामी एवं हेमचन्द्रसूरिपठित धातुओं का निराकरण भी किया है, यथा—क्षीरतरंगिणी में पठित—ऋह, इव, ऋज, वेदिर्, व्युन्द आदि ।[3] हैमधातुपाठ में पठित—पल्यूलण् ।

कविकल्पद्रुम धातुपाठ में ४३ अनुबन्धों का प्रयोग किया गया है, इनमें से १७ अनुबन्ध पाणिनि के हैं, और औ अनुबन्ध जैनेन्द्र धातुपाठ से लिया गया है। अन्य सब अनुबन्ध इनकी अपनी मौलिक रचना है ।

---

१. १०।१०३, १०।१८४, १०।१२१, ५।२५, १०।१२१, १।६२१, ४।६, १।६३१

२. १।३६६-६७, ६।२५७, ६।१४१

३. ६।२७, १।३८८, १।१४४, १।६१५, १०।८४

४. ६।३४८

धातुपाठों के प्रवक्ता

पाणिनि—

धातुपाठों पर विचार करने के बाद अब धातुपाठों के प्रवक्ताओं पर आते हैं। पाणिनीय धातुपाठ के प्रवक्ता पाणिनि ही हैं। सूत्रपाठ में पठित 'पुषादि-द्युताद्युलृदितः परस्मैपदेषु'[1], 'किरश्च पञ्चभ्यः'[2], 'शमामष्टानां दीर्घः श्यनि'[3] सूत्रों में धातुओं के क्रम को ध्यान में रखकर ही कार्य का विधान किया गया है। इसके अतिरिक्त 'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्'[4], 'स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले'[5] सूत्रों में धातु-अनुबन्धों के द्वारा कार्य दिखाये गये हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पाणिनि ने सूत्रपाठ के प्रवचन से पूर्व धातुपाठ का प्रवचन अवश्य किया होगा, अन्यथा सूत्रों में धातुओं के क्रम को ध्यान में रखकर कार्यविधान सम्भव नहीं।

छायाव्याख्याकार वैद्यनाथ पायगुण्ड ने पस्पशाह्निक में 'मृजिरस्मायविशेषेणोपदिष्टः' की व्याख्या करते हुए स्पष्ट रूप से कहा हैं कि पाणिनि ने किसी प्रत्यय-विशेष का आश्रयण न करके 'मृजूष्-शुद्धौ' धातु का धातुपाठ में उपदेश किया है। इन सब प्रमाणों से यह सिद्ध हो जाता है, कि पाणिनीय धातुपाठ पाणिनि-प्रोक्त है।

काल[6]—

तारानाथ ने बौद्ध धर्म के इतिहास में पाणिनि को नन्द राजा का समकालीन बताया है।[7] कथासरित्सागर में[8] भी कहा गया है कि पाणिनि नन्द राजा की सभा में पाटलिपुत्र गये थे। इसके अतिरिक्त आर्य-मंजुश्रीमूलकल्प[9] में भी लिखा है कि महापद्म नंद का मित्र एक पाणिनि नाम का माणव था।

---

१. ३।१।५५
२. ७।२।७५
३. ७।३।७४
४. १।३।१२
५. १।३।७२
६. द्रष्टव्य—अग्रवाल, वासुदेव शरण-पाणिनिकालीन भारतवर्ष
७. वही, पृ० ४७२
८. १।४
९. ५३।४०४
तस्याप्यन्यतमः सख्यः पाणिनिर्नाम माणवः।

इस प्रकार प्रमाणों से स्पष्ट हो जाता है कि पाणिनि नन्दराजा का अन्तरङ्ग मित्र रहा होगा।

पाणिनि के समकालीन उनके मित्र नन्दराज कौन थे, इस बात की छानबीन आवश्यक हो जाती है। पुराणों के अनुसार शिशुनागवंशी उदय के बाद नन्दिवर्धन, उसके बाद महानन्दिन् तथा महापद्म और उसके पुत्र राजा हुए। तिथियां इस प्रकार हैं—

नन्दिवर्धन—लगभग ४७५ ई० ४४५ ई०पू०।
महानन्दिन्— ४४५ ई०पू० ४०३ ई०पू०।
महापद्म — ४०३ ई०पू० ३७५ ई०पू०।
महापद्म के पुत्र— ३७५ ई०पू० ३२५ ई०पू०।

तारानाथ के अनुसार नंदवंशी सम्राट् महापद्म नन्द के पिता नन्द पाणिनि के मित्र थे। महानन्दिन् का नाम महानन्द या नन्द था। महानन्दिन् का समय ४४५ ई०पू० से ४०३ ई०पू० है, अत: पाणिनि का समय भी ५वीं शताब्दी निर्धारित होता है।

चान्द्र धातुपाठ—

चान्द्र धातुपाठ के प्रवक्ता चन्द्रगोमी हैं। अन्त:स्थ वकार और पवर्गीय बकार का उच्चारण एक जैसा करने के कारण बंग प्रान्त के निवासी प्रतीत होते हैं। चन्द्रगोमी का कालनिर्णय विवाद का विषय रहा है। इनके काल के सम्बन्ध में दो महत्वपूर्ण उल्लेख मिलते हैं—

१. कल्हण का २. भर्तृहरि का

कल्हण की राजतरंगिणी १।१७६ से विदित होता है, कि चन्द्राचार्य ने कश्मीर के महाराज अभिमन्यु की आज्ञा से कश्मीर में महाभाष्य का प्रचार किया था। अभिमन्यु और चन्द्राचार्य समकालिक रहे होंगे, यह तभी सम्भव हो सकता है। बेल्वेल्कर आदि विद्वान्[२] अभिमन्यु की स्थिति ४२३ ई०पू० से ५८० ई० पश्चात् तक विविध कालों में मानते हैं।

देवनन्दी चन्द्रगोमी से परवर्ती हैं। देवनन्दी का समय ५वीं शताब्दी सर्वमान्य है, अत: चन्द्रगोमी का समय ५वीं शताब्दी से पूर्व ही होना चाहिए। भर्तृहरि ने दूसरे काण्ड के ४८७-९२ श्लोकों में चन्द्रगोमी द्वारा महाभाष्य के प्रचार करने का उल्लेख किया है—

---

१. पाणि०भारत०, पृ० ४७३
२. मीमांसक—सं०व्या०शा०इति० १।पृ० ५७०

बैजिसौभवहर्यक्षैः शुष्कतर्कानुसारिभिः
आर्षे विप्लाविते ग्रन्थे संग्रहप्रतिकञ्चुके ।
यः पतञ्जलिशिष्येभ्यो भ्रष्टो व्याकरणागमः
काले स दाक्षिणात्येषु ग्रन्थमात्रे व्यवस्थितः ।।
पर्वतादागमं लब्ध्वा भाष्यबीजानुसारिभिः
स नीतो बहुशाखत्वं चन्द्राचार्यादिभिः पुनः ।।

इस लेख से विदित होता है कि बैजि, सौभव और हर्यक्ष आदि शुष्क तार्किकों ने महाभाष्य का प्रचार नष्ट कर दिया था। चन्द्राचार्य ने महान् परिश्रम करके दक्षिण के किसी पार्वत्य प्रदेश से एक हस्तलेख प्राप्त कर उसका पुनः प्रचार किया।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि चन्द्रगोमी पतञ्जलि के बाद हुए। पतञ्जलि का समय १६५ ई० पू० माना जाता है[1], और भर्तृहरि का समय ५०० ई० के लगभग माना जाता है[2], अतः चन्द्रगोमी का समय पतञ्जलि के दो शताब्दी बाद से लेकर भर्तृहरि के दो शताब्दी पूर्व तक रखा जा सकता है, अर्थात् ५० ई० से लेकर ३५० ई० के बीच में चन्द्र का समय हो सकता है।

जैनेन्द्र धातुपाठ—

जैनेन्द्र धातुपाठ आचार्य देवनन्दीप्रोक्त है। देवनन्दी ने अपने किसी ग्रन्थ में न तो कोई रचना तिथि दी है, और न गुरुपरम्परा। अतः उनके समय का निर्णय बाह्य प्रमाणों के आधार पर करना पड़ता है।

जैनेन्द्र व्याकरण में पठित 'अरुणन्महेन्द्रो मथुराम्'[4] वाक्य ही देवनन्दी के समय-निर्धारण में सहायक है। कात्यायन ने वार्तिक में[5] एक नियम दिया है—

परोक्षे च लोकविज्ञाते प्रयोक्तुर्दर्शनविषये लङ् वक्तव्यः ।

अर्थात् ऐसी कोई घटना जो लोकविश्रुत हो, प्रयोक्ता ने उसे साक्षात् न देखा हो, परन्तु प्रयोक्ता के दर्शन का विषय सम्भव हो तो उस घटी हुई घटना को कहने के लिए भूतकाल में लङ् प्रत्यय होता है।

इस वार्तिक के आधार पर 'अरुणन्महेन्द्रो मथुराम्' वाक्य का अर्थ करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य पूज्यपाद के समय में महेन्द्र नामक किसी राजा ने मथुरा पर आक्रमण किया था, अतः आचार्य पूज्यपाद महेन्द्र के

---

१. वर्मा, सत्यकाम,-सं०व्या०उ०वि०, पृ० १९८
२. वही, पृ० २२३
३. २।२।९२
४. ३।२।१११

समकालीन हुए । महेन्द्र कुमार का काल पाश्चात्य विद्वानों ने ४१३-४५५ ई० माना है[1]; अतः पूज्यपाद का समय ५वीं शताब्दी में निर्धारित होता है ।

बेल्वेल्कर[2], हरप्रसाद शास्त्री[3], के०बी० पाठक[4] एवं अभ्यंकर[5] इसी मत के समर्थक हैं ।

काशकृत्स्न धातुपाठ—

काशकृत्स्न धातुपाठ के प्रवक्ता निश्चित रूप से पाणिनि से परवर्ती हैं । पाणिनि के सभी अनुबन्धों का प्रयोग काशकृत्स्न धातुपाठ में किया गया है, किसी नये अनुबन्ध का समावेश नहीं किया गया । 'पाणिनि काशकृत्स्न के ऋणी हैं, अर्थात् पाणिनि ने अपनी ओर से कोई नया अनुबन्ध नहीं जोड़ा'— पाणिनि के विषय में ऐसा कहना तर्कसंगत नहीं । पतञ्जलि ने भी ७।१।१८ में स्पष्ट रूप से कहा है कि पाणिनि पूर्ववर्ती आचार्यों के अनुबन्धों का प्रयोग नहीं करते । काशकृत्स्न ही पाणिनि के ऋणी हैं ।

अर्थयुक्त बहुव्रीहि समास से अर्थनिर्देश करना निरुक्त की शैली है । पाणिनीय धातुपाठ में अर्थ-युक्त-बहुव्रीहि समास से धात्वर्थनिर्देश अत्यधिक हुआ है । यह शैली उत्तरोत्तर कम होती गई है । काशकृत्स्न धातुपाठ में भाषार्थ वर्ग को छोड़कर गत्यर्थक, हिंसार्थक और शब्दार्थक धातुओं का अर्थनिर्देश सप्तम्यन्त एकवचन में किया गया है । इससे भी स्पष्ट है कि काशकृत्स्न धातुपाठ पाणिनि से परवर्ती है ।

काशकृत्स्न धातुपाठ और कातन्त्र धातुपाठ में अत्यधिक साम्य है, यह पहले दिखा चुके हैं । कातन्त्र धातुपाठ पर जैनेन्द्र धातुपाठ का प्रभाव लक्षित होता होता है, अतः कातन्त्र धातुपाठ जैनेन्द्र धातुपाठ से परवर्ती है । कातन्त्र धातुपाठ काशकृत्स्न धातुपाठ का ही संक्षेप है, अतः काशकृत्स्न धातुपाठ का स्थान जैनेन्द्र धातुपाठ के बाद रखा जा सकता है ।

दुर्ग—

कातन्त्र धातुपाठ दुर्गसिंहप्रोक्त है । क्षीरस्वामी और पुरुषकार ने क्षीरतरंगिणी एवं दैवम् ग्रन्थों में मूल कातन्त्र धातुपाठ के उद्धरण भी दुर्गः अथवा

---

१. मीमांसक—सं०व्या०शा०इति० १।४५१

२. सि०आफ़् सं०ग्रा०, पृ० ६४

३. डि०के०आफ़् सं०मैन्यु० ६।५२

४. वही, ६।५२

५. डि०आफ़् सं०ग्रा०, पृ० १५०

दौर्गः नाम से उद्धृत किये हैं। क्षीरस्वामी ने ६३ बार दुर्गः और २३ बार दौर्गः उद्धृत किया है। प० युधिष्ठिर मीमांसक[१] और डॉ० पलसुले[२] भी इसी मत से सहमत हैं।

कातन्त्र काशकृत्स्न धातुपाठ का संक्षेप है, अतः काशकृत्स्न धातुपाठ के बाद का है।

शाकटायन धातुपाठ—

शाकटायन धातुपाठ पाल्यकीर्ति-शाकटायनप्रोक्त है। पाल्यकीर्ति यापनीय सम्प्रदाय के थे। यह दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायों का अन्तरालवर्ती सम्प्रदाय था, पायकीर्त्ति शाकटायन के समय के विषय में कोई मतभेद नहीं है। इनका समय ९वीं शताब्दी माना जाता है[३]।

हैम धातुपाठ—

हैम धातुपाठ हेमचन्द्रसूरि-प्रोक्त है। इनका जन्म गुजरात के अहमदाबाद जिले के धुन्धक नामक गांव में कार्तिक पूर्णिमा संवत् ११४५ में हुआ, और मृत्यु १२२९ में हुई। हेमचन्द्रसूरि के पिता का नाम चाचिग और माता का नाम पाहिणी था। इनका जन्म मौढवंशीय वैश्यकुल में हुआ। ये जैन मत के श्वेताम्बर सम्प्रदाय के प्रामाणिक आचार्य हैं।

डॉ० व्यूलर[४], डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री[५], डॉ० मुसलगांवकर[६], प०अम्बालाल शाह[७], प० युधिष्ठिर मीमांसक[८] तथा डॉ० सत्यकाम वर्मा[९] इनके जीवन एवं काल-निर्णय में एकमत हैं।

---

१. सं०व्या०इति० भाग ९

२. पलसुले—द संस्कृत धातुपाठाज़, पृ० ५१

३. (अ) शाकटायन के जीवन एवं काल के लिए विशेष रूप से द्रष्टव्य है— इण्डि०एण्टि० ४३।२०७

(आ) के०आफ़् सं०मैन्यु० ६/५४

(इ) प्रेमी, नाथूराम—जै०सा०इति०, पृ० १६५-६६

४. हेमचन्द्र के जीवन एवं काल के लिए विशेष रूप से द्रष्टव्य है—

(क) डॉ० व्यूलर—ला०आ०है०, द्वितीय अध्याय

५. नेमिचन्द्र—आ०है०श०अ०, पृ० ८-२५

६. मुसलगांवकर—आ०है०, पृ० ७-३०

७. शाह अम्बालाल—जै०सा०बृ०इति०, पृ० २७-२८

८. मीमांसक—सं०व्या०इति० १।

९. वर्मा, सत्यकाम—सं०व्या०उ०वि०, पृ० ३९२-९३

कविकल्पद्रुम धातुपाठ —

कविकल्पद्रुम धातुपाठ के प्रवक्ता वोपदेव हैं। इनके पिता का नाम केशव था। केशव देवगिरि के यादववंशीय सिंघण (१२१०-१३४७ ई०) के सभा-पण्डित थे। यादव-नरेश महादेव (१२६१-१२७१ ई०) तथा रामचन्द्र (१२७१-१३०९ ई०) के धर्माध्यक्ष हेमाद्रि के आश्रय में रहकर वोपदेव ने नाना-शास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थों का निर्माण किया, फलतः वोपदेव का समय १३वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध स्थिर होता है।[1]

---

१. वोपदेव के जीवन एवं काल के लिए विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं—
 (क) बेल्वेल्कर—सि०आ०सं०ग्रा०, पृ०
 (ख) उपाध्याय—बलदेव, सं०शा०इति०, पृ० ६०५
 (ग) मीमांसक—युधिष्ठिर, सं०व्या०इति०, १।६३६
 (घ) नेमिचन्द्र—आ०है०श०अ०, पृ० १०७

द्वितीय अध्याय

धात्वर्थनिर्देश की परम्परा

धात्वर्थनिर्देश की आवश्यकता—

पूर्व अध्याय में विस्तृत रूप से विवेचन कर चुके हैं कि वैयाकरणों का मुख्य कार्य शब्द-सिद्धि करना है, अर्थ-निर्देश करना वैयाकरणों का कार्य नहीं है—'न त्वर्थे नियोगः क्रियते'[1] किन्तु सूत्रों में कहीं-कहीं अर्थोपदेश किया गया है, और धातुपाठों में भी धातुएँ अर्थ-सहित निर्दिष्ट हैं। सूत्रों में अर्थनिर्देश करने का कारण यह है कि अध्येता उत्सर्ग और अपवादात्मक सूत्रों का समुचित प्रयोग कर सकेगा। उदाहरणतः 'सुप्प्रतिना मात्रार्थे'[2] सूत्र लें; जिसका अर्थ है—मात्रा (लेश) अर्थ में प्रति शब्द के साथ समर्थ सुबन्त का समास होता है। तात्पर्य यह हुआ कि लेश अर्थ से भिन्न अर्थ में प्रति शब्द का समर्थ सुबन्त के साथ समास नहीं देखा गया। सूत्र में 'मात्रा' अर्थ का निर्देश न किया जाए, तो अध्येता लक्षणाविषयक, कर्मप्रवचनीयसंज्ञक प्रति शब्द के साथ भी सुबन्त का समास कर सकता है जो व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध प्रयोग समझा जायेगा। एक अन्य सूत्र देखें—'तेन रक्तं रागात्'[3]। सूत्र का अर्थ इस प्रकार है—तृतीयान्त रागवाची शब्द से रक्त (रंगे हुए) अर्थ में अणादि प्रत्यय होते हैं। अतः स्पष्ट है कि लोक में रंगे हुए अर्थ से भिन्न अर्थ में, तृतीयान्त राग वाची शब्द से अणादि प्रत्ययों का प्रयोग नहीं देखा गया है। सूत्र में यदि 'रक्त' अर्थ का निर्देश न किया जाये तो अध्येता, तृतीयान्त राग-वाची शब्द से रंगे हुए से भिन्न अर्थ में भी, अणादि प्रत्ययों का प्रयोग कर अशुद्ध रूप बना सकता है। इस प्रकार इन उदाहरणों से व्यक्त ही है कि उत्सर्ग और अपवादात्मक सूत्रों के समुचित प्रयोगों के लिए ही सूत्रों में अर्थ-

---

१. महा० प्रदीप० ५।१।२

२. अष्टा० २।१।९

३. अष्टा० ४।२।१

निर्देश किया गया है, जैसा कि कैयट ने कहा है[1]—'असंकरेण विशिष्टस्वार्थेऽपवादा यथा स्युरित्येवमर्था अर्थनिर्देशाः'।

धातुपाठों में धात्वर्थनिर्देश धातु की क्रियावाचिता को द्योतित करने के लिए किया गया है। धातु अनेकार्थक है[2] और किसी धातु का एक अर्थ तो है नहीं,[3] प्रकरणवश अर्थ बदलता रहता है, अर्थ परिवर्तनशील है। हेलाराज ने वाक्यपदीय के तीसरे काण्ड में[4] कहा है—'विवक्षोपारूढो ह्यर्थः शब्दानाम्' (अर्थ वक्ता की इच्छा के अधीन है), अतः यदि यह समझा जाए कि धात्वर्थ-निर्देश धात्वर्थों को द्योतित करने के लिए किया गया है, तो तर्कसंगत नहीं जान पड़ता। धातु स्पन्दनात्मक, अस्पन्दनात्मक क्रियावाची हैं, और धातु के उस क्रियावाचित्व को दिखाने के लिए ही धात्वर्थनिर्देश किया गया है। चन्द्रगोमी ने भी चान्द्र धातुपाठ के प्रारम्भ में कहा है—

"क्रियावाचित्वमाख्यातुमेकोऽत्रार्थः प्रदर्शितः"।

चन्द्रगोमी इस उद्देश्य की पूर्ति में सफल भी रहे हैं। केवल १७ स्थलों को छोड़कर एक अर्थ में ही धातु का निर्देश किया गया है। पाणिनीय आदि अन्य धातुपाठों में धातुएं कहीं एकार्थी हैं, और कहीं अनेकार्थी। यहां प्रश्न उठ सकता है—धातु की क्रियावाचिता को दिखाने के लिए एक ही अर्थ पर्याप्त है, तब अनेकार्थों में धातु का उपदेश क्यों? प्रश्न का समाधान है—धातु जहां क्रियावाची है, वहां अनेकार्थत्व भी धातु का लक्षण है; अतः धातु के अनेकार्थत्व को द्योतित करने के लिए कहीं-कहीं अनेक अर्थों में धातु का उपदेश किया गया है।

धात्वर्थनिर्देश की उपलक्षणता—

धातुपाठ में धातुओं के जितने भी अर्थ निर्दिष्ट हैं, वे उदाहरणमात्र हैं। केवल उन्हीं अर्थों में धातुओं का प्रयोग होता है, ऐसा नहीं है। धातु तो अनेकार्थक हैं, सब अर्थों का परिगणन सम्भव नहीं है, अतः धातुपाठों में एक

---

१. महा० प्रदी० ४।३।१

२. एकश्च शब्दो बह्वर्थः—महा० १।२।२
को हि नाम समर्थो धातुप्रातिपदिकप्रत्ययनिपातानामर्थानामादेष्टुम्-महा० २।१।१
प्रयोगतोऽनुगन्तव्या अनेकार्था हि धातवः—चा० धा०

३. नास्ति कश्चिन्नियत एकः शब्दस्यार्थः —पुण्य० वाक्य० २।१३४

४. ३।४६७

अर्थ उदाहरण रूप में दिया गया है। महाभाष्यप्रदीप[1] में स्पष्ट कहा गया है—'अभियुक्तैरुपलक्षणतयोक्तत्वात्'। शब्दकौस्तुभ[2] में भी धात्वर्थनिर्देश को उपलक्षणात्मक ही बताया गया है—'अर्थनिर्देश उदाहरणमात्रम्'। सायण ने भी 'भू सत्तायाम्' धात्वर्थ के प्रसंग में स्पष्ट रूप से कहा है—'उपलक्षणार्थमर्थ-निर्देशः'।[3] अतः धातुपाठ में निर्दिष्ट अर्थ से भिन्न अर्थ में धातु का प्रयोग मिलने पर उस प्रयोग-विशेष को अनुचित नहीं समझना चाहिए, धातु अनेकार्थक हैं। चन्द्रगोमी ने इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा है—'प्रयोगतोऽनुगन्तव्या अनेकार्था हि धातवः'।[4]

धात्वर्थनिर्देश की पाणिनीयता—

धात्वर्थनिर्देश की परम्परा प्राचीन समय से चली आ रही है। प्राचीन पाणिनीय धातुपाठ में भी धातु अर्थसहित निर्दिष्ट हैं। कतिपय वैयाकरणों के मत में पाणिनीय धातुपाठ में धात्वर्थनिर्देश भीमसेनप्रोक्त है। डा० पलसुले भी पाणिनीय धातुपाठ में निर्दिष्टार्थ को भीमसेनीय मानते हैं, और उनके मत में धात्वर्थनिर्देश पतञ्जलि के बाद का है; क्योंकि महाभाष्य में पठित धात्वर्थ पाणिनीय धातुपाठ में पठित धात्वर्थों से भिन्न है। धात्वर्थनिर्देश पतञ्जलि से पूर्व किया गया होता तो पतञ्जलि उन उन अर्थों में धातु का पाठ अवश्य करते। धात्वर्थनिर्देश भीमसेनीय है, इस कथन में प्रमाण इस प्रकार हैं—

न नार्थपाठः परिच्छेदकः तस्यापाणिनीयत्वात्।
अभियुक्तैरुपलक्षणतयोक्तत्वात् —महाभाष्य प्रदीप १।३।१
अभियुक्तैरिति-भीमसेनेनेत्यैतिह्यम् —महाभाष्य उद्योत १।३।१
न च या प्रापणे इत्याद्यर्थनिर्देशो
नियामकः, तस्यापाणिनीयत्वात् —शब्दकौस्तुभ १।३।१
तितिक्षाग्रहणं ज्ञापकं भीमसेनादि-
कृतोऽर्थनिर्देश उदाहरणमात्रम् —शब्दकौस्तुभ १।२।२०

इन सब प्रमाणों से पुष्ट होता है कि पाणिनीय धातुपाठ में धात्वर्थनिर्देश पाणिनीय न होकर भीमसेनीय है।

वस्तुतः धात्वर्थनिर्देश पाणिनीय है, और पाणिनीय धातुपाठ में धात्वर्थनिर्देश

---

१. १।३।१ महा० प्र०
२. १।२।२०
३. मा० धा० १।१
४. चा० धा० (प्रारम्भ)

पतञ्जलि के बाद का न होकर, पाणिनि के समय का ही है। जहां तक महाभाष्य और पाणिनीय धातुपाठ में धात्वर्थों की भिन्नता का प्रश्न है, उसे इस प्रकार समझा जा सकता है—धातु क्रियावाची है। धात्वर्थनिर्देश धातु की क्रियावाचिता को दिखाने के लिए किया गया है। क्रियावाचिता को दिखाने के लिए अनेकार्थी धातु के किसी भी अर्थ का पाठ किया जा सकता है, आचार्य स्वतन्त्र हैं। अतः धात्वर्थों की भिन्नता के आधार पर यह कहना 'धात्वर्थनिर्देश पाणिनीय धातुपाठ में पतञ्जलि के बाद का है' उचित नहीं। महाभाष्य में कई धात्वर्थ तो पाणिनीय धातुपाठ में पठित धात्वर्थों से अभिन्न हैं। उदाहरणार्थ—

अश्नोतिः व्याप्तिकर्मा—महाभाष्य ६।१।१, पा० धा०—अशू व्याप्तौ।

प्रातिः पूरणकर्मा—महाभाष्य ३।४।१, पा० धा०—प्रा पूरणे।

रातेर्दानकर्मणः—महाभाष्य ६।१।३, पा० धा०—रा दाने।

महाभाष्य में एक स्थल पर[१] कहा गया है—आचार्यप्रवृतिर्ज्ञापयति नैवंजातीयकानामिद्विधिर्भवतीति, यदयमिरितः कांश्चिन्नुमनुषक्तान् पठति-उबुन्दिर् निशामने, स्कन्दिर् गतिशोषणयोः'।

यहां आचार्य शब्द पाणिनि के लिए प्रयुक्त हुआ है। व्यवहार चूंकि पाणिनि का है, अतः 'ज्ञापयति' क्रिया के कर्त्ता भी पाणिनि हुए एवं 'पठति' क्रिया के कर्त्ता भी पाणिनि हैं। इससे स्पष्ट है कि पाणिनि ने धात्वर्थनिर्देश किया था।

छाया-व्याख्याकार पायगुण्ड भी धात्वर्थनिर्देश को पाणिनीय मानकर ही लिखते हैं—'पाणिनिना प्रत्ययविशेषानाश्रयेण मृजूष् शुद्धौ इति धातुपाठ उपदिष्ट इत्यर्थः'[२] नागेश ने भी कहा है[३]—'एतत् प्रामाण्यात् केषाञ्चिद् धातूनामर्थनिर्देशसहितोऽपि पाठ इति'। सायण भी धात्वर्थनिर्देश को पाणिनीय मानकर ही लिखते हैं—'अस्माकं तूभयमपि प्रमाणमाचार्येणोभयथा शिष्याणां प्रतिपादनात्।'[४]

इस प्रकार नागेश और सायण के प्रमाणों से स्पष्ट है कि पाणिनि ने धातुएं 'संहिता' रूप में और 'अर्थसहित' दोनों प्रकार से पढ़ी थीं। जिस प्रकार अष्टाध्यायी के लघु और बृहद् दो पाठ माने जाते हैं, उसी प्रकार धातुपाठ

---

१. महा० १।३।१

२. महा० पस्पशा०

३. महा०उ० १/३/१

४. माध०धा० ४/५१

के भी लघु और बृहद् दोनों पाठ रहे होंगे। 'धात्वर्थनिर्देश भीमसेनीय हैं' इस तथ्य की पुष्टि में भी महाभाष्य-टीका में प्रमाण उपलब्ध हैं, अतः भीमसेन का निराकरण तो नहीं किया जा सकता। भीमसेन ने धात्वर्थों को ग्रन्थ रूप में निबद्ध न कर पाणिनीय धात्वर्थों का परिष्कार किया होगा। आज जो पाणिनीय धातुपाठ उपलब्ध है, सायण द्वारा परिष्कृत है। सायण से पूर्व भीमसेन ने भी धात्वर्थों का परिष्कार किया होगा। कैयट और नागेश के समक्ष भीमसेन-परिष्कृत पाणिनीय धातुपाठ ही रहा होगा।

पाणिनि से प्राचीन धातुपाठ अनुपलब्ध होने के कारण धात्वर्थों को ग्रन्थ रूप में निबद्ध करने का श्रेय पाणिनि को मिलना चाहिए अथवा पाणिनि से प्राचीन वैयाकरणों को मिलना चाहिए, इस विषय पर कुछ नहीं कहा जा सकता।

प्राचीन आचार्यों की धात्वर्थनिर्देशशैली—

पाणिनि से प्राचीन उपलब्ध निघण्टु और निरुक्त दोनों ग्रन्थों में धात्वर्थ-निर्देश किया गया है। उनसे तुलनात्मक अध्ययन करके पाणिनि से प्राचीन आचार्यों की धात्वर्थनिर्देश-शैली का ज्ञान हो सकता है।

निघण्टु में धात्वर्थनिर्देश—

निघण्टु ऋग्वेद के क्लिष्ट शब्दों का कोष है। इसमें एकार्थ-पर्याय संज्ञावाची एवं क्रियावाची शब्दों का अर्थनिर्देश किया गया है। इनमें से क्रियावाची अर्थात् तिङन्त रूप २१३ हैं, जिनका १५ वर्गों में विभाजन किया गया है, अर्थात् १५ अर्थनिर्देश हैं। उदाहरणतः—

कान्तिकर्माणः २/६, ज्वलतिकर्माणः १/१६, अत्तिकर्माणः २/८, कुध्यतिकर्माणः २/१२, गतिकर्माणः २/१४, व्याप्तिकर्माणः २/१८, वधकर्माणः २/१९, ऐश्वर्यकर्माणः २/२१, परिचरणकर्माणः ३/५, पश्यतिकर्माणः ३/११, अर्चतिकर्माणः ३/१४, याञ्चाकर्माणः ३/१९, दानकर्माणः ३/२०, अध्येषणाकर्माणः ३/२१, स्वपितिकर्माणः ३/२२।

इनमें से ६ धात्वर्थनिर्देशों का प्रथम पद तिङन्त रूप है, और अन्यों का प्रथम पद भावकृदन्त और भावकर्मतद्धितान्त है। उत्तरपद 'कर्माणः' १५ धात्वर्थनिर्देशों में ही है। 'कर्माणः' उत्तरपद धातु की क्रियावाचिता को भी द्योतित कर रहा है।

प्रायः एक धातु एक वर्ग में ही पठित है; किन्तु कुछ धातुएँ ऐसी भी हैं, जो दो वर्गों में भी पढ़ीं गईं हैं।

उदाहरणत:—

वेत्ति	कान्तिकर्माण: २/६
	अत्तिकर्माण: २/८
हर्यति	कान्तिकर्माण: २/६
	गतिकर्माणः २/१४
नक्षति	गतिकर्माण: २/१४
	व्याप्तिकर्माण: २/१८
इन्वति	गतिकर्माण: २/१४
	व्याप्तिकर्माण: २/१८
इरज्यति	ऐश्वर्यकर्माण: २/२१
	परिचरणकर्माण: ३/५
वेनति	गतिकर्माण: २/१४
	अर्चतिकर्माण: ३/१४
छन्द	अर्चतिकर्माण: ३/१४
	कान्तिकर्माणः २/६
अश	गतिकर्माणः २/१४
	अध्येषणाकर्माण: ३/२१।

निरुक्त में धात्वर्थनिर्देश—

निरुक्त निघण्टु पर ही व्याख्या ग्रन्थ है। निघण्टु में जहां सभी धात्वर्थ-निर्देशों में 'कर्माण:' उत्तरपद है, निरुक्त में वहां शैली की विविधता दृष्टि-गोचर होती है। निरुक्त में 'कर्माण:' उत्तरपद वाले धात्वर्थनिर्देश अत्यधिक हुए हैं; यहां तक कि अव्ययों का धात्वर्थनिर्देश भी 'कर्म' उत्तरपद में अन्त होता है—

स्तुतिकर्माण: १/३ हिंसाकर्माण: १/३ स्रवतिकर्माण: १/३ तृप्तिकर्माण: २/२ गतिकर्माण: २/२ उपदासयतिकर्माणः २/५ प्रकाशयतिकर्माण: २/६ खनतिकर्माण: २/६ पूजाकर्माण: २/६ अभ्यश्नुवतेकर्माण: ३/२ वधकर्माण: ३/२ ऋध्यतिकर्माण: ३/२ ऐश्वर्यकर्माण: ३/२ पश्यतिकर्माण: ३/३ पत्रपर्णकर्माण: ३/४ श्लाघाकर्माण: ४/२ दहतिकर्मा ४/३ करोतिकर्मा ४/३ भरतेर्हरतिकर्मण: ४/४ मृदुभावकर्माण: ५/३ स्पृशतिकर्माण: ५/३ रक्षाकर्मा ५/४ गृणातिकर्मा ६/२ गृह्णातिकर्मा ६/२ गिरतिकर्मा ६/२ प्रसाधनकर्मा ६/४ प्रीतिकर्मा ६/६ आप्नोतिकर्मा ७/४ नमतिकर्मा ७/४ प्रेप्साकर्मा ७/४ सिञ्चतिकर्माण: ७/७ श्रयतिकर्मा ७/७ दीप्तिकर्माणः ८/२ वृद्धिकर्माण: ९/३ उत्साहकर्माणः १०/१

उपदयाकर्मा १०/२ निवासकर्माणः १०/२ राध्नोतिकर्मा १०/२ भावकर्माणः ५।३ शब्दकर्माणः ५।३ एवङ्कर्मा ५।१ खादतिकर्माः ४।३ दीव्यतिकर्मा ३।३ श्लेषकर्माणः ४।२ विभागकर्मा ४।३ दंसयःकर्माण ४।४ अर्हन्तिकर्मा ५।१ ।

इनमें से २२ धात्वर्थनिर्देशों में पूर्व पद 'तिङन्त' है ।

निपातों का अर्थनिर्देश भी 'कर्मपदान्त' से किया गया है—

चिदित्येषोऽनेककर्मा १।२ ।

नु इत्येषोऽनेककर्मा १।२ ।

ही इत्येषोऽनेककर्मा १।२ ।

कर्म से तात्पर्य यहां अर्थ है ।

'अनेककर्मा' यहां धातु शब्दों की अनेकार्थता को द्योतित कर रहा है । धातुओं में दय और व्यन्त को[1] विशेष रूप से अनेकार्थक कहा गया है—

दहतिकर्मा, उपदयाकर्मा, विभागकर्मा, दानकर्मा ।

व्यन्त इत्येषोऽनेककर्मा—पश्यतिकर्मा, खादतिकर्मा ।

इसके अतिरिक्त अर्थ उत्तरपद के साथ भी धात्वर्थनिर्देश हुआ है— दधात्यर्थे ८।१, लवनार्थे २।१, गत्यर्थे १।६, शुद्धचर्थस्य, १२।३ क्षयार्थात् ७।६।

कुछ ऐसे भी धात्वर्थनिर्देश हैं, जिनमें गतिविशेष को द्योतित किया गया है—

द्रातीति—गतिकुत्सना २।१ ।

नीति चकद्र इति श्वगतो भाष्यते २।१ ।

विधेय-पद से रहित सप्तम्यन्त एकवचन में भी धात्वर्थनिर्देश किया गया है—

विमोचने १।६, नाशने ६।६, वशगामने ६।६, परिचर्यायाम् ११।२, स्पर्धायाम् ६।४।३३ ।

विमोचने, नाशने, वशगामने धात्वर्थ भावकृदन्त हैं ।

पाणिनि से प्राचीन आचार्यों की धात्वर्थनिर्देश-शैली पर विचार करने के बाद अब पाणिनि एवं पाणिनि से अर्वाचीन आचार्यों की धात्वर्थनिर्देश-शैली पर आते हैं ।

पाणिनि—

पाणिनीय धातुपाठ के अतिरिक्त अष्टाध्यायी में भी अनेक स्थलों पर धात्वर्थनिर्देश किया गया है । अष्टाध्यायी में 'कर्मन्' उत्तरपद से धात्वर्थनिर्देश

---

१. निरु० ४।३

नहीं हुआ है, इसके विपरीत, धातुपाठ में 'कर्मन् उत्तरपद' से धात्वर्थनिर्देश ५ स्थलों पर हुआ है—

षो अन्तकर्मणि[१], क्षल शौचकर्मणि[२], तुट कलहकर्मणि[३], भाज पृथक्कर्मणि[४], पुण कर्मणि शुभे[५]।

पाणिनीय धातुपाठ में 'कर्मन्' उत्तरपद के स्थान पर 'अर्थ' उत्तरपद से अधिक धात्वर्थनिर्देश हुआ है—

पद्यर्थे,[६] गत्यर्थाः,[७] शब्दार्थाः,[८] ईर्ष्यार्थाः,[९] शीघ्रार्थाः,[१०] हिंसार्थाः,[११] शक्यर्थे,[१२] शोभार्थे[१३], भाषार्थाः,[१४], प्रीणनार्थाः,[१५] क्षरणार्थः,[१६]

१७६ धात्वर्थनिर्देश अर्थ-युक्त बहुव्रीहि समास से हुए हैं।

पूर्वपद 'तिङन्त' से धात्वर्थनिर्देश का केवल एक उदाहरण है—'व्रीङ् वृणोत्यर्थे'[१७] जबकि निघण्टु और निरुक्त में इनकी संख्या अधिक है।

गत्यर्थक, शब्दार्थक, हिंसार्थक धातुओं के अर्थ-निर्देश में किसी विशिष्ट गति, शब्द, हिंसा का उल्लेख नहीं किया गया।

निघण्टु और निरुक्त में प्रयुक्त वध, अर्चति, परिचरण और ज्वलति

---

१. ४।४०
२. १०।५२
३. ६।८२
४. १०।२७३
५. ६।४३
६. १०।२२३
७. १।६१
८. १।२६७
९. १।३३२
१०. १।३६२
११. १।४४७
१२. ४।१६
१३. ६।३३
१४. १०।१६५
१५. १।३८०
१६. १।२४६
१७. ४।४०

धात्वर्थों का स्थान उनके पर्याय हिंसा, स्तुति, सेवा और दीप्ति धात्वर्थों ने ले लिया है।

अष्टाध्यायी और धातुपाठ में केवल १५ स्थलों पर धात्वर्थसाम्य है—

अष्टाध्यायी	धातुपाठ
१. अञ्चेः पूजायाम् ७/२/५३	१/११८
२. आशिषि नाथः २/३/५५	१/७
३. गृधिवञ्च्योः प्रलम्भने १/३/६९	१०/१४७
४. घुषिरविशब्दने ७/२/२३	१/४२४
५. जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषां हिंसायाम् ८/३/५६	१/५२६
६. तनूकरणे तक्षः ३/१/७६	१/४२६
७. दिवो विजिगीषायाम् ८/२/४९	४/१
८. मृषस्तितिक्षायाम् १/२/२०	४/५७
९. प्रजने वीयतेः ६/१/५५	२/५१
१०. वञ्चेर्गतौ ७/३/६३	१/११९
११. (वदः) व्यक्तवाचां समुच्चारणे १/३/४८	१/७३५
१२. लुभो विमोहने ७/२/५४	६/२५
१३. श्लिष आलिङ्गने ३/१/४६	४/८२
१४. सेधतेर्गतौ ८/३/११४	१/३९
१५. स्पर्द्धायामाङः १/३/३१	१/७३३

डा० पलसुले अष्टाध्यायी और धातुपाठ के अन्य धात्वर्थों में साम्य न होने के कारण धातुपाठ को अपाणिनीय मानते हैं, किन्तु इससे पूर्व धातुपाठ के पाणिनीयत्व को सिद्ध किया जा चुका है। आज जो धातुपाठ उपलब्ध है क्या वह धातुपाठ का मूलरूप है? उसमें आज तक किसी ने परिवर्तन नहीं किया होगा? इसमें शंका है। अष्टाध्यायी और धातुपाठ के धात्वर्थों में साम्य न होने में यह भी एक कारण है।

पतञ्जलि—

महाभाष्य में 'कर्मन्' उत्तरपद से धात्वर्थनिर्देश के उदाहरण अपेक्षाकृत अधिक हैं। निरुक्त में प्रयुक्त विधेय पद 'भाष्यते' का स्थान महाभाष्य में 'वर्तते' क्रियापद ने ले लिया है। उदाहरणतः हविः प्रक्षेपणे त्यागे वर्तते, वपिः प्रकिरणे दृष्टः छेदने चापि वर्तते, ईडिः स्तुतिचोदनायाच्ञासु दृष्टः, प्रेरणे

चापि वर्तते, करोतिः भूतप्रादुर्भावे दृष्टः निर्मलीकरणे चापि वर्तते ।[1]

कर्मन् उत्तरपद से धात्वर्थनिर्देश के उदाहरण देखिए—

रातेर्दानकर्मणः[2]; अश्नोतिर्व्याप्तिकर्मा[3]; प्रातिः पूरणकर्मा[4]; शवतिर्गतिकर्मा[5]; रौतिः शब्दकर्मा[6] ।

अर्वाचीन आचार्यों का धात्वर्थनिर्देश—

पतञ्जलि से अर्वाचीन चन्द्रगोमी, देवनन्दी, काशकृत्स्न, शाकटायन, हेमचन्द्र सूरि और वोपदेव वैयाकरणों ने भावकृदन्त सप्तम्यन्त एकवचन में धात्वर्थनिर्देश अधिक किया है । शब्दों के स्वल्प व्यय को ध्यान में रखते हुए 'वर्तते' और 'भाष्यते' क्रियापदों का प्रयोग नहीं किया गया। 'अर्थ-युक्त-बहुव्रीहि' से धात्वर्थनिर्देश के उदाहरण भी उत्तरोत्तर कम होते गये हैं। 'कर्मन्' उत्तरपद से धात्वर्थनिर्देश के उदाहरण एक दो की गणना में ही आते हैं। इसके विपरीत भावकृदन्त, कारक-कृदन्त, भावकर्मतद्धितान्त, अव्युत्पन्न कृदन्तों से धात्वर्थनिर्देश किये गये हैं । अगले अध्याय में अर्वाचीन आचार्यों की धात्वर्थ-निर्देश-शैली पर विस्तृत रूप से विचार किया गया है ।

---

१. १।३।१

२. ६।१।३

३. ६।१।१

४. ३।४।२

५. पस्पशाह्निक

६. १।१।१

तृतीय अध्याय

धातुपाठों में धात्वर्थनिर्देशशैली और उसकी समीक्षा

धातुपाठों में धात्वर्थनिर्देश आरम्भ से अन्त तक एक ही प्रकार से किया गया हो, ऐसा नहीं है। धात्वर्थनिर्देश की शैली में विविधता दृष्टिगोचर होती है, उसमें एकरूपता नहीं है। धातुपाठों में पठित धातुएं अर्थनिर्देश की दृष्टि से एकार्थी और अनेकार्थी दो प्रकार की हैं। एकार्थी धातुओं में भी कुछ धातुओं का अर्थनिर्देश विशेषणसहित है, और अन्य धात्वर्थनिर्देश विशेषणरहित है। अनेकार्थी धातुओं में भी अर्थनिर्देश कहीं समस्तपदों से हुआ है, कहीं असमस्त पदों से हुआ है और कहीं-कहीं समस्त और असमस्त उभयविध पदों से हुआ है। शब्द की दृष्टि से यदि धात्वर्थों का सर्वेक्षण किया जाये तो वे कहीं भावकृदन्त में हैं, कहीं कारक-कृदन्त में हैं, कहीं अव्युत्पन्न-कृदन्त में है और कहीं भाव-कर्म-तद्धितान्त में हैं। एकार्थी धातुओं में से कुछ धातुएँ ऐसी हैं; जिनके अर्थनिर्देश में उसी धातु से व्युत्पन्न प्रत्ययान्त शब्द रखे गये हैं, इसके अतिरिक्त समान अर्थ वाली धातुओं को धात्वर्थनिर्देश में एक दूसरे के पर्याय के रूप में रखा गया है। एकार्थी, अनेकार्थी धातुओं के अतिरिक्त 'कगे नोच्यते, वनु च नोच्यते'—ये दो धातुयें भी धात्वर्थनिर्देश की शैली के एक विशेष प्रकार को द्योतित करतीं हैं। 'कगे नोच्यते, वनु च नोच्यते' को छोड़कर, अन्य सब विशेषतायें, सभी धातुपाठों में उपलब्ध हैं; इतना अवश्य है कि कोई विशेषता किसी धातुपाठ में अधिक है, और किसी में कम। प्रस्तुत अध्याय में इन्हीं सब विशेषताओं पर, उदाहरण एवं परिमाण उपस्थित करते हुए, विचार किया जा रहा है।

गण सूत्र—धातुसूत्र—सप्तम्यन्त

धातुपाठों में पठित प्रत्येक धातु (कगे, वनु को छोड़कर) किसी न किसी अर्थ के साथ संयुक्त है, चाहे वह अर्थ भावकृदन्त है या कारककृदन्त

है। धातु उद्देश्य है और अर्थ विधेय है, उद्देश्य और विधेय के संयोग से ही वाक्य बनता है; अतः धातुपाठ में पठित अर्थसहित धातु धातुसूत्र कहलाता है। धातुसूत्र को गणसूत्र भी कह सकते हैं; क्योंकि गणपाठ सामान्यतः क्रम-विशेष से पढ़े गये, शब्द-समूहों का संकलन है; और धातुपाठ में चूंकि भ्वादि आदि गण, क्रम-विशेष में पढ़े गये हैं; अतः इस सामान्य अर्थ के अनुसार, धातुपाठों को भी गणपाठ कहा जाता है। जिनेन्द्रबुद्धि ने काशिका की व्याख्या न्यास में[1], धातुपाठ के लिए गणपाठ शब्द का प्रयोग भी किया है। इस प्रकार धातुपाठ (गणपाठ) में पठित धातुसूत्र पारम्परीय गणसूत्र कहलायेंगे। इन धातुसूत्र अथवा गणसूत्र में अर्थनिर्देश अधिकतर सप्तमी एकवचन में हैं, उदाहरणार्थ प्रत्येक धातुपाठ से एक-एक दृष्टान्त देखिए—

द्यु-अभिगमने, विद वेदनायाम्, कत्थ श्लाघायाम्, म्लक्ष म्रक्षक्षरणस्निग्धार्थे, तत्रि कुटुम्बधारणे, लोकृङ् दर्शने, कर्ज व्यथने, कुच-ज् रोधपर्ककौटिल्यलेखने आदि।[2]

सप्तम्यन्त एकवचनान्त अर्थ-निर्देश तालिका—

धातुपाठ	धातु-सूत्र संख्या	सप्तम्यन्त एकवचनान्त संख्या	प्रतिशत
पाणिनीय	१४६१	१३१६	९०.०७
चान्द्र	११६४	११५१	९८.८८
जैनेन्द्र	१२८२	११२०	८७.३६
काशकृत्स्न	१४४५	१३४९	९३.३५
कातन्त्र	१३२९	१२१२	९१.१९
शाकटायन	१३२०	११८४	८९.६९
हैम	१५०३	१३६७	९०.९५
कविकल्पद्रुम	१७५६	१६५३	९४.१३

उपर्युक्त तालिका से प्रकट होता है कि धातुपाठों में सबसे अधिक धात्वर्थ-

---

१. न्यास (काशिका), भाग १, पृ० २११

२. (क) पा० धा०, २/३८ (ख) चा० धा० १०/३८
(ग) जै० धा०, १/४९८ (घ) काश० ध० ९/१००
(ङ) कात० धा० ९/११४९ (च) शाक० धा० १/३२
(छ) है० धा० १/४४४ (ज) क०क०द्रु० धा० का० सं० ६४

निर्देश सप्तमी एकवचन में हैं। द्विवचन और बहुवचन में पठित धात्वर्थनिर्देश की संख्या अत्यल्प है। चान्द्र धातुपाठ में अन्य धातुपाठों की अपेक्षा सप्तमी एकवचन में पढ़े गये धातुसूत्रों की प्रतिशत संख्या अधिक है, और उसके बाद क्रम इस प्रकार है—

कविकल्पद्रुम काशकृत्स्न, पाणिनीय, कातन्त्र, हैम, जैनेन्द्र और अन्त में शाकटायन धातुपाठ।

एकार्थी, अनेकार्थी धात्वर्थनिर्देश—

इन धातुसूत्रों में, चाहे वे धातुसूत्र सप्तमी एकवचन में हैं, सप्तमी द्विवचन में हैं अथवा सप्तमी बहुवचन में हैं, धातु कहीं एक अर्थ में निर्दिष्ट है, और कहीं अनेक अर्थों में। उदाहरणार्थ 'चिति' धातु एक अर्थ में पढ़ी गई है, और 'अव' धातु एक से अधिक अर्थों में पढ़ी गई है;[१] इस प्रकार धातु कहीं एकार्थी है और कहीं अनेकार्थी है।

धातुपाठों में एकार्थी और अनेकार्थी धातुओं की परिमाण-तालिका इस प्रकार है—

धातुपाठ	धातु संख्या	अनेकार्थी धातु संख्या	प्रतिशत	एकार्थी धातु संख्या	प्रतिशत
पाणिनीय	१९०५	२१९	११.४९	१६८६	८८.५०
चान्द्र	१५७५	१७	१.०७	१५५८	९८.९२
जैनेन्द्र	१४७८	१९६	१३.२६	१२८२	८६.७३
काशकृत्स्न	२४११	२८१	११.६५	२१३०	८८.३४
कातन्त्र	१८५८	२०६	११.०८	१६५२	८८.९१
शाकटायन	१८५५	२१५	११.५९	१६४०	८८.४०
हैम	१९८०	२२८	११.५१	१७५२	८८.४८
कविकल्पद्रुम	२३५८	३२८	१३.९१	२०३०	८६.०४

इस प्रकार सभी धातुपाठों में एकार्थी धातुओं की संख्या अनेकार्थी धातुओं की संख्या से बहुत अधिक है। चान्द्र धातुपाठ में एकार्थी धातुओं की प्रतिशत

१. पा०धा० १/३४, १/३८४; जै०धा० १/४९२, १/४९६;
काश० धा० १/२, १/२७१; शाक०धा० १/४४०; १/८०२;
है०धा० १/२८, १/४८९; क०क०द्रु०धा० १८०, २८६

संख्या सब धातुपाठों से अधिक है, और उसके बाद क्रम इस प्रकार है—

कातन्त्र,पाणिनीय, हैम, शाकटायन, काशकृत्स्न, जैनेन्द्र और कविकल्पद्रुम धातुपाठ। जैनेन्द्र और कविकल्पद्रुम धातुपाठों में एकार्थी धातुओं की संख्या बराबर है। यह निश्चित है कि जिस जिस धातुपाठ में एकार्थी धातुओं की प्रतिशत संख्या अन्य धातुपाठों की अपेक्षा अधिक होगी; उसमें अनेकार्थी धातुओं की प्रतिशत संख्या अन्य धातुपाठों की अपेक्षा कम होगी। कविकल्पद्रुम और जैनेन्द्र धातुपाठ में अनेकार्थी धातुओं की प्रतिशत संख्या अन्य धातुपाठों की अपेक्षा अधिक है; और चान्द्र धातुपाठ में सबसे कम है। इस प्रकार अनेकार्थी धातुओं का अधिक से कम की ओर क्रम में धातुपाठों के उपर्युक्त क्रम से विपरीत क्रम समझना चाहिए।

एकार्थ सविशेषण धात्वर्थनिर्देश—

एकार्थी और अनेकार्थी धातुओं में भी अर्थनिर्देश विभिन्न प्रकार से हुआ है। सर्वप्रथम एकार्थी धातुओं के अर्थनिर्देश पर ही विचार करते हैं। एकार्थी धातुओं के अर्थ का निर्देश कहीं विशेषणसहित हुआ है और कहीं विशेषणरहित हुआ है।

'एकार्थी सविशेषण धात्वर्थनिर्देश' के उदाहरण देखिए—

पाणिनीय धातुपाठ[१]—सातत्यगमने, अव्यक्ते शब्दे, कुटिलायां गतौ आदि।

चान्द्र धातुपाठ[२]—गतिवैकल्ये, मन्दायां गतौ, अनृतभाषणे आदि।

जैनेन्द्र धातुपाठ[३]—किञ्चिच्चलने, गतिचातुर्ये, छद्मगतौ।

काशकृत्स्न धातुपाठ[४]—व्यक्तायां वाचि, कुत्सिते शब्दे, नीचैर्गतौ आदि।

कातन्त्र धातुपाठ[५]—कृच्छ्रजीवने, अधःपतने, देवशब्दे आदि।

शाकटायन धातुपाठ[६]—कलि शब्दे, ईषद्धसने, कुटिलायां गतौ आदि।

हैम धातुपाठ[७]—आशुगतौ, विहायसा गतौ, सम्यग्भाषणे आदि।

कविकल्पद्रुम धातुपाठ[८]—दुर्वाचि, दुर्गत्याम्, प्रसह्यहृत्याम् आदि।

---

१. १/३३, ३२६, ५२३
२. १/७२, १४१, १०/६
३. १/४८९, ४९५, ४९५
४. १/१५, २१, ३१
५. १/११४, ३/७६६, ९/१२२८
६. १।१७९, २५४, ३२६
७. १।४५०, ५८७, ९।२९८
८. ३५, ४३, ७०

एकार्थ अविशेषण धात्वर्थनिर्देश—

एकार्थी विशेषणरहित धात्वर्थ-निर्देश के उदाहरण देखिए—

पाणिनीय धातुपाठ[1]—मर्दने, लवने, भेदने आदि ।

चान्द्र धातुपाठ[2]—शोषणे, मार्जने, हसने आदि ।

जैनेन्द्र धातुपाठ[3]—धारणे, बन्धने, दाने आदि ।

काशकृत्स्न धातुपाठ[4]—दाहे, भक्षणे, त्यागे आदि ।

कातन्त्र धातुपाठ[5]—बन्धने, वर्जने, पालने आदि ।

शाकटायन धातुपाठ[6]—दाने, वेष्टने, भर्त्सने आदि ।

हैम धातुपाठ[7]—विभावने, अर्दने, चलने आदि ।

कविकल्पद्रुम धातुपाठ[8]—सर्पणे, भूषणे, लुण्ठने आदि ।

'विशेषण-सहित और विशेषण-रहित एकार्थी' धातुओं की परिमाण-तालिका इस प्रकार है—

धातुपाठ	एकार्थी धातु संख्या	सविशेषण धात्वर्थ-निर्देश संख्या	प्रतिशत	अविशेषण धात्वर्थ-निर्देश संख्या	प्रतिशत
पाणिनीय	१६८६	६३	३.७३	१६२३	९६.२६
चान्द्र	१५५८	३६	२.३१	१५२२	९७.६१
जैनेन्द्र	१२८२	५६	४.३६	१२२६	८५.६३
काशकृत्स्न	२१३०	४७	२.२०	२०८३	९७.७९
कातन्त्र	१६५२	५७	३.४५	१५९५	९६.५४
शाकटायन	१६४०	४७	२.८६	१५९३	९७.१३
हैम	१७५२	३३	१.८८	१७१९	९८.११
कविकल्पद्रुम	२०३०	३६	१.७७	१९९४	९८.२२

१. १०।१३४, २।६२, १०।४०
२. १।४१, ४२, ६८
३. १।४८९, १।४८९, १।४८९
६. १।९८, १८१, ३१७
४. १।२१, ४०, २०२
६. १।१६, ४२५, ५६४
७. १।२०५, ३६९, ४४३
८. ६०, ३२०, ३२१

इस प्रकार विशेषण-सहित एकार्थी धात्वर्थनिर्देश विशेषणरहित एकार्थी धात्वर्थनिर्देश से बहुत कम हुआ है। सविशेषण एकार्थी धात्वर्थनिर्देश जैनेन्द्र धातुपाठ में अन्य धातुपाठों की अपेक्षा अधिक हुआ है, और उसके बाद धातुपाठों का क्रम इस प्रकार है—

पाणिनीय, कातन्त्र, शाकटायन, चान्द्र, काशकृत्स्न, हैम, कविकल्पद्रुम धातुपाठ। सविशेषण एकार्थी धात्वर्थनिर्देश में अधिक से कम की ओर धातुपाठों के उपर्युक्त क्रम के विपरीत क्रम समझना चाहिए।

अनेकार्थी धात्वर्थनिर्देश—

अब अनेकार्थी धात्वर्थनिर्देश पर दृष्टिपात करते हैं। अनेकार्थी धातुओं में भी अर्थनिर्देश तीन प्रकार से हुआ है—(क) समस्त पदों से, (ख) असमस्त पदों से, (ग) उभयविध पदों से। उभयविध पदों से अनेकार्थी धात्वर्थनिर्देश के उदाहरण केवल ४ धातुपाठों में मिलते हैं। धातुपाठों के नाम इस प्रकार हैं—

पाणिनीय, काशकृत्स्न, कातन्त्र तथा कविकल्पद्रुम धातुपाठ।

प्रत्येक धातुपाठ में समस्त, असमस्त उभयविध पदों से धात्वर्थनिर्देश की परिमाण-तालिका इस प्रकार है—

धातुपाठ	अनेकार्थी धातुएँ	समस्त-पद धात्वर्थ-निर्देश संख्या	प्रतिशत	असमस्त पद धात्वर्थ निर्देश संख्या	प्रतिशत	उभय-विध पद धात्वर्थ-निर्देश संख्या	प्रतिशत
पाणिनीय	२१९	१४९	६८.०३	६९	३१.५०	१	०.४५
चान्द्र	१७	५	२९.४१	१२		—	—
जैनेन्द्र	१९६	१३८	७०.४०	५८	२९.५९	—	—
काशकृत्स्न	२८१	२०२	७१.८८	७७	२७.४०	२	०.७१
कातन्त्र	२०६	१३०	६३.१०	७५	३६.४०	१	०.४८
शाकटायन	२१५	१५५	७२.०९	६०	२७.९०	—	—
हैम	२२८	१५०	६५.७८	७८	३४.२१	—	—
कविकल्पद्रुम	३२८	१५६	४७.५६	१६३	४९.६९	९	२.७४

अब इनमें से प्रत्येक पर अलग से विचार करते हैं—

अनेकार्थी समस्त धात्वर्थनिर्देश—

सर्वप्रथम अनेकार्थी समस्त धात्वर्थनिर्देश को लेते हैं। अनेकार्थी समस्त

पदों से अर्थ-निर्देश तीनों वचनों (एक०, द्वि०, बहु०) में हुआ है। अनेकार्थी समस्त एकवचनान्त धात्वर्थ के उदाहरण ४ धातुपाठों में ही उपलब्ध हैं। धातुपाठों के नाम इस प्रकार हैं—

जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, हैम और कविकल्पद्रुम धातुपाठ।

अनेकार्थी समस्त एकवचनान्त धात्वर्थनिर्देश—

'अनेकार्थी समस्त एकवचनान्त' धात्वर्थनिर्देश के उदाहरण देखिए—

जैनेन्द्र धातुपाठ[1]— गतिहिंसायाम्, मेधाहिंसायाम्, भूषणपर्याप्तिवारणे, पदलक्षणे, श्रद्धोपहिंसायाम्।

काशकृत्स्न धातुपाठ[2]— बीजतन्तुसन्ताने, क्षरणस्निग्धार्थे।

हैम धातुपाठ[3]— प्रजनकान्त्यसनखादने।

कविकल्पद्रुम धातुपाठ[4]—स्तुतिविस्तारशुक्लाद्युक्त्युक्तिदीपने, कान्तिगतिव्याप्तिक्षेपप्रजनखादने, सेवनप्रीतिदर्शने आदि।

'अनेकार्थी समस्त एकवचनान्त' धात्वर्थनिर्देश की परिमाणतालिका—

धातुपाठ	अनेकार्थी धातु संख्या	समस्त एकवचनान्त धात्वर्थनिर्देश संख्या	प्रतिशत
जैनेन्द्र	१३८	५	३.६२
काशकृत्स्न	२०२	३	१.४८
हैम	१५०	१	०.६६
कविकल्पद्रुम	१५६	२३	१४.७४

कविकल्पद्रुम धातुपाठ में इनकी प्रतिशत संख्या सबसे अधिक है, और उसके बाद क्रम इस प्रकार है--

जैनेन्द्र, काशकृत्स्न और हैम धातुपाठ।

अनेकार्थी समस्त द्विवचनान्त धात्वर्थनिर्देश—

'द्विवचनान्त अनेकार्थी' समस्त पदों से अर्थनिर्देश के उदाहरण देखिए—

पाणिनीय धातुपाठ[1] हिंसासंक्लेशनयोः, गतिशासनयोः, स्वप्नक्षेपणयोः आदि।

---

१. १/४६२, ४६७, ४६५, १०/५०५, ५०५
२. १/६००, ६/१००
३. २/१८
४. ३१, ५१, ३७
५. १/३८, २/१७, ६/६४

चान्द्र धातुपाठ[1]	मेधाहिंसयोः, गतिशुद्ध्योः, हर्षग्लेपनयोः आदि ।
जैनेन्द्र धातुपाठ[2]	हिंसानादरयोः, प्रियसुखयोः, स्तुत्यभिवादनयोः आदि ।
काशकृत्स्न धातुपाठ[3]	हिंसागत्योः, प्लवनतरणयोः, गतिशोषणयोः आदि ।
कातन्त्र धातुपाठ[4]	कौटिल्याल्पीभावयोः, श्लेषणक्रीडनयोः, शब्दसंघातयोः आदि ।
शाकटायन धातुपाठ[5]	गतिगन्धनयोः, हर्षविमोहनयोः, शब्दोपकरणयोः आदि ।
हैम धातुपाठ[6]	शास्त्रमाङ्गल्ययोः, शब्दभक्त्योः, गोपनकुत्सनयोः आदि ।
कविकल्पद्रुम धातुपाठ[7]	वैक्लव्यविकलत्वयोः, संवृतिसंहत्योः, वासमदयोः आदि ।

द्विवचनान्त अनेकार्थी समस्त पदों से अर्थ-निर्देश की परिमाण-तालिका इस प्रकार है—

धातुपाठ	अनेकार्थी समस्त धात्वर्थनिर्देश संख्या	अनेकार्थी द्विवचनान्त धात्वर्थनिर्देश संख्या	प्रतिशत
पाणिनीय	१४९	११२	७५.१६
चान्द्र	५	४	८०.००
जैनेन्द्र	१३८	९५	६८.८४
काशकृत्स्न	२०२	१५२	७५.२४
कातन्त्र	१३०	१०६	८१.५३
शाकटायन	२१५	१००	४६.५१
हैम	१५०	११२	७४.६६
कविकल्पद्रुम	१५६	९५	६०.८९

१. १/५९७, ५८९, ५४७
२. ७/५०१, १/४९२, ४९२
३. १/८३, ३६३, ३५७
४. १/४६, २३३, ५२७
५. २/९७४, ४/११०८, ७/१३३२
६. १/३२१, ३९१, ७६३
७. १९२, १६२, १४९

द्विवचनान्त अनेकार्थी समस्त पदों से धात्वर्थ-निर्देश की प्रतिशत संख्या चान्द्र धातुपाठ में सबसे अधिक है; और उसके बाद धातुपाठों का क्रम इस प्रकार है—

कातन्त्र, काशकृत्स्न, पाणिनीय, हैम, जैनेन्द्र, कविकल्पद्रुम तथा शाकटायन धातुपाठ।

अनेकार्थी समस्त बहुवचनान्त धात्वर्थनिर्देश-—

'बहुवचनान्त अनेकार्थी समस्त पदों' से अर्थ-निर्देश के उदाहरण देखिए-—

पाणिनीय धातुपाठ[1]	व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु, कत्थनयुद्धनिन्दाहिंसादानेषु, गतिदीप्त्यादानेषु आदि।
चान्द्र धातुपाठ[2]	मारणतोषणनिशामनेषु।
जैनेन्द्र धातुपाठ[3]	मौण्ड्योपनयननियमव्रतादेशेज्यासु, दानहिंसापरिभाषणेषु, प्रतिष्ठालिप्साग्रन्थेषु।
काशकृत्स्न धातुपाठ[4]	हिंसाबलदाननिकेतनेषु, गतीन्द्रियप्रलयपूर्तिभावेषु, देवपूजासंगतिकरणदानेषु।
कातन्त्र धातुपाठ[5]	रुजाविशरणगत्यवसादनेषु, दीप्तिकान्तिगतिषु, स्नेहनसेचनपूरणेषु।
शाकटायन धातुपाठ[6]	याञ्चोपतापैश्वर्याशीःषु, स्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु, संदीपनक्लेशनजीवनेषु।
हैम धातुपाठ[7]	गतिज्ञानचिन्तानिशामनवादित्रग्रहणेषु, गतिस्थानार्जनोर्जनेषु, सम्पर्चनकौटिल्यप्रतिष्टम्भविलेखनेषु।[8]
कविकल्पद्रुम धातुपाठ[9]	क्षमायामशक्तिषु, नियमव्रतादेशोपनीतिषु, उच्छ्रायधृत्यर्चाभासु।

१. १/२७, ६/२६, १/६१४
२. १/५४३
३. १/४६१, ३६१, ४६१
४. ६/३२, ५/२०, १/६६६
५. १/८६, १/१५४, १/१०४४
६. १/५, १२, २०४
७. १/८६८
८. १/६६४, ६६१
९. ६७, ७६, १०५

'बहुवचनान्त अनेकार्थी समस्त पदों' से धात्वर्थ-निर्देश की परिमाण-तालिका—

धातुपाठ	अनेकार्थी समस्त धात्वर्थनिर्देश संख्या	समस्त बहुवचनान्त धात्वर्थनिर्देश संख्या	प्रतिशत
पाणिनीय	२०२	३७	१८.३१
चान्द्र	५	१	२०.००
जैनेन्द्र	१३८	३८	२७.५३
काशकृत्स्न	२०२	४७	२३.२६
कातन्त्र	१३०	२४	१८.४६
शाकटायन	१५५	५५	३५.४८
हैम	१५०	३७	२४.६६
कविकल्पद्रुम	१५६	३८	२४.३५

शाकटायन धातुपाठ में अनेकार्थी समस्त बहुवचनान्त से अर्थनिर्देश अन्य धातुपाठों की अपेक्षा अधिक हुआ है। उसके बाद का क्रम इस प्रकार है—

जैनेन्द्र, पाणिनीय, हैम, कविकल्पद्रुम, चान्द्र एवं कातन्त्र धातुपाठ।

अनेकार्थी असमस्त धात्वर्थनिर्देश—

'अनेकार्थी समस्त पदों' से अर्थनिर्देश पर विचार करने के बाद अनेकार्थी असमस्त पदों से धात्वर्थनिर्देश पर आते हैं। 'अनेकार्थी असमस्त पदों' से अर्थ का निर्देश भी तीन प्रकार से हुआ है—(क) च-युक्त अनुवृत्ति से, (ख) च-युक्त अनुवृत्ति-रहित, और (ग) च-रहित। वैयाकरणों की प्रायः यह शैली रही है कि वे पूर्वोक्त पद की पुनरुक्ति न कर अनुवृत्ति से उसको ग्रहण करते हैं। धातुपाठों में भी कई स्थलों पर चकार पद को ग्रहण कर अनुवृत्ति से अर्थ-निर्देश किया गया है।

अनेकार्थी असमस्त 'च-युक्त' (अनुवृत्ति-सहित) धात्वर्थनिर्देश—

पाणिनीय धातुपाठ[1]	आयामे च, घोरवासिते च, गतौ च आदि।
चान्द्र धातुपाठ[2]	घोरवासिते च, सङ्घाते च, संचये च आदि।
जैनेन्द्र धातुपाठ[3]	रुजायां च, अभिप्रीतौ च, परिवृत्तौ च आदि।

---

१. १/८१, ४३६, ४८६

२. १।२२१, २६७, ६।८६

३. १।४६०, ४६१, ४६१

काशकृत्स्न धातुपाठ[1] हिंसायां च, मार्जने च, चलने च आदि ।
कातन्त्र धातुपाठ[2] वलने च, क्षेपणे च, बाल्ये च आदि ।
शाकटायन धातुपाठ[3] माने च, सुखे च, दीप्तौ च आदि ।
हैम धातुपाठ[4] मोचने च, रक्षणे च, शैघ्र्ये च आदि ।
कविकल्पद्रुम धातुपाठ[5] चौर्ये च, सेके च, स्रंसने च आदि ।

धातुपाठ	अनेकार्थी असमस्त धात्वर्थनिर्देश संख्या	च-युक्त, अनुवृत्ति-सहित धात्वर्थ-निर्देश संख्या	प्रतिशत
पाणिनीय	६९	२२	३१.८८
चान्द्र	१२	१२	१००.००
जैनेन्द्र	५८	५७	९८.२७
काशकृत्स्न	७७	३९	५०.९४
कातन्त्र	७५	४७	६२.६६
शाकटायन	६०	५२	८६.६६
हैम	७८	७८	१००.००
कविकल्पद्रुम	१६३	२९	१७.७९

चान्द्र और हैम धातुपाठ में १०० प्रतिशत अनुवृत्ति से ही 'अनेकार्थी असमस्त' धात्वर्थों का निर्देश किया गया है; और उसके बाद धातुपाठों का क्रम इस प्रकार है—

जैनेन्द्र, शाकटायन, कातन्त्र, काशकृत्स्न, पाणिनीय तथा कविकल्पद्रुम धातु-पाठ ।

अनेकार्थी असमस्त च-युक्त (अनुवृत्ति-रहित) धात्वर्थनिर्देश—

'अनेकार्थी असमस्त धात्वर्थनिर्देश' का एक अन्य प्रकार देखिए, जहाँ असमस्त पद च-युक्त है; किन्तु वहाँ अनुवृत्ति से धात्वर्थनिर्देश नहीं किया गया ।

पाणिनीय धातुपाठ[6]—पदे लक्षणे च, पतौ याचने च, गतौ सङ्ख्याने च आदि ।

१. १।१४, ६८, ७८
२. १।७८, ६४, ८५
३. १।१९, २२, ७३
४. १।९४५, ७९७, ८७५
५. १०३, ८७, २४२
६. १०/३१४, १/५९५, १०/२५४

काशकृत्स्न धातुपाठ[1]—विशरणे विकासे च, शब्दे रोषे च, माने क्रीडायां च आदि।

कातन्त्र धातुपाठ[2]—निवासे रोगापनयने च, निशाने क्षमायाञ्च, आह्वाने रोदने च आदि।

शाकटायन धातुपाठ[3]—गतौ कम्पने च, तपसि खेदे च, चित्रीकरणे कदाचिद् दर्शने च आदि।

चान्द्र, हैम और कविकल्पद्रुम धातुपाठ में च-युक्त अनुवृत्ति-रहित धात्वर्थनिर्देश नहीं हुआ है।

'अनेकार्थी असमस्त च-युक्त अनवृत्ति-रहित धात्वर्थनिर्देश' की परिमाण तालिका—

धातुपाठ	अनेकार्थी असमस्त धात्वर्थनिर्देश संख्या	च-युक्त, अनुवृत्तिरहित धात्वर्थनिर्देश संख्या	प्रतिशत
पाणिनीय	६९	४६	६६.६६
काशकृत्स्न	५८	१	१.७२
कातन्त्र	७५	२७	३६.००
शाकटायन	६०	८	१३.३३

च-रहित अनेकार्थी असमस्त धात्वर्थनिर्देश—

अब च-रहित अनेकार्थी असमस्त धात्वर्थनिर्देश के उदाहरण देखिए—

पाणिनीय धातुपाठ[4]—कृपायां गतौ।

कातन्त्र धातुपाठ[5]—जन्मनि प्रादुर्भावे।

कविकल्पद्रुम धातुपाठ[6]—कम्पे गतौ, कीलबन्धे बलात्कृतौ, मिश्रणेऽमिश्रणे आदि।

चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, शाकटायन, हैम धातुपाठ में च-रहित असमस्त अनेकार्थी धात्वर्थनिर्देश नहीं हुआ है।

---

१. १/१२९, ३०७, ३८९
२. १/२९१, ३४८, ४९९
३. २/९८९, ४/१०६३, १०४४
४. १।५०६
५. १।५६७
६. ६०, ९२, १५३

'च-रहित अनेकार्थी असमस्त धात्वर्थनिर्देश' की परिमाण तालिका—

धातुपाठ	अनेकार्थी असमस्त धात्वर्थनिर्देश संख्या	च-रहित धात्वर्थनिर्देश संख्या	प्रतिशत
पाणिनीय	६९	१	१.४४
कातन्त्र	७५	१	१.३३
कविकल्पद्रुम	१६३	१३४	८२.२०

अनेकार्थी (समस्त, असमस्त) उभयविध पदों से धात्वर्थनिर्देश—

'उभयविध पदों से धात्वर्थनिर्देश' पाणिनीय, काशकृत्स्न, कातन्त्र और कविकल्पद्रुम धातुपाठ में हुआ है—

पाणिनीय धातुपाठ[1]—प्रतिष्ठालिप्सयोर्ग्रन्थे च,

काशकृत्स्न[2]—प्रतिष्ठालिप्सयोर्ग्रन्थे च विशरणे गत्यवसादनेषु ।

कातन्त्र धातुपाठ[3]—प्रतिष्ठालिप्सयोर्ग्रन्थे च ।

कविकल्पद्रुम धातुपाठ[4]—स्थैर्ये खननहिंसयोः, गते निन्दारम्भजवेष्वथ, मूर्तौ गमनमोहयोः, उपहतौ श्रद्धाघाते श्रद्धोपकरणयोः, स्पर्धनेश्ययोः घृणागत्योः, जिगीषेच्छापणिद्युतौ, क्रीडागत्योः, निशामने वादित्रादानगमनज्ञानचिन्तासु, शुद्धिचिन्त्योः मिश्रणे, दवाशिषोः ऐश्येऽर्थने ।

'समस्त और असमस्त उभयविधपदों' से धात्वर्थनिर्देश की परिमाण-तालिका इस प्रकार है—

धातुपाठ	अनेकार्थी धातु संख्या	उभयविध पदों से धात्वर्थनिर्देश संख्या	प्रतिशत
पाणिनीय	२१९	१	०.४५
काशकृत्स्न	२८१	२	०.७१
कातन्त्र	२०६	१	०.४८
कविकल्पद्रुम	३२८	९	२७.४३

एकार्थ और अनेकार्थ की दृष्टि से धात्वर्थनिर्देश का निरूपण करने के बाद शब्द की दृष्टि से भी धात्वर्थनिर्देश की अनेकता पर विचार करना समीचीन होगा ।

---

१. १/५

२. १/३७५, ८८

३. १/२९४

४. ७६, ९६, ११२, २२०, १७९, २९१, १७७, ६४, १८६

शब्द की दृष्टि से यदि धात्वर्थनिर्देश की आलोचना की जाये तो वे कहीं भाव-कृदन्त में हैं; कहीं कारककृदन्त में हैं; और कहीं भावकर्मतद्धितान्त में हैं।

भावकृदन्त धात्वर्थनिर्देश—

सर्वप्रथम भावकृदन्त शब्दों में अर्थ-निर्देश के उदाहरण देखते हैं—

पाणिनीय धातुपाठ[1]—व्यथने, छेदने, मोक्षणे आदि।
चान्द्र धातुपाठ[2]—सहने, दर्शने, रोगे आदि।
जैनेन्द्र धातुपाठ[3]—धारणे, बोधने, याचने आदि।
काशकृत्स्न धातुपाठ[4]—आसेचने, शोके, विभाजने आदि।
कातन्त्र धातुपाठ[5]—पाके, रोगे, विकसने आदि।
शाकटायन धातुपाठ[6]—निवासे, पालने, रोषे आदि।
हैम धातुपाठ[7]—भक्षणे, क्रोधे, दाहे आदि।
कविकल्पद्रुम धातुपाठ[8]—कोपने, भासने, त्यागे आदि।

'भावकृदन्त शब्दों' से धात्वर्थ-निर्देश की परिमाण-तालिका

धातुपाठ	धातु संख्या	भाव-कृदन्त-धात्वर्थ-निर्देश संख्या	प्रतिशत
पाणिनीय	१९०५	१७४९	९१.८१
चान्द्र	१५७५	१४४७	९१.८७
जैनेन्द्र	१४७८	१३५१	९१.४०
काशकृत्स्न	२४११	२२६२	९३.८१
कातन्त्र	१८५८	१७१५	९२.३०
हैम	१९८०	१८१७	९१.७६
कविकल्पद्रुम	२३५८	२१८७	९२.७४

कारककृदन्त धात्वर्थ-निर्देश—

कुछ धातुओं का अर्थ कारककृदन्त शब्दों से भी हुआ है। कृत प्रत्यय कर्ता

१. ६।१, ५०, १३८
२. १।२३७,३३४,५२३
३. १।४९०,४९७,४९७
४. १।४,४४,१२७
५. १।२६०,६०५,७१६
६. १।४३९,५१४,८१५
७. १।२९४,३२५,६९०
८. २७,३०,३२

अर्थ में होते हैं। कारककृदन्त से तात्पर्य यहाँ कर्तृ से भिन्न कारकों में कृत् प्रत्ययों का प्रयोग है, उदाहरणार्थ—

पाणिनीय धातुपाठ[१]—दन्दशूके।

चान्द्र धातुपाठ[२]—भीमे।

काशकृत्स्न धातुपाठ[३]—पाकाग्निकुण्डे, भद्रासने, तपसि।

कातन्त्र धातुपाठ[४]—शास्त्रे।

शाकटायन धातुपाठ[५]—तपसि।

हैम धातुपाठ[६]—जरसि।

कविकल्पद्रुम धातुपाठ[७]—तेजसि, वाचि।

कारककृदन्त शब्दों से धात्वर्थनिर्देश की परिमाण-तालिका

धातुपाठ	धातु-संख्या	कारक-कृदन्त-धात्वर्थ-निर्देश संख्या	प्रतिशत
पाणिनीय	१९०५	३	.१५
चान्द्र	१५७५	४	.२५
जैनेन्द्र	१४७८	४	.२७
काशकृत्स्न	२४११	५	.२७
कातन्त्र	१८५८	४	.२१
शाकटायन	१८५५	५	.२६
हैम	१९८०	५	.२५
कविकल्पद्रुम	२३५८	७	.२९

अव्युत्पन्नकृदन्त धात्वर्थनिर्देश—

कुछ धातुओं का अर्थनिर्देश अव्युत्पन्नकृदन्त शब्दों से भी किया गया है, उदाहरणार्थ—

---

१ १।५१

२. ६।५४

३. १।२४३,१२५, ३।४३

४. १।९

५. ४।१०६३

६. ३।२-३

७. १०८

पाणिनीय धातुपाठ[1]—बन्धुषु, कल्याणे ।
चान्द्र धातुपाठ[2]—अलीके, सुखे, दुःखे ।
जैनेन्द्र धातुपाठ[3]—अल्पे, संख्यायाम् आदि ।
काशकृत्स्न धातुपाठ[4]—छायायाम्, कलुषे, शीघ्रे, उपाये, बिम्बे आदि ।
कातन्त्र धातुपाठ[5]—अलीके, बन्धुषु ।
शाकटायन धातुपाठ[6]—सुखे, अलीके ।
हैम धातुपाठ[7]—कल्याणे, शुभे ।
कविकल्पद्रुम धातुपाठ[8]—कलहे, गण्डे, अंशे, शिवे, शुभे, कल्के, वेगे ।

'अव्युत्पन्नकृदन्त शब्दों' से धात्वर्थनिर्देश की परिमाण-तालिका

धातुपाठ	धातु संख्या	अव्युत्पन्नकृदन्त धात्वर्थ-निर्देश संख्या	प्रतिशत
पाणिनीय	१९०५	८	.४१
चान्द्र	१५७५	८	.५०
जैनेन्द्र	१४७८	४	.२७
काशकृत्स्न	२४११	१३	.५३
कातन्त्र	१८५८	९	.४८
शाकटायन	१८५५	८	.४३
हैम	१९८०	६	.३०
कविकल्पद्रुम	२३५८	६	.२५

भावकर्मतद्धितान्त धात्वर्थनिर्देश—

इसके अतिरिक्त कुछ धात्वर्थनिर्देश भावकर्मतद्धितान्त हैं। उदाहरणार्थ—
पाणिनीय धातुपाठ[9]—शैथिल्ये, वैक्लव्ये, कार्कश्ये आदि ।

---

१. १।५६६, १५
२. १।२३६,३२५,५१४
३. ४।४६६, १।४६१
४. १।३१६, ५१२, ६।१६, १७२
५. १।२३१, ५५२
६. १।२२, ८५६
७. ६।६७, ६।५०
८. १३६, १५७, २०१, २१७, २०१, २२८, २८२
९. १०।२६५, १।५०७, २३८

चान्द्र धातुपाठ[1]—बाहुल्ये, धान्ये, वैकृत्ये, वैचित्र्ये ।
जैनेन्द्र धातुपाठ[2]—शैत्ये, शैघ्र्ये, परमैश्वर्ये आदि ।
काशकृत्स्न धातुपाठ[3]—कौटिल्ये, वैकल्ये, स्थौल्ये आदि ।
कातन्त्र धातुपाठ[4]—बाल्ये, दैन्ये, दौर्बल्ये आदि ।
शाकटायन धातुपाठ[5]—कैतवे, धाष्ट्र्ये, अधाष्ट्र्ये सामर्थ्ये, माधुर्ये आदि ।
हैम धातुपाठ[6]—अल्पत्वे, महत्त्वे ।
कविकल्पद्रुम धातुपाठ[7]—चापले, मैथुने, चौर्ये आदि ।

भावकर्मतद्धितान्त शब्दों से धात्वर्थनिर्देश की परिमाण-तालिका

धातुपाठ	धातु-संख्या	भावकर्म-तद्धितान्त धात्वर्थनिर्देश-संख्या	प्रतिशत
पाणिनीय	१९०५	१३०	६.८२
चान्द्र	१५७५	१०१	६.४१
जैनेन्द्र	१४७८	९७	६.५६
काशकृत्स्न	२४११	११५	४.७६
कातन्त्र	१८५८	११०	५.९२
शाकटायन	१८५५	११५	६.१९
हैम	१९८०	१३३	६.७१
कविकल्पद्रुम	२३५८	९५	४.०२

धातुपाठों में किन्हीं स्थलों पर 'उसी धातु से व्युत्पन्न प्रत्ययान्त शब्द' भी धात्वर्थ के रूप में रखे गये हैं। उदाहरणार्थ—

पाणिनीय धातुपाठ[8]—तृप-तृप्तौ, हसे-हसने, दम्भु-दम्भे आदि ।
चान्द्र धातुपाठ[9]—स्खद-स्खदने, वृतु-वर्तने, वृजी-वर्जने आदि ।

---

१. ६।८४, ३।१२, ४।२७, १।८
२. १।४८९, ४९१, ४९३
३. १।५७, ११७, १३२
४. ५।९४५, ९८७, ९।१२३६
५. १।६२७, १५०, १४४, ६३
६. ३।१३४, १।६८०
७. २५, १०३, ३८
८. ६।२७, १।४६२, ५।२४
९. १।५०३, ५।१०३, १।६२

जैनेन्द्र धातुपाठ[1]—वृधूङ्-वृद्धौ, वेष्ट-वेष्टने, तुडिङ्-तोडने आदि।

काशकृत्स्न धातुपाठ[2]—देवृ-देवने, स्फुर-स्फुरणे, उछि-उञ्छे आदि।

कातन्त्र धातुपाठ[3]—अर्ज-अर्जने, पुष-पुष्टौ, चेष्ट-चेष्टायाम् आदि।

शाकटायन धातुपाठ[4]—बधि-बन्धने, ईर्ष्य-ईर्ष्यार्थाः।

हैम धातुपाठ[5]—ददि-दाने, शक्लृ-शक्तौ, नृतेच-नर्तने आदि।

कविकल्पद्रुम धातुपाठ[6]—गडि-गण्डे, विध-विधौ, म्रक्ष-म्रक्षणे आदि।

उसी धातु से व्युत्पन्न प्रत्ययान्त शब्दों से धात्वर्थनिर्देश की परिमाण-तालिका—

धातुपाठ	धातुसंख्या	उसी धातु से व्युत्पन्न प्रत्ययान्त-धात्वर्थनिर्देश-संख्या	प्रतिशत
पाणिनीय	१९०५	४८	२.५१
चान्द्र	१५७५	८१	५.१४
जैनेन्द्र	१४७८	७६	५.१४
काशकृत्स्न	२४११	७०	२.९०
कातन्त्र	१८५८	६९	३.७१
शाकटायन	१८५५	५४	२.९१
हैम	१९८०	५८	२.९२
कविकल्पद्रुम	२३५८	८०	३.३९

आतिदेशिक धात्वर्थनिर्देश—

समान अर्थ वाली धातुओं में अतिदेश से अर्थनिर्देश किया गया है, उदाहरणार्थ—

पाणिनीय धातुपाठ[7]—वेवीङ्-वेतिना तुल्ये, व्रीङ् वृणोत्यर्थे, षुह चक्यर्थे।

जैनेन्द्र धातुपाठ[8]—व्रीङो-वृणोत्यर्थे, चट स्फुट घट-हन्त्यर्थे।

१. ११४९१, ४९०, ४९०
२. ११५१७, ११५०८, २१४८
३. ११६ , २२८, ३५३
४. ११७, ७३०, ८५१
५. ११७२७, ३११५, २१९
६. १५६, २१६, ३२१
७. २१८५, ४१३१, ४११९
८. ४१४९९, १०१५०३

काशकृत्स्न धातुपाठ[1]—वेवीङ् वेतिना तुल्ये ।

कातन्त्र धातुपाठ[2]—वेवीङ् वेतिना तुल्ये, आङः षद् पत्यर्थे ।

शाकटायन धातुपाठ[3]—चट स्फुट घट हन्त्यर्थाः ।

हैम धातुपाठ[4]—आधृङ् नाधृङ्वत्, अग अकवत्, चीवृग् शषीवत्, खवश् हेठश्वत् ।

कविकल्पद्रुम धातुपाठ[5]—शेल षेल केलवत्, लव खचवत्, वल्यूल वल्युल पल्यूलार्थे, खल क्षलनार्थे, वन तनवत्, वाधृङ् बाधृवत्, मेधृ मेधृवत्, गेपृ केपृवत् आदि ।

अतिदेश से धात्वर्थनिर्देश की परिमाण-तालिका—

धातुपाठ	धातु-संख्या	आतिदेशिक धात्वर्थ-निर्देश-संख्या	प्रतिशत
पाणिनीय	१६०५	३	.१५
जैनेन्द्र	१४७८	४	.२७
काशकृत्स्न	२४११	१	.०४
कातन्त्र	१८५८	२	.१०
शाकटायन	१८५५	३	.१६
हैम	१६८०	४	.२०
कविकल्पद्रुम	२३५८	४५	१.६०

कविकल्पद्रुम धातुपाठ में ऐसे धात्वर्थों की प्रतिशत संख्या सबसे अधिक है; उसके बाद धातुपाठों का क्रम इस प्रकार है—जैनेन्द्र, पाणिनीय, हैम, शाकटायन, कातन्त्र, काशकृत्स्न, चान्द्र धातुपाठ में अतिदेश से धात्वर्थनिर्देश नहीं किया गया ।

अर्थयुक्त बहुव्रीहि धात्वर्थनिर्देश—

समान अर्थ वाली धातुओं का यदि एक ही सूत्र में परिगणन है, तब उनका

---

१. २।५७

२. २।६७४, ६।१३२२

३. ६।१५७३

४. १।७४७, १०२२, ६२१, ६।४६

५. २८३, २८६, ३४, २७२, २२३, २१६, २१४, २२७-२८

अर्थनिर्देश 'अर्थ' शब्द के साथ बहुव्रीहि समास में है । उदाहरणार्थः भाषार्थाः, गत्यर्थाः, हिंसार्थाः, शब्दार्थाः, भासार्थाः ।[1]

'अर्थ-युक्त बहुव्रीहि' से धात्वर्थनिर्देश की परिमाणतालिका—

धातुपाठ	सूत्र-संख्या	अर्थयुक्त बहुव्रीहि से धात्वर्थनिर्देश सूत्र-संख्या	प्रतिशत
पाणिनीय	१४६१	१५	१.०२
जैनेन्द्र	१२८२	३	०.२३
काशकृत्स्न	१३४९	१	०.०७
कातन्त्र	१३२९	१३	०.९७
शाकटायन	१३२०	६	०.४५
हैम	१३६७	४	०.२९

चान्द्र धातुपाठ और कविकल्पद्रुम धातुपाठ में 'अर्थ-युक्त बहुव्रीहि' से अर्थ-निर्देश नहीं हुआ है ।

नोच्यते—

इन विशेषताओं के अतिरिक्त पाणिनीय धातुपाठ और कातन्त्र धातुपाठ में पठित कगे नोच्यते, वनु च नोच्यते[2], 'धात्वर्थनिर्देश' के एक विशेष प्रकार को द्योतित करती हैं । काशकृत्स्न धातुपाठ में कगे धातु 'गति' अर्थ में और 'वनु' धातु 'स्मरण' अर्थ में पढ़ी गयी है । कविकल्पद्रुम धातुपाठ में 'कगे' धातु 'क्रियासु' अर्थ में और 'वनु' धातु 'व्यापृति' अर्थात् 'व्यापार' अर्थ में पढ़ी गई है । अन्य धातुपाठों में कगे और वनु धातु का पाठ नहीं है ।

इस प्रकार धात्वर्थनिर्देश की रचनापद्धति में अनेकरूपता दृष्टिगोचर होती है । धात्वर्थनिर्देश की विशेषताओं पर उदाहरणसहित एवं कौन सी विशेषता किस धातु में कितने प्रतिशत है और किस धातुपाठ में अन्य की अपेक्षा अधिक

---

१. पा०धा० (क) १०।१९५ (ख) १।७७ (ग) १।३७० (घ) १।१५५
चा०धा० (ख) १।३८ (ग) १।१४२ (घ) १/८०
जै०धा० १०।५०४ (ग) ६।५००
काश०धा० (क) ६।१८८
कात०धा० (क) ६।१२१८ (ख) १।३८ (ग) १।१३९ (घ) १।७९
शाक०धा० (क) ६।१६०२ (ग) १।३३३
है०धा० (ग) १।१०४३-४६ (ड) ६।२००-३६
२. पा०धा० १।५२२, १।५२८; कात०धा० १।५१२, १।५१८

है, इतना ही ऊपर विचार किया गया है। इनमें से कुछ विशेषताएँ ऐसी हैं, जो व्याख्यातव्य हैं—

(१) धातुओं का एकार्थत्व और अनेकार्थत्व।

(२) उभयविध पदों में समास।

(३) अर्थ-युक्त बहुव्रीहि समास।

(४) कगे नोच्यते, वनु च नोच्यते।

अब इनमें से प्रत्येक पर अलग-अलग विचार प्रस्तुत है—

धातुओं का एकार्थत्व और अनेकार्थत्व—

जहाँ तक धातुओं के एकार्थत्व और अनेकार्थत्व का प्रश्न है, एकार्थी धातुओं की संख्या बहुत अधिक है, यह पहले दिखा चुके हैं। एकार्थी धातुओं की संख्या अधिक होने के कारण यह सन्देह होना सम्भव है कि धातु कहीं एकार्थी तो नहीं है; अथवा धातु जहाँ एक अर्थ में निर्दिष्ट है, उसी एक अर्थ में उस धातु का प्रयोग होता है और जहाँ धातु अनेकार्थी है, उन्हीं अर्थों में उसका प्रयोग होता है। अतः यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि न तो धातु एकार्थी है और न ही जिस अर्थ में निर्दिष्ट है उसी अर्थ में उसका प्रयोग होगा; बल्कि एकार्थी धातुओं की संख्या अधिक होने पर भी सामान्यतया धातुएँ अनेकार्थी हैं, जिस एक अर्थ में धातु का निर्देश हुआ है, वह तो उपलक्षण मात्र है, धातु की क्रियावाचिता, उसके लक्षण को द्योतित करना ही धात्वर्थनिर्देश करने का उद्देश्य है और उस उद्देश्य की सफलता यदि वैयाकरणों को एक ही धात्वर्थ होने से मिल गई तो उन्होंने अनेक अर्थों में धातु का पाठ करने की आवश्यकता नहीं समझी। सायण ने भी माधवीय धातुवृत्ति में 'भू सत्तायाम्' धात्वर्थ के प्रसंग में स्पष्ट रूप से कहा है—'उपलक्षणमर्थनिर्देशः'[1] अर्थात् सत्ता अर्थ से अतिरिक्त अर्थों में भी 'भू' धातु का प्रयोग होता है, एक अर्थ तो उपलक्षणमात्र दिया गया है। सत्ता अर्थ से भिन्न अर्थों में सायण ने 'भू' धातु के प्रयोग भी दिखाये हैं।[2] सायण के अतिरिक्त चन्द्रगोमी ने भी चान्द्र धातुपाठ के प्रारम्भ

---

१. माध०धा०, पृ० २

२. हिमवतो गङ्गा प्रभवति, मलो मल्लाय प्रभवति, ग्रामस्य प्रभवति, परान् पराभवति इदमेव सम्भवति, स्थाली तण्डुलान् सम्भवति, शमनुभवतीत्यादौ प्रकाशनाङ्गनिःसरणपर्याप्त्यैश्वर्याभिभवोत्प्रेक्षान्तर्भावनसंवेदनादीनामवगमात्। न न मन्तव्यम्-प्रभुप्रभृतयस्समुदाया एवैतेष्वर्थेषु वर्त्तन्ते इति।

में बड़े ही स्पष्ट शब्दों में कहा है कि चान्द्र धातुपाठ में धातु की क्रियावाचिता को द्योतित करने के लिए ही एक अर्थ दिया जा रहा है, धातुएँ अनेकार्थक हैं, उनके अनेक अर्थ प्रयोगों से जानने चाहिए—

'क्रियावाचित्वमाख्यातुमेकैकोऽर्थः प्रदर्शितः,
प्रयोगतोऽनुगन्तव्या अनेकार्था हि धातवः ।'[1]

'विभिन्न धातुपाठों में धात्वर्थभेद' अध्याय में विशेष रूप से यही दिखाया गया है कि किस तरह से धात्वर्थ परिवर्तन होता जाता है ।

वैयाकरणों के मत में धातुओं का एक अर्थ धातु की क्रियावाचिता को ही द्योतित करने के लिए दिया गया है; और धातु की क्रियावाचिता को द्योतित करने के लिए जब एक अर्थ पर्याप्त है, तब यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि सब धातुओं का एक अर्थ में ही क्यों नहीं निर्देश किया गया, कुछ धातुओं का ही अनेक अर्थों में पाठ क्यों किया गया है ? सायण ने इस प्रश्न का समाधान इस प्रकार किया है—

"अनेकार्थाभिधानं प्रपञ्चार्थम्"[2] ।

हमारा विचार यह है कि धातुएँ अनेकार्थी हैं और धातुओं के अनेकार्थत्व का भी संकेत तो धातुपाठों में मिलना ही चाहिए । इस अभिप्राय से वैयाकरणों ने कुछ धातुओं को अनेक अर्थों में पढ़ा है । सभी धातुओं के सभी अर्थों का निर्देश करना तो सम्भव नहीं है, और अर्थनिर्देश का उद्देश्य भी जबकि धातु की क्रियावाचिता-मात्र को ही द्योतित करना है; जिसके लिए एक अर्थ का निर्देश पर्याप्त है; अतः एकार्थ में ही अधिकतर धातुओं का पाठ किया गया है, उसकी प्रतिशत संख्या भी पहले दिखा चुके हैं, किन्तु क्रियावाचिता जहाँ धातु का लक्षण है वहाँ धातु का अनेकार्थी होना भी तो धातु का ही एक स्वरूप है; और इस स्वरूप का भी संकेत करना तो आवश्यक ही है; अतः वैयाकरणों ने कुछ धातुओं का, अनेक अर्थों में पाठ कर, धातु के अनेकार्थत्व की ओर संकेत किया है ।

डॉ० पन्सुले ने अपने शोध प्रबन्ध[3] (The Sanskrit Dhatupathas : A Critical Study) में धातुओं के अनेकार्थत्व को बहुत अच्छी तरह से स्पष्ट किया है कि धातुओं के अनेकार्थी होने से यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि वे चाहे जिस अर्थ में प्रयुक्त की जायें । अनेकार्थत्व से तात्पर्य इतना ही है

---

१. चा०धा० पृ० १
२. माध०धा०, पृ० ३
३. पृ० ११७

कि धातुपाठों में निर्दिष्ट अर्थों से भिन्न अर्थों में भी धातु के प्रयोग होते हैं। किसी पुस्तक में यदि धातुपाठ में निर्दिष्ट अर्थ से भिन्न अर्थ में धातु का प्रयोग मिले तो यह नहीं समझना चाहिए कि अर्थ तो धातुपाठ में नहीं दिया गया, अतः इस अर्थ में धातु का प्रयोग अनुचित है।

एकार्थत्व और अनेकार्थत्व में एक और बात ध्यान देने योग्य है कि 'कुर्द खुर्द गुर्द गुद क्रीडायामेव'[1] धात्वर्थ अनेकार्थत्व का बाधक है, क्योंकि एक शब्द से एक अर्थ में ही इन धातुओं का प्रयोग होगा—ऐसी प्रतीति होती है; जब-कि धातुओं को अनेकार्थी बताया गया गया है। सायण धात्वर्थनिर्देश के उप-लक्षण में 'क्रीडायामेव' धात्वर्थ को प्रमाणस्वरूप मानते हैं[2]; किन्तु क्रीडाया-मेव' अर्थ को धात्वर्थनिर्देश की उपलक्षणता में प्रमाणस्वरूप मानना उचित नहीं प्रतीत होता। 'स्व' पाठ निश्चित रूप से कुर्द खुर्द धातुसूत्र से पूर्वपठित 'उर्द माने क्रीडायां च' धातुसूत्र में से 'माने' धात्वर्थ का निराकरण करने के लिए किया गया है, डॉ० पलसुले भी इसी मत से सहमत हैं।[3]

उभयविध पदों से समास—

'च-युक्त असमस्त पदों' से धात्वर्थनिर्देश के विषय में क्षीरस्वामी का मत है कि 'चकार' पद को ग्रहण कर धातु का पृथक् पाठ धात्वर्थ के विरल प्रयोग को सूचित करता है[4], 'गाधृ प्रतिष्ठालिप्सयोर्ग्रन्थे च' यहाँ ग्रन्थ धात्वर्थ का पृथक् पाठ है; अतः 'ग्रन्थ' धात्वर्थ मुख्यार्थ न होकर गौण है। पुरुषकार ने 'पाङ् पाने' धात्वर्थ के प्रसंग में कहा है कि 'चकार' पाठ धात्वर्थ के प्रयोग-बाहुल्य को द्योतित करता है। लीबिश के मत के अनुसार चकार पाठ को ग्रहण कर धात्वर्थों का जो पृथक् पाठ किया है; वह पाठ पश्चाद्वर्ती विदग्धों का है।[5] उनके मत में 'पूयी-विशरणे दुर्गन्धे च' धात्वर्थ में 'दुर्गन्ध' धात्वर्थ मूल पाठ नहीं है, पश्चाद्वर्त्ती विद्वानों ने उस अर्थ का बाद में समावेश किया है। यही मत श्री प० युधिष्ठिर मीमांसक का भी है, और उन्होंने अपने इस मत का उल्लेख दैवम् ग्रन्थ[6] में 'माङ् माने' धात्वर्थ के प्रसंग में किया है। डॉ० पलसुले के मत में समस्त और असमस्त अर्थात् उभयविध पदों से जहाँ धात्वर्थनिर्देश किया गया है; उन स्थलों पर जो असमस्त धात्वर्थ है, वह

---

१. १।२०

२. अर्थनिर्देशस्योपलक्षणत्वम् एव 'कुर्द खुर्द गुर्द गुद क्रीडायामेव' इत्येवकारोपपत्तिः—माध०धा०, पृ० ३

३. पलसुले, द संस्कृत धातुपाठाज, ए क्रिटिकल स्टडी, पृ० ११८

४. अस्य पृथक्पाठो विरलप्रयोगार्थः —क्षीर० १।५

५. पलसुले, द संस्कृत धातुपाठाज, ए क्रिटिकल स्टडी, पृ० ११८

६. पृ० १७

पश्चाद्वर्त्ती विद्वानों द्वारा विहित है।[1] उन्होंने उदाहरण से स्पष्ट किया है कि गाधृ धातु 'प्रतिष्ठालिप्सयोर्ग्रन्थे च' अर्थ में पढ़ी गई है, यहाँ अर्थनिर्देश यदि किसी एक व्यक्ति द्वारा किया गया होता तो वे 'प्रतिष्ठालिप्साग्रन्थेषु' अर्थनिर्देश करते, न कि उभयविध पाठों से।

हमारा विचार है कि जहाँ चकार पद को ग्रहण कर असमस्त पदों से अर्थनिर्देश किया गया है, जैसे 'गतौ याचने च' और जहाँ समस्त और असमस्त उभयविध पदों से अर्थनिर्देश किया गया है, जैसे 'गाधृ प्रतिष्ठालिप्सयोर्ग्रन्थे च' ऐसे दोनों प्रकार के स्थलों पर धात्वर्थ का पश्चाद्वर्ती विद्वानों द्वारा समावेश नहीं किया गया, बल्कि वे धात्वर्थ मूल हैं तथा रचना-पद्धति के वैचित्र्य को द्योतित करते हैं। धात्वर्थनिर्देश भिन्न-भिन्न प्रकारों में किया गया है; और कारक कृदन्तों से और अव्युत्पन्न कृदन्त शब्दों से धात्वर्थनिर्देश की प्रतिशत संख्या भी बहुत कम है; इससे यह कदापि नहीं समझना चाहिए कि प्रतिशत संख्या भी बहुत कम है, अतः पश्चाद्वर्ती विद्वानों द्वारा बाद में समावेश किया गया होगा। कविकल्पद्रुम धातुपाठ में उभयविध पदों से ९ धात्वर्थनिर्देश किये गये हैं, काशकृत्स्न धातुपाठ में ऐसे धात्वर्थनिर्देशों की संख्या २ है, यह पहले भी दिखा चुके हैं, यह धात्वर्थनिर्देश की शैली के ही एक प्रकार को द्योतित करते हैं और यह भी आवश्यक नहीं कि धात्वर्थनिर्देश एक ही प्रकार से किया जाये।

अर्थयुक्त बहुव्रीहि समास—

'अर्थयुक्त बहुव्रीहि समास' से धात्वर्थ-निर्देश के उदाहरण पाणिनि से भी प्राचीन शैली का नमूना है। निरुक्त में ऐसे धात्वर्थ अत्यधिक हैं, पाणिनि ने भी निरुक्त से ही संकेत लिया होगा, ऐसी सम्भावना है।

कगे नोच्यते, वनु च नोच्यते—

अब 'कगे नोच्यते', 'वनु च नोच्यते' पर विचार करते हैं। पाणिनि और दुर्गाचार्य ने कगे और वनु धातुओं का पाठ अर्थरहित किया है, और अर्थ के निर्देश न करने में क्षीरस्वामी ने यह कारण दिया है कि धातुएँ अनेकार्थक हैं[2]; और मैत्रेयरक्षित के मत में कगे, वनु दो धातुएँ क्रियासामान्यवाची हैं[3]; अतः इनका अर्थनिर्देश नहीं किया गया, किन्तु धातुपाठ में देखते हैं कि अनेकार्थक

---

१. द संस्कृत धातुपाठाज, ए क्रिटिकल स्टडी, पृ० ११८

२. क्षीर०, पृ० १०९
कगे नोच्यते। अस्यामर्थ इति नोच्यतेऽनेकार्थत्वात्।

३. धा०पु०—कगे नोच्यते। अस्यामर्थ इति नोच्यते।
क्रियासामान्यमस्यार्थं इति यावत्।

और क्रियासामान्यवाची अनेक धातुओं का अर्थनिर्देश किया गया है; उदाहरणार्थ 'अव' धातु ही लें, यह धातु २०-२१ अर्थों में पढ़ी गई है, अतः क्षीरस्वामी का कगे, वनु धातुओं के अर्थनिर्देश न करने में धातुओं के अनेकार्थत्व को कारण मानना चिन्त्य है। इसके अतिरिक्त वैयाकरण धातुओं को अनेकार्थी ही मानते हैं, अनेकार्थी होते हुए भी धातुपाठों में अर्थनिर्देश किया गया है; अतः कगे, वनु धातुओं के सम्बन्ध में क्षीरस्वामी का सिद्धान्त 'कि धातुएँ अनेकार्थी हैं, अतः अर्थनिर्देश नहीं किया जा रहा'—स्वयं ही खण्डित हो जाता है।

'डुकृञ् करणे'[1] धातु क्रियासामान्यवाची है; उदाहरणार्थ देवदत्तः पठति, यज्ञदत्तः शृणोति, विष्णुमित्रो व्याख्याति'। यदि एक आगन्तुक यह पूछे कि किमिमे कुर्वन्ति ? तब यहाँ कृ धातु, से पठ, श्रु, ख्या धातुओं के अर्थों का अनुवाद होता है; अर्थात् कृ धातु सब क्रियाओं को कहने में समर्थ है, क्रिया-सामान्यवाची है और क्रिया-सामान्यवाची होते हुए भी धातुपाठ में 'डुकृञ् करणे' धात्वर्थनिर्देश किया गया है; अतः मैत्रेयरक्षित का धात्वर्थनिर्देश न करने में धातु के क्रियासामान्यवाचित्व को कारण मानना तर्कसंगत नहीं जान पड़ता।

डॉ० पलसुले के मत में कगे और वनु धातुओं के अर्थ की अनुपलब्धि से भीमसेन ने कगे और वनु धातुओं का अर्थनिर्देश नहीं किया।[2]

हमारे विचार में पाणिनीय धातुपाठ से पूर्ववर्ती धातुपाठ में कगे और वनु धातुएँ जिस अर्थ में पढ़ी गई होंगी, वे अर्थ पाणिनि के समय में लुप्त हो गए होंगे; अतः उन्होंने धातुओं का पाठ अर्थ-रहित ही कर दिया अथवा यहाँ मित् संज्ञा का प्रकरण है। पूर्वाचार्यों ने कगे और वनु का पाठ इस स्थल पर किया था, किन्तु पाणिनि इससे सहमत नहीं हैं।

धात्वर्थनिर्देश की समीक्षा—

यह विचार करना उचित होगा कि धात्वर्थनिर्देश जिन-जिन प्रकारों से किया गया है, क्या वे सब प्रकार उचित धात्वर्थबोध में समर्थ हैं ? 'धातु का स्वरूप और प्रवचन' नामक अध्याय में वर्णित धातुस्वरूप पर यदि पुनर्विचार किया जाये तो धात्वर्थनिर्देश की समीक्षा में और अधिक समर्थ हो जाते हैं। धातु स्पन्दनात्मक और अस्पन्दनात्मक क्रियावाची है। वैयाकरणों के मत में धात्वर्थनिर्देश धातु की क्रियावाचिता को ही द्योतित करने के लिए किया गया

---

१. पा०धा० ८/१२; चा०धा० ८/७; जै०धा० ६/५०२; काश०धा० ८/१२ कात०धा० ७/६६५

२. द संस्कृत धातुपाठाज़, ए क्रिटिकल स्टडी, पृ० १२५

है; किन्तु धातुपाठ में निर्दिष्ट धात्वर्थों का यदि इस दृष्टि से सर्वेक्षण किया जाये तो बहुत कम ऐसे अर्थ दिखाई देंगे, जिनमें क्रिया व्यक्त है।

व्यक्त धात्वर्थ—

धातुपाठों में 'व्यक्त धात्वर्थों' की परिमाण-तालिका इस प्रकार है—

धातुपाठ	धातु संख्या	व्यक्त धात्वर्थ	प्रतिशत
पाणिनीय	१९०५	११०	५.७७
चान्द्र	१५७५	७१	४.५०
जैनेन्द्र	१४७८	८९	६.०२
काशकृत्स्न	२४११	१११	४.६०
कातन्त्र	१८५८	१०४	५.५९
शाकटायन	१८५५	१११	५.९८
हैम	१९८०	९८	४.९४
कविकल्पद्रुम	२३५८	५८	२.४५

जैनेन्द्र धातुपाठ में व्यक्त धात्वर्थ की प्रतिशत संख्या अन्य धातुपाठों की अपेक्षा अधिक है, और उसके बाद धातुपाठों का क्रम इस प्रकार है—

शाकटायन, पाणिनीय, कातन्त्र, हैम, काशकृत्स्न, चान्द्र तथा कविकल्पद्रुम।

यहाँ व्यक्त धात्वर्थों की सूची दी जा रही है—

१. अक्षरविन्यासे—पा०धा० १।७१, जै०धा० ६।५०१, शाक०धा० ५।१३६१ है०धा० ५।२२।
२. अग्रगमने—पा०धा० ६।५५, काश०धा० ५।६८, शाक०धा० ७।१३४२, क०क०द्रु०धा० २६७।
३. अधःपतने—पा०धा० ४।१२३, चा०धा० ४।६३, जै०धा० ४।४९९, काश०धा० ३।६२, कात०धा० ३।७६६, शाक०धा० ३।१०८३।
४. अनृतभाषणे—कात०धा० ९।१०५५, शाक०धा० ५।१४४९, है०धा० १०।११७, पा०धा० १०।६, चा०धा० १०।६।
५. अन्तकर्मणि—पा०धा० ४।४०, कात०धा० ३।७२४, शाक०धा० ३।१११९ है०धा० ३।७।
६. अभिगमने—जै०धा० ३/४९८, कात०धा० २/६२१, शाक०धा० २/९६०।
७. अभ्यासे—पा०धा० १/६५१, जै०धा० १/४९७, काश०धा० १/३४३।
८. अभ्रशब्दे—क०क०द्रु०धा० ३९।
९. अवसाने—चा०धा० ३/२०।

१०. अश्रुविमोचने—पा०धा० २/७२, चा०धा० २/२८, जै०धा० २/४६८, काश०धा० २/३१, कात०धा० २/६४७, शाक०धा० २/६४८।
११. असद्व्यवहारे—क०क०द्रु०धा० ८३।
१२. आकाशगमने—चा०धा० १/४८७।
१३. आर्तस्वरे—क०क०द्रु०धा० ५७।
१४. आलिङ्गने—पा०धा० १०/१५, चा०धा० ३/२८, जै०धा० ४/४६८, शाक०धा० ३/१०५३।
१५. आशुगमने—काश०धा० १/२५१, कात०धा० १।१८४-५, शाक०धा० १/७६३-४, है०धा० १/४५०।
१६. आशुग्रहणे—शाक०धा० १०/१८१६।
१७. ईषत्कम्पे—क०क०द्रु० २०६।
१८. ईषद्धसने—पा०धा० १/६६६, जै०धा० १/४६१, काश०धा० १/५५०, कात०धा० १/४५७, शाक०धा० १/२५४, है०धा० १/५८७।
१९. उच्चैर्ध्वनौ—जै०धा० १/४९३।
२०. उत्प्लुत्य गत्याम्—क०क०द्रु०धा० २१०।
२१. एकचर्यायाम्—पा०धा० १/१६६, चा०धा० १/३७२, जै०धा० १/४६० शाक०धा० १/११६, क०क०द्रु०धा० १५१।
२२. कर्णभेदे—जै०ध०१०।५०४, काश०धा० १/२५२, कात०धा० ९/१२८१, शाक०धा० १०/१९४१।
२३. कर्मसमाप्तौ—पा०धा० १०/२९३, जै०धा० १०/५०४, काश०धा० १/२५३, कात०धा० ९/१२७२, शाक०धा० १० १९९५।
२४. कर्मणि शुभे—जै०धा० ६/५००, शाक०धा० ७/१३३०।
२५. कलकलध्वनौ—काश०धा० १/८९।
२६. कलहकर्मणि—जै०धा० ६/५०१, कात०धा० ५/९४१, शाक०धा० ५/१३७६।
२७. कान्तिकरणे—काश०धा० ९/७९-८०।
२८. कान्तिसंक्षये—क०क०द्रु०धा० ७७।
२९. कालोपदेशे—जै०धा० १०/५०४, कात०धा० ९/१२४६, क०क०द्रु०-धा० १८।
३०. किञ्चिच्चलने—चा०धा० १/३१६, जै०धा० १/४८९, काश०धा० १/३४३।
३१. कुटिलायां गतौ—पा०धा० १/५२३, चा०धा० १/५३४, जै०धा० १/४९२, कात०धा० १/५१३, है०धा० १/१०२०।

३२. कुट्म्बधारणे—चा०धा० १०/६५, जै०धा० १०/५०५, है०धा० १/२७१।

३३. क्षणिकेक्षणे—क०क०द्रु०धा० २२।

३४. गतिप्रतिघाते—पा०धा० १/२३१, चा०धा० १/१८६, काश०धा० १/२५२, कात०धा० १/१८६-७, शाक०धा० १/६२८, है०धा० १/२२३।

३५. गतिनिवृत्तौ—पा०धा० १/६५०, चा०धा० १/२७७, कात०धा० १/२६७, शाक०धा० १/४०३, है०धा० १/५।

३६. गतिवैकल्यै—पा.धा. १/१४५, चा.धा. १/७२, जै.धा. १/४६४, काश.धा. १/६७, कात.धा. १/६६, शाक.धा. १/५६१, है.धा. १/६८९।

३७. गत्याक्षेपे—पा.धा. १/७८, चा.धा. १/३४७, जै.धा. १/४८९, काश.धा. १/४१३, कात.धा. १/३१३, शाक.धा. २/६०, है.धा. १/६३९।

३८. गन्धोपादाने—पा धा० १/६ ०, जै०धा० १/४६७, काश०धा० १/३४० शाक०धा० १/४०१, क०क०द्रु०धा० ४१।

३९. गात्रविकर्षणे—शाक०धा० १०/१८०५।

४०. गात्रविक्षेपे—पा०धा० ४/९, काश०धा० ३/७, कात०धा० ३/७१०, शाक०धा० ३/२३४।

४१. गात्रविघूर्णने—पा०धा० १०/३२१, कात०धा० ९/१२९०, शाक०धा० १०/१७०५, है०धा० १/ ०१।

४२. गात्रविनामे—पा०धा० १/२६६, चा०धा० १/२६१, जै०धा० १/४९०, शाक०धा० ३/१५१, क०क०द्रु०धा० २९६।

४३. गुप्तोक्तौ—क०क०द्रु०धा० २६८।

४४. घोररुते—क०क०द्रु०धा० ३१५।

४५. छद्मगतौ--पा०धा० १/१२६, चा०धा०, १/१८८, जै०धा० १/४९५, काश०धा० १/२५४, कात०धा० १/१८९, क०क०द्रु०धा० २९७।

४६. जलोत्तरणे—काश०धा० १/४४।

४७. जिह्वोन्मन्थने—पा०धा० १/५३८, जै०धा० १/४९२।

४८. तन्तुसन्ताने—पा०धा० १/७३१, चा०धा० १/४२६, जै०धा० १/४९०,

काश०धा० १/४८८, कात०धा० १/४०६, शाक०धा० १/१७७, क०क०द्रु०धा० २६६।

४६. तारशब्दे—क०क०द्रु०धा० ६१।

५०. दुर्गतौ—जै०धा० ३/४६८, कात०धा० २/६५३, क०क०द्रु०धा० ५३।

५१. दृक्क्षये—क०क०द्रु०धा० १५।

५२. दृष्ट्युपसंहारे—काश०धा० १/२५३, कात०धा० ६/१२८२, शाक०धा० १०/१६४२, है०धा० १/३१६।

५३. देवपूजायाम्—चा०धा० १/६३०।

५४. देवशब्दे—पा०धा० १०/२४६, चा०धा० १०/८३, जै०धा० १०/५०४, काश०धा० १/१६६, कात०धा० ६/१२३८, शाक०धा० १६५७-५८।

५५. देश्योक्तौ—क०क०द्रु०धा० ११३।

५६. द्रव्यविनिमये—पा०धा० ६/१, चा०धा० ८/१, जै.धा. ६/५०२, काश० धा० ८/१, कात०धा० ८/६६८, शाक०धा० ४/११६०, क०क०द्रु०धा० ५११।

५७. द्वैधीकरणे—चा०धा० ७/३, जै०धा० ७/५०१, काश०धा० १/२६०, कात०धा० ६/६६७, शाक०धा० ६/१४२१।

५८. निद्राक्षये—पा०धा० १/४१७, चा०धा० १/४६०, काश०धा० १/५४६, कात०धा० २/६५२, शाक०धा० २/६५३।

५६. निन्दाक्षये—जै०धा० ३/४६८।

६०. पलायने—चा०धा० १/३७४, जै०धा० १/४६०, कात०धा० १/३५६, क०क०द्रु०धा० ५३।

६१. पादविक्षेपे—पा०धा० १/३१०, जै०धा० १/४६५, है०धा० १/३८५।

६२. पादविहरणे—चा०धा० १/१५७।

६३. पिपासायाम्—जै०धा० ४/४६६।

६४. पिशुनोक्तौ—क०क०द्रु०धा० ३२०।

६५. पुरीषोत्सर्गे—पा०धा० १/६६६, चा०धा० १/४६५, जै०धा० १/४८६, काश०धा० १/३८७, कात०धा० ५/६५४, शाक०धा० १/१७, है०धा० १/७२८।

६६. पूतीभावे—चा०धा० ३/८।

६७. पृथग्भावे—पा०धा० ३/२०, चा०धा० ७/५, जै०धा०२/४६८, कात०धा० २/६६८, शाक०धा० ६/१४२३।

६८. प्रतिदाने—पा० धा० १।६७६, चा० धा० १।८४०, काश० धा० १।५५४, कात० धा० १।४६२, शाक० धा० १।२६८ ।

६९. प्रभातीभावे—शाक० धा० १०।१८१५ ।

७०. प्रसह्यहृत्याम्—क० क० दु० धा० ७० ।

७१. प्रह्वत्वे शब्दे—पा० धा० १।७०७, चा० धा० १।२९४, काश० धा० १।२२३, शाक० धा० ।७४१ ।

७२. प्राणत्यागे—पा० धा० ६।६७, जै० धा० ६।५००, कात० धा० ५।९५४, शाक० धा० ५।१२७१ ।

७३. प्राणधारणे—पा० धा० १।३६७, चा० धा० १।१९३, जै० धा० १।४९६, कात० धा० १।१९२, है० धा० १।४६५ ।

७४. प्राणिगर्भविमोचने—पा० धा० २।५५, जै० धा० ३।४९८, शाक० धा० २।१०००, है० धा० २।४९ ।

७५. प्राणिप्रसवे—चा० धा० ४।८२, जै० धा० १।४९६, कात० धा० ३।७८४, है० धा० १।८९ ।

७६. प्लुतगतौ—पा० धा० १।४६६, चा० धा० १।२४९४, जै० धा० १।९६, काश० धा० १।३०९, शाक० धा० १।८७१ ।

७७. बलात्कारे—पा० धा० १।२२९ ।

७८. बीजजन्मनि—पा० धा० १।५८९, शाक० धा० १।३८९ ।

७९. बीजतन्तुसन्ताने—काश० धा० १।२००, कात० धा० १।६०९, शाक० धा० १।८९२ ।

८०. बीजनिक्षेपे—चा० धा० १।६३१ ।

८१. भस्मीकरणे—पा० धा० १।७१७, चा० धा० १।३०३, जै० धा० १।४९६, काश० धा० १।३१४, कात० धा० १।२४३, है० धा० १।५५२ ।

८२. भूतप्रादुर्भावे—जै० धा० ९।५०२, शाक० धा० ५।१२४९

८३. भोजननिर्वृत्तौ—पा० धा० १।७७ ।

८४. मतीक्षिते—क० क० दु० धा० २५२ ।

८५. मन्दायां गतौ—पा० धा० १।२८०, चा० धा० १।१४१, जै० धा० १।४९७, शाक० धा० १।६६० ।

८६. मार्गणसंस्कारे—काश० धा० ९।११३, शाक० धा० १०।१५१९ ।

८७. मांसपृथुले—काश० धा० १।१७७ ।

८८. मिथ्योक्तौ—क० क० दु० धा० २६३ ।

८९. मिश्रणेऽमिश्रणे—पा० धा० २।२८, क० क० दु० धा० ६० ।

९०. याच्ञायामलाभे लाभे च—पा०धा० १।३६० ।

९१. वक्त्रसंयोगे—पा०धा० १।२८५, चा०धा० १।१४५, जै०धा० १।४९५, कात०धा०—१।१४५, शाक०धा० १।६६१, है०धा० १।३७१ ।

९२. वक्रगतौ—क०क०दु०धा० ६० ।

९३. वज्रनिर्घोषे—पा०धा० १।१४७, शाक०धा० १।५६३, है०धा० १।१४९, क०क०दु०धा० १३१ ।

९४. वयोहानौ—पा०धा० १।२५, जै०धा० ४।४९९, कात०धा० ८।१०१७, शाक०धा० १०।१७६६ ।

९५. वाक्यप्रबन्धे—पा०धा० १०।२४२, चा०धा० १०।७८ ।

९६. वित्तसमुत्सर्गे—जै०धा० १०।५०४, है०धा० १।३३० ।

९७. विद्योपादाने—पा०धा० १।३८९ ।

९८ विपरीतमैथुने—पा०धा० १।७०० ।

९९. विष्ठोत्सर्गे—क०क०दु० ५८ ।

१००. विस्तारवचने—शाक०धा० १०।१५४२ ।

१०१. विहायसा गतौ—पा०धा० १।६८४, जै०धा० १।४९१, काश०धा० १।५५९, कात०धा० १।४६७, शाक०धा० १।२७४ ।

१०२. शनैर्गतौ—क०क०दु०धा० ८३ ।

१०३. शिल्पयोगे—क०क०दु०धा० ३४३ ।

१०४. शौचकर्मणि—पा०धा० १०।२२४, शाक०धा० १०।१५०५ ।

१०५. सङ्गमने—पा०धा० ६।१३७ ।

१०६. संतानक्रियायाम्—काश०धा० १।२३७ ।

१०७. संदेशवचने—पा०धा० १०।२३२, जै०धा० १०।५०५ ।

१०८. सातत्यगमने—पा०धा० १।३३, चा०धा० १।३, जै०धा० १।४९३, काश० धा० १।१, शाक० धा० १।४३७, है० धा० १।२७९, क०क० दु०धा० १७९ ।

१०९. सुखसहने—शाक०धा० १२३४ ।

११०. स्नेहस्य मोचने—पा०धा० १।४८१ ।

१११. स्वनेऽश्वानाम्—क०क०दु०धा० ४२० ।

११२. हरितभावे ।

११३. हर्षक्षये—पा०धा० १।६३३, चा०धा० १।२६०, काश० १।३२४, कात० धा० १.२५१, शाक०धा० १।४०७, है०धा० १।३१ ।

११४. हृदुच्चारे—क०क०दु०धा० २२९ ।

अव्यक्त धात्वर्थ—

इस प्रकार व्यक्त अर्थ अधिक से अधिक ६ प्रतिशत हैं। अन्य धात्वर्थ-निर्देश कहीं भावकर्मतद्धितान्त हैं जो क्रिया को व्यक्त न कर संज्ञा या क्रिया की विशेषता को प्रकट करते हैं। उनकी प्रतिशत संख्या पहले दिखा चुके हैं। भावकर्मतद्धितान्त के अतिरिक्त धात्वर्थनिर्देश अतिदेश से किये गये हैं, अर्थात् समान अर्थ वाली धातुओं के अर्थनिर्देश में एक धातु को दूसरी धातु के अर्थ के रूप में रखा गया है, अतः उनमें भी क्रिया स्पष्ट नहीं है। इनकी प्रतिशत संख्या पर भी पूर्व विचार कर चुके हैं। इसके अतिरिक्त कारक कृदन्त और अव्युत्पन्न शब्दों से जो धात्वर्थनिर्देश किये गये हैं, वे या तो विशेषण हैं या संज्ञावाचक शब्द हैं, अतः इनमें भी क्रिया अव्यक्त है। इसके अतिरिक्त गति, शब्द और हिंसा अर्थ में धातुओं का एक बहुत बड़ा वर्ग है, किन्तु वहाँ यह स्पष्ट नहीं किया गया कि वे धातुएँ कौन सी गति, शब्द और हिंसा को द्योतित करती है। तीन-चार स्थलों पर जहाँ गति, शब्द और हिंसा के विशेष प्रकार को द्योतित किया गया है, वे उदाहरण व्यक्त अर्थ की सूची में दे दिये गये हैं। भावकृदन्त शब्दों से जो धात्वर्थनिर्देश किया गया है, वे क्रिया की सिद्धावस्था में तो हैं, किन्तु उनमें जिस धातु का अर्थ-निर्देश किया जा रहा है, उसी धातु से व्युत्पन्न प्रत्ययान्त शब्द रखे गये हैं; अतः व्यक्त क्रिया की कोटि में उन्हें नहीं रखा जा सकता।

धात्वर्थ अस्पष्ट होने के कारण उञ्छि, स्फुर, लिख, देवृ, खद और रभ धातुएँ विशेषरूप से विचारणीय हैं।

उछि उञ्छे[1]—

काशकृत्स्न धातुपाठ के टीकाकार चन्नवीर ने[2] भ्वादि गण में पठित उछि उञ्छे धात्वर्थ की व्याख्या एक-एक करके दाने को उठाने अर्थ में की है—

'उञ्छ् उञ्छे कणश आदाने। उञ्छति-कणश आदत्ते, उञ्छानाम् एकैकश आदानम्।'

तुदादिगण में पठित 'उञ्छ उच्छे' की व्याख्या चन्नवीर ने[3] 'कंपाना' अर्थ में की है—

१, पा०धा० १।१३२, चा०धा० १।६२, जै०धा० १।४६४, काश०धा० १।६२, कात०धा० १।६१, शाक०धा० १।५५१, क०क०दु०धा० १।२

२. काश०धा० १।६२

३. काश०धा० ५।७६
उञ्छ्-उञ्छे, चालने; उञ्छति-कम्पयति।

क्षीरस्वामी[1] और सायण भी[2] 'कणश आदाने' अर्थ में ही उञ्छ् धातु की व्याख्या करते हैं।

धातुपाठों में धात्वर्थ का स्पष्टीकरण न होने के कारण अर्थ-निर्णय के लिए साहित्य में उञ्छ् धातु के प्रयोगों पर दृष्टिपात करना पड़ता है।

बौधायन धर्मसूत्र में[3] उञ्छ् धातु से व्युत्पन्न 'उञ्छयित्वा' शब्द का प्रयोग हुआ है—'तत्र तत्राऽङ्गुलिभ्यामेकैकामोषधि**मुञ्छयित्वा** सन्दर्शनात्क-पोतवदिति कापोता'।

उन स्थानों पर जो ओषधियाँ विद्यमान हों, उनमें दो अंगुलियों से केवल एक-एक ओषधि **ग्रहण कर** कपोत के समान जीविका-निर्वाह के कारण कापोता वृत्ति होती है।

शांखायन गृह्यसूत्र में[4] **एक-एक करके इकट्ठा करना** अर्थ में उछि धातु प्रयुक्त हुई है—तृणान्य**प्युञ्छतो** नित्यमग्निहोत्रं च जुह्वतः।

वैखानस धर्मसूत्र में[5] भी उञ्छवृत्ति शब्द का प्रयोग देखिए—

'ददाति न प्रतिगृह्णातीत्युञ्छवृत्तिमुपजीवति'।

जो देता है, किन्तु लेता नहीं है, इस **उञ्छवृत्ति** पर निर्भर रहते हैं।

महाभारत में अनुशासन पर्व में[6] धान्य का अल्प मात्रा में संग्रह करना अर्थ में ही 'उञ्छे' शब्द का प्रयोग हुआ है—

'**उञ्छे** तिष्ठन्ति धर्मज्ञाः शाकुनीं वृत्तिमास्थिताः'।

(बालखिल्यगण मुनि) **उञ्छवृत्ति** का आश्रय ले पक्षियों की भाँति एक-एक दाना बीन कर उसी से जीवन निर्वाह करते हैं।

अनुशासन पर्व में ही[7] एक अन्य स्थल पर उञ्छ् धातु का प्रयोग देखिए—

'**उञ्छन्ति**' सततं ये ते ब्राह्मं फेनोत्करं शुभम्।

ब्राह्मं अमृत के फेन को जो **थोड़ा-थोड़ा संग्रह करके सदा पान** करते हैं।

---

१. क्षीर० १।१३४

२. भाव०धा० १।१३२

३. ३।२।१२

४. २।१७।१

५. १।५।५

६. १४१।९९

७. १४१।९७

महाभाष्य में[1] एक-एक करके इकट्ठा करना अर्थ में उञ्छेन शब्द का प्रयोग हुआ है—

'यस्मिन्दश सहस्राणि पुत्रे जाते गवां ददौ ;
ब्राह्मणेभ्यः प्रियाख्येभ्यः सोममुञ्छेन जीवति'।

बाद के साहित्य में उञ्छ् धातु के प्रयोग अनुपलब्ध हैं। वैदिक साहित्य में, महाभारत में एवं महाभाष्य में उपलब्ध प्रयोगों से स्पष्ट है कि उञ्छवृत्ति एक माननीय और उपजीव्य मार्ग था। जीवन-निर्वाह के लिए जिस मात्रा में अन्न की आवश्यकता पड़ती थी, उतना ही संचय किया जाता था। मुनि और गृहस्थी के सम्बन्ध में उञ्छवृत्ति से तात्पर्य अल्प मात्रा में धान्य का संचय करना है।

पंजाबी भाषा में[2] 'ऊंछणा' शब्द का व्यवहार 'गिरे हुए दाने को इकट्ठा करने' में होता है। ऊंछणा शब्द उञ्छ् धातु से व्युत्पन्न है।

बंगला भाषा में भी उञ्छ शब्द 'बचे हुए धान को उठाना' एवं 'खेत में पड़े हुए धान को एक-एक करके उठाना' अर्थ को व्यक्त करता है।

इस प्रकार संस्कृत एवं अन्य भाषाओं से स्पष्ट है कि धातु 'एक-एक करके दाना उठाना' अथवा 'बचे हुए धान को एक-एक करके उठाना' अर्थ को व्यक्त करती है। क्षीरस्वामी और सायण द्वारा की गई उञ्छ् धातु की 'कणश आदाने' व्याख्या अधिक उपयुक्त है। यहाँ शंका उठ सकती है—'कणश आदाने' अर्थ उञ्छ् धातु के अर्थबोध में समर्थ न होने के कारण पाणिनि आदि वैयाकरणों ने उञ्छ् उञ्छे ही धात्वर्थनिर्देश किया। शंका का समाधान है—साहित्य से उञ्छ् धातु के प्रयोगों को देख लेने पर यह सिद्ध हो जाता है कि कणश आदाने व्याख्या अधिक उपयुक्त है। व्याकरणशास्त्र में यह परिभाषा प्रसिद्ध ही है—"व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि सन्देहादलक्षणम्।" लोकमान्य तिलक के मतानुसार[4] सूत्रकाल १४०० वि०पू० से ५०० वि०पू० तक है। इसी बीच श्रौत एवं गृह्यसूत्रों की रचना हुई। सूत्रकाल में उञ्छ् धातु 'कणश आदाने' अर्थ को ही व्यक्त कर रही है; और पाणिनि-सूत्रकाल से परवर्ती है ; अतः पाणिनि आदि वैयाकरणों को उञ्छ् उञ्छे धात्वर्थनिर्देश न कर 'उञ्छ् कणश आदाने' अर्थ

---

१. १।४।१
२. पं० श० कोश १।६
३. बंश०कोष १/३७६
४. उपाध्याय, बलदेव, सं०सा०इति०, पृ० ४२

करना चाहिए था। धात्वर्थ जब एक शब्द से स्पष्ट नहीं होता तब दो, तीन शब्दों में धात्वर्थ की व्याख्या का विवृति-साधन का आश्रय लेना चाहिए।

स्फुर[1] स्फुरणे— (जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम धातुपाठ)।

चलने— (चान्द्र धातुपाठ)।

सञ्चलने— (पाणिनीय)।

स्फुरणे, सञ्चलने दीप्तौ च— (धातुप्रदीप)।

स्फूर्तौ, चलने— (कविकल्पद्रुम धातुपाठ)।

चन्नवीर टीकाकार ने[2] स्फुर स्फुरणे की व्याख्या इस प्रकार की है— दर्शने, प्रकटीकरणे। स्फुरति-दर्शयति।

दुर्गा० टीकाकार ने[3] 'स्फुर् स्फूर्तौ' की व्याख्या 'प्रकाश' अर्थ में की है—

'स्फुर् स्फुरणे' से वैयाकरणों को क्या अभिप्रेत था, अर्थ-निर्णय के लिए साहित्य में स्फुर् धातु के प्रयोगों को देखना पड़ेगा—

ऋक्-संहिता में[4] स्फुर् धातु वध करने के अर्थ में प्रयुक्त हुई है—

'कदा मर्तपराधसं पदा क्षुम्यमिव स्फुरत्।'

सायण ने भाष्य में 'स्फुरत्' का अर्थ 'वधिष्यति' किया है। इन्द्र यज्ञ न करने वाले का कब वध करेगा?

'ऋक्-संहिता' में एक अन्य स्थल पर[5] 'वध करने' के अर्थ में ही स्फुर् धातु प्रयुक्त हुई मिलती है।

वाजसनेयि-संहिता में[6] गत्यर्थ में स्फुर् धातु प्रयुक्त हूई मिली है—'तां धेनुं मित्रावरुणा युवं नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीमेष ते योनिर्ऋतायुभ्यां त्वा।' उव्वट और महीधर ने भाष्य में स्फुरतिर्गत्यर्थः कहा है। 'अनपस्फुरन्तीम्' पद

---

१. पा०धा० ६/९३, चा०धा० ६/८८, जै०धा० ६/५०१, काश०धा० ५/१०३, कात०धा० ५/६५०, शाक०धा० ७/१३८६, है०धा० ५/१४६, क०क०द्रु०धा० २६९

२. काश०धा० ५/१०३

३. श०क०दु०कोष ५/४६१

४. १/८४/८

५. २/१२/१२—यो रोहिणमस्फुरद्वज्रवाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः

६. ७/१०

की व्याख्या 'अनन्यगामिनी' अर्थ में की है। हे मित्रावरुण, तुमने हमारे लिए दूसरे के पास न जाने वाली गाय धन को दिया है।

अथर्व-संहिता में[1] प्रहार करना अर्थ में स्फुर् धातु प्रयुक्त हुई है—

'यश्च गां पदा स्फुरति......।'

जो गाय को पांव से प्रहार करता है......।

कौशिक सूत्र में[2] स्फुर् धातु का प्रयोग आँख के फड़कने अर्थ में हुआ है—

अक्षि वाऽस्फुरत्।

यास्क ने निरुक्त में[3] 'स्फुरतिः वधकर्मा' कहा है और पूर्व उद्धृत 'यो रोहिणमस्फुरद्......।' मन्त्र को उदाहरण रूप में दिया है।

मैत्रायणी उपनिषद् में[4] देदीप्यमान अर्थ में स्फुर् धातु प्रयुक्त हुई है—

'स्फुरन्तमादित्यवर्णमूर्जस्वन्तं ब्रह्म तमसः पर्यपश्यत्'।

रामायण में[5] प्रकाशित होने के अर्थ में स्फुर् धातु प्रयुक्त हुई है—

'तेन स्पृष्टो बलवता महाप्रहरणोऽस्फुरत्।

बलवान् यमराज के हाथ में लिया हुआ वह महान् आयुध अपने तेज से प्रकाशित हो उठा।

महाभारत में कर्ण पर्व में[6] तड़पने के अर्थ में स्फुर् धातु प्रयुक्त हुई है—

तेषां छिन्ना महाराज, भुजाः काननभूषणाः। स्फुरन्ति च सहस्रशः; महाराज, मनुष्यों की कटी हुई सहस्रों स्वर्णभूषित भुजाएँ तड़पने लगती थीं।

विष्णु-पुराण में[7] फैलने के अर्थ में स्फुर् धातु प्रयुक्त हुई है—

'तस्य महर्षेराश्रमसमीपमुपेत्य स्फुरदंशुमालाललामां स्फटिकमयप्रासादमाला-मतिरम्योपवनजलाशयां ददर्श।'

(राजा मान्धाता) महर्षि सौभरि के आश्रम के निकट आये तो उन्होंने वहां अतिरमणीय उपवन और जलाशयों से युक्त स्फटिक शिला के महलों की

१. १३।१।५६
२. ५८।२
३. ५।१७
४. ६।२४
५. २२।३६ (उत्तरकाण्ड)
६. ५२।२५
७. ४।२।१०१

पंक्ति देखी, जो फैलती हुई मयूख-मालाओं से अत्यन्त मनोहर मालूम पड़ती थी।

श्रीमद्भागवत पुराण में[1] स्फुरन् शब्द **हिलना-डुलना** अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—

'हेमाङ्गदलसद्बाहुः स्फुरन्मकरकुण्डलः'।

भुजाओं में सुनहले बाजूबन्द और कानों में **हिलते हुए** मकराकृत कुण्डल ......।

श्रीमद्भागवत-पुराण में[2] चमकना अर्थ में भी स्फुर् धातु के प्रयोग उपलब्ध हैं।

आँख का फड़कना स्वाभाविक रूप से होता है; जो शुभ, अशुभ का सूचक है। क्रोध से फड़कने के अर्थ में भी स्फुर् धातु का प्रयोग मिलता है। मनुष्य जब किसी को मारने के लिए उद्यत होता है, दूसरे मनुष्य से बदला लेने के लिए क्रोध की अग्नि में जलता रहता है वह क्रोध के कारण फड़कना है। मत्स्यपुराण में[3] इसी अर्थ में 'स्फुरन्' शब्द का प्रयोग देखिए—

......'**स्फुरद्** भूरि शतह्रदः गम्भीरस्फोटनिर्ह्लादजगद्हृदयघट्टकः'।।

(कालनेमि नामक दानव) अनेक समुद्रों की भाँति क्रोध से **फड़कता हुआ** अपने गम्भीर शब्दों से तीनों भुवनों के हृदय को कंपाने लगा।

प्रतिमा नाटक में[4] स्फुर् धातु का प्रयोग **कम्पन** अर्थ में हुआ है—

भरतः किमाशा स्याद्।

सूतः दैवं।

भरतः **स्फुरति**: हृदयं वाहय रथम्।'

हृदय में कंपकपी उत्पन्न होती है; अतः यहाँ हृदय का प्रसंग होने के कारण स्फुर् धातु कम्पन अर्थ का वाचक है।

कुमार-सम्भव में[5] **काम द्वारा रोयों के खड़े होने** अर्थ में स्फुरद् शब्द का प्रयोग हुआ है—

'विवृण्वती शैलसुताऽपि भाव, भगैः **स्फुरद्**बालकदम्बकल्पैः।'

---

१. ८।१५।६

२. ८।२०।३२, ६।१६।३०

३. १५०।१७८

४. ३।१

५. ३।६८

पञ्चतन्त्र में[1] स्फुर् धातु का प्रयोग धन से **प्रकाशित होना** अर्थ में हुआ है—

'जातस्तु गण्यते सोऽत्र यः स्फुरेच्च श्रियाधिकः'।

वही जन्म लेने वाला गिना जाता है; जो अधिक लक्ष्मी से **प्रकाशित हो**।

पञ्चतन्त्र में[2] स्फुर् धातु का एक अन्य प्रयोग देखिए—

'**स्फुरति** सफलस्तर्कश्चित्तं समुन्नतिमश्नुते।'

सफल तर्क **फैलता है**, चित्त समुन्नति को प्राप्त होता है।

किरातार्जुनीय में[3] **विकसित होना, खिलना** अर्थ में स्फुरत् शब्द का प्रयोग हुआ है—'स्फुरत्पद्ममिवाभिपेदे'।

दीप्ति **विकसित** कमलों का आश्रय ग्रहण करती है।

दशकुमारचरित में[4] **प्रकटीकरण** अर्थ में स्फुर् धातु का प्रयोग हुआ है—'ऋषिमुक्तश्च रागः संध्यात्वेनास्**फुरत्**'।

महर्षि से परित्यक्त अनुराग सन्ध्या के रूप में प्रकट हुआ।

भट्टि-काव्य में[5] 'शब्द करना' अर्थ में स्फुरद् शब्द का प्रयोग देखिए—

'**स्फुरद्घनः** साऽम्बुरिवान्तरीक्षे वाक्यं ततोऽभाषत कुम्भकर्णः'।

कुम्भकर्ण आकाश में जलयुक्त और शब्द करने वाले मेघ के सदृश ही वाक्य कहने लगा।

भट्टि-काव्य में[6] एक अन्य स्थल पर धनुष को **संचालित करने** के अर्थ में स्फुर् धातु प्रयुक्त हुई है—

'आहूयताऽथ स काकुत्स्थं धनुश्चाऽप**स्फुरद्गुरु**'।

रावण ने रामचन्द्र को ललकारा और बड़े से धनुष को **संचालित किया**।

भट्टिकाव्य में[7] एक अन्य स्थल पर **फैलने** के अर्थ में स्फुरद् शब्द का प्रयोग हुआ है—

'ऊर्ध्व**स्फुरद्**रत्नगभस्तिभिर्या स्थिता वहाम्येव पुरं मघोनः'।

---

१. १।२८
२. ३।१६।४२१
३. ३/२५
४. २/१४७ (उत्तरपीठिका)
५. १२/६१
६. १५/८६
७. १।६

अयोध्यापुरी ऊपर फैली हुई (हास्यभूत) रत्नों की किरणों से इन्द्र की पुरी अमरावती को मानों तिरस्कार करके रही हुई है।

उत्तररामचरित में[1] प्राणों के चलने अर्थात् जीवित रहने अर्थ में स्फुर् धातु का प्रयोग हुआ है—

'तथाप्येष प्राणः स्फुरति, न तु पापो विरमति'।

तो भी यह पापी प्राण स्पन्दन कर रहा है, किन्तु (अपनी श्वसन क्रिया से) रुकता नहीं।

नवसाहसाङ्कचरित में[2] रहना, विद्यमान होना अर्थ में स्फुर् धातु प्रयुक्त हुई है—

'कस्मात्तु लोभात् न शुक्तयस्ता मुक्ता हि यासामुदरे स्फुरन्ति'।

जिन सीपियों के गर्भ में मोती रहते हैं, उन्हें देखकर किसका मन नहीं ललचा उठता?

विक्रमाङ्कदेवचरित में[3] स्फूर्ति, प्रतिभा से प्रकट होना अर्थ में स्फुर् धातु का प्रयोग हुआ है—

'स्फुरति निरुपमोऽर्थस्तन्वते पाकमुद्रा-
परिचयमकवीनामप्यकाण्डे वचांसि'।

प्रातःकाल के समय अनुपम काव्य-रचना की स्फूर्ति होती है। जो कवि कहलाने योग्य नहीं हैं, उनकी भी कविताएं इस समय परिपक्व होने का परिचय देने लगती हैं।

राजतरंगिणी में[4] लड़ने के अर्थ में स्फुरन् शब्द का प्रयोग देखिए—

'तथाप्यासीत्स्फुरन्संख्ये य एरमन्तकः क्षणम्।'

यह सब होते हुए भी एरमन्तक कुछ देर तक लड़ता ही रहा है।

गीतगोविन्द में[5] स्फुर् धातु का प्रयोग देखिए—

'प्रदोषे स्फुरति निरवसादां कापि राधां जगाद'।

रात के फैलने पर दुःख से रहित राधा को किसी सखी ने कहा—।

इस प्रकार स्फुर् धातु अनेकार्थक प्रतीत होती है। समय-समय पर

---

१. ६।३३
२. १।१५
३. ११।८१
४. ६/२५१
५. ११/१

स्फुर् धातु के अर्थ में विकास ही होता चला गया है। साहित्य में उपलब्ध स्फुर् धातु के प्रयोगों से संकेत मिलता है कि संहिताओं के काल में स्फुर् धातु 'वध' अर्थ में अधिक प्रचलित थी। 'गत्यर्थ' में भी स्फुर् धातु का वाजसनेयि संहिता में प्रयोग देखते हैं, किन्तु 'वध' अर्थ में स्फुर् धातु का अपेक्षाकृत अधिक प्रयोग हुआ है। संहिताओं के बाद 'वध' अर्थ एकदम लुप्त हो गया। सूत्रकाल में 'फड़कना' अर्थ में स्फुर् धातु प्रयुक्त हुई है। यहाँ धात्वर्थपरिवर्तन अर्थादेश दिशा में हुआ है। अर्थादेश में अर्थ का विस्तार या संकोच नहीं होता, यह बिल्कुल बदल जाता है अर्थात् पहले किसी दूसरी वस्तु का वाचक रहता है और बाद में किसी दूसरी वस्तु का वाचक बन जाता है; जैसे असुर शब्द, जो देवता का वाचक था;[1] बाद में दैत्य का वाचक बन गया;[2] उसी प्रकार यहाँ भी स्फुर् धातु संहिताओं के समय 'वध' अर्थ में प्रयुक्त हुई मिली है और सूत्रकाल तक आते-आते 'फड़कना' अर्थ ने 'वध अर्थ का स्थान ले लिया है। सूत्रकाल के बाद स्फुर् धातु के अर्थ में विकास हुआ और धातु अनेकार्थक हो गई और जब धातु अनेकार्थक हो जाती है, तब किसी विशेष प्रसंग में अनेक अर्थों के निश्चय में संसर्ग, विप्रयोग, साहचर्य, विरोधिता, प्रकरण, लिंग, अन्य शब्द का सान्निध्य, सामर्थ्य, औचित्य, देश, काल, व्यक्ति और स्वरादि हेतु होते हैं।[3] स्फुर् धातु का प्रसंगानुसार ही अर्थ का निश्चय हुआ है। उपनिषदों में आदित्य के साथ प्रयुक्त होने से 'स्फुरन्तम्' शब्द का अर्थ 'चमकाना' किया गया है। आदित्य का गुण ही चमकना होता है; अतः प्रसंगानुसार स्फुर् धातु का अर्थ चमकना सिद्ध हो जाता है। फूल के साथ स्फुर् धातु का प्रयोग होने के कारण स्फुर् धातु विकसित होना, खिलना अर्थ को व्यक्त करती है; चूंकि फूल का खिलने के साथ सम्बन्ध है; अतः प्रसंगानुसार स्फुर् धातु का अर्थ भी विकसित होना ले लिया जाता है। इसके अतिरिक्त कम्पन, कूदना, चमकना, रोमांचित करना, फैलना, फड़कना, जीवित रहना, शब्द करना, संचालित करना आदि अनेक अर्थों में स्फुर् धातु प्रयुक्त हुई है।

वैयाकरणों को स्फुर् धातु के अनेक अर्थों में से कौन सा अर्थ अभिप्रेत था, यह अस्पष्ट ही रह जाता है।

मैत्रेयरक्षित ने 'स्फुर् स्फुरणे' धात्वर्थ के साथ-साथ दीप्ति और संचलन

---

१. २/२७/१० (ऋक्संहिता)

२. ता०ब्रा० ८/३/१

३. वाक्य० २/३१७-१८

अर्थ भी किए हैं। कम्पन, फड़कना, हिलना-डुलना आदि अर्थ संचलन अर्थ के अन्तर्गत आ जाते हैं। 'दीप्ति' अर्थ का पृथक् निर्देश किया गया है। अतः 'स्फुरण' धात्वर्थ से तात्पर्य यहाँ प्रयोगों के आधार पर एकाएक ज्ञान होना लिया जा सकता है; हालांकि मैत्रेयरक्षित द्वारा निर्दिष्ट 'स्फुरण' धात्वर्थ उचित धात्वर्थबोध में असमर्थ है।

चन्नवीर टीकाकार द्वारा 'स्फुर्-स्फुरणे' की दर्शने, प्रकटीकरणे अर्थ में की गई व्याख्या तर्कसंगत जान पड़ती है। दशकुमारचरित एवं विक्रमांकदेव-चरित में अनुराग का सन्ध्या के रूप में दिखाई देना एवं काव्य-रचना की स्फूर्ति होना अर्थ में स्फुर् धातु प्रयुक्त हुई है। अचानक ज्ञान होना, स्मृति होना, एकाएक मन में आना—इसी को जन-सामान्य की भाषा में स्फुरित होना कहा जाता है।

कन्नड़ भाषा में[1] 'स्फुरिसु' क्रियापद का प्रयोग 'मन में गोचर हो, प्रकाशित हो' अर्थ में किया जाता है।

पंजाबी भाषा में[2] भी 'भावों के स्फुरित होने' अर्थ में 'सफुरण' शब्द का व्यवहार किया जाता है।

मराठी भाषा में[3] 'फुरणे' क्रियापद 'संचलन' अर्थ में प्रयुक्त होता है। 'फुरणे' क्रियापद स्फुर् धातु से ही व्युत्पन्न है।

हमारे विचार में भावों का स्फुरित होना, एकाएक ज्ञान होना अर्थ ही वैयाकरणों के 'स्फुर्-स्फुरणे' धात्वर्थ से अभिप्रेत रहा होगा। खिलना, फड़कना, हिलना आदि अर्थों में स्फुर् धातु का प्रयोग प्रकरणवश होता है।

लिख्[4]	लिखने	(कात०)
	लेखने	(चान्द्र०)[5]
	अक्षर-विन्यासे	(पा०जै०, शाक०है०)[6]
	गतौ	(काश०भ्वा०)[7]

१. कन्नड़-हिन्दी कोष, पृ० ४१६
२. पंजाबी-शब्द कोष, पृ० १/१७४
३. मराठी-व्युत्पत्ति कोष, पृ० ५२६
४. कात०धा० ५/६३०
५. चा०पा०६।६६
६. पा०धा० ६/७१, जै०धा० ६/५०१, शाक०धा० ७/१३६१, है०धा० ५/२२
७. काश०धा० १/३८

टीकाकार चन्नवीर लिख गतौ की व्याख्या लिखने, अक्षरविन्यास अर्थ में करते हैं—लेखति-लिखति।[१] चन्नवीरकृत इस व्याख्या से ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें अक्षरविन्यास अर्थ में 'लिख्' धातु अभिप्रेत है ; किन्तु लिख् धातु के लेखति, लिखति दोनों प्रकार के रूप चिन्त्य हैं।

लिखने और लेखने धात्वर्थ क्या समान अर्थ के बोधक हैं ? सामान्य-गमन अर्थ में भी क्या लिख् धातु प्रचलित रही है ? साहित्य में लिख् धातु के प्रयोगों को देखकर ही इस विषय में कुछ कहा जा सकता है।

वाजसनेयि संहिता में **हिंसा** अर्थ में[२] लिख् धातु प्रयुक्त हुई है—

'द्यां मा **लेखी**रन्तरिक्षं मा हिं ँ्सीः'।

'द्युलोक की हिंसा मत करो'। उव्वट और महीधर ने अपने भाष्य में स्पष्ट रूप से कहा है—लिख् धातु 'अक्षरविन्यास' अर्थ में होती है; किन्तु यहाँ हिंसा अर्थ लिया जायेगा—**'लिख अक्षरविन्यासे, इह तु हिंसार्थः'**।

अथर्व-संहिता में[३] लिख् धातु के व्युत्पन्न लिखितम् शब्द का प्रयोग दाह-युक्त होना अर्थ में हुआ है—

'यद्यद् द्युतं **लिखित**मर्पणेन तेन मा सुस्रोर्ब्रह्मणापि तद् वपामि'।

शतपथ ब्राह्मण में[४] लिख् धातु का प्रयोग छीलने के अर्थ हुआ है—'तं प्रच्यवमानमनुमन्त्रयते। द्यां मा लेखीरन्तरिक्षं मा हिं ँ्सीः'। उस गिरते हुए वृक्ष को सम्बोधन करके यह मन्त्र पढ़े—'द्युलोक को मत छील, अन्तरिक्ष को हानि मत पहुंचा'।

शतपथ ब्राह्मण में[५] एक अन्य स्थल पर **रेखा खींचने** के अर्थ में लिख् धातु प्रयुक्त हुई है—

'पूर्वेण परिग्रहेण परिगृह्य **लिखति हरति यद्धार्यं भवति।'**
पहली लकीर से घेर कर (अध्वर्यु) **रेखा खींचता है** और जो कुछ हटाना होता है, उसे हटा देता है।

कात्यायन श्रौत-सूत्र में[६] लिख् धातु प्रयुक्त हुई है—

---

१. काश०धा० १/३८
२. ५/४३
३. १२/३/२२
४. ३/६/४/१३
५. २/६/१/१२
६. ६/१/१६

'(पततौ यूपस्याभिमन्त्रणम्) द्यां मा लेखीरिति पतन्तमभिमन्त्रयेते ।'
इसी मन्त्र की पूर्व पृष्ठ पर व्याख्या कर चुके हैं ।

रामपूर्वतापिनि उपनिषद् में[1] अक्षरविन्यास अर्थ में लिख् धातु प्रयुक्त हुई है—'त्रिरेखापुटमालिख्य मध्ये तारद्वयं लिखेत्' ।
समरेखाओं के दो त्रिकोण बनाकर उनके बीच में पृथक्-पृथक् प्रणव लिखे ।

नारदपरिव्राजक उपनिषद् में[2] लिख् धातु से व्युत्पन्न 'लिखिताम्' शब्द का प्रयोग चित्रित अर्थात् चित्र में खिंची हुई अर्थ में हुआ है—

'कथां च वर्जयेदासां न पश्येल्लिखितामपि' ।

महाभारत में अनुशासन पर्व में[3] लिख् धातु का प्रयोग देखिए—

'लिखन्त्येव तु केषांचिदपरेषां शनैरपि' ।

लिख् धातु का अर्थ यहाँ सुरतकाल में संघर्षण है ।

मेघदूत में[4] चित्र खींचने के अर्थ में लिखन्ती शब्द का प्रयोग हुआ है—

'मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती ।'

विरह से दुबली मेरी आकृति का चित्र खींचती हुई, (मेरी स्त्री दिखाई देगी) ।

किरातार्जुनीय में[5] लिख् धातु का प्रयोग खोदने के अर्थ में हुआ है—'न किञ्चिदूचे चरणेन केवलं, लिलेख वाष्पाकुललोचना भुवम्' । आँखों में आंसू भरकर, केवल पैर से भूमि खोदने लगी ।

भट्टिकाव्य में[6] विलेखन अर्थ में ही लिख् धातु का प्रयोग हुआ है—'मूर्ध्ना दिवमिवालेखीत्खं व्यापद्वपुषोरुणा' ।

कुम्भकर्ण ने सिर से आकाश का जैसे विलेखन किया और बड़े शरीर से उसने आकाश को व्याप्त किया ।

राजतरंगिणी में[7] लेखयित्वा शब्द का प्रयोग अक्षरविन्यास अर्थ में हुआ है—

---

१. १/४०
२. ४।३
३. ४४।५३
४. उत्तरमेघ-२५
५. ८।१४
६. १५।२२
७. ३/१६०

'अथ दूतेषु यातेषु लेखयित्वा स्वशासनम् ।'

यह सन्देश भेजने के बाद तुरन्त राजा ने आज्ञा-पत्र लिखकर तैयार किया ।

गीतगोविन्द में[२] तिलक लगाने के अर्थ में लिख् धातु प्रयुक्त हुई है—'मृगमदतिलक लिखति सपुलकं मृगमिव रजनीकरैः' ।

हितोपदेश में[३] अक्षर-विन्यास अर्थ में लिख् धातु प्रयुक्त हुई है—'पञ्चतन्त्रात्तथाऽन्यस्माद्ग्रन्थादाकृष्य लिख्यते' ।

पंचतन्त्र और नीतिग्रन्थों से लेकर लिखे जा रहे हैं ।

संस्कृत भाषा के अतिरिक्त कन्नड़ आदि भाषाओं में भी लिख् धातु से ही व्युत्पन्न 'लेखिसु, लिख' आदि शब्दों का प्रयोग मुख्यतः 'अक्षर-विन्यास' अर्थ में हुआ है ।

कन्नड़ भाषा में[४] 'लेखन कार्य कर' इस अर्थ में 'लिखिसु' क्रियापद का प्रयोग होता है । इसके अतिरिक्त कन्नड़ भाषा में 'लेख' शब्द लिखावट, लिपि का वाचक है एवं 'लेखनि' शब्द 'कलम' का वाचक है ।

मराठी भाषा में[५] भी 'लिखणें' शब्द 'लिखने' का वाचक है ।

बंगला भाषा में[१] भी 'लिख' शब्द 'अक्षर-विन्यास' अर्थ में प्रयुक्त होता है। 'लेखो' शब्द 'लिपि में अंकित करना' अर्थ का द्योतक है । इसके अतिरिक्त लिख् धातु से व्युत्पन्न 'लेखो' शब्द ही रेखा खींचना, वर्णन करना एवं रचना करना अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

पंजाबी भाषा में[२] 'लिख' शब्द का व्यवहार 'लिखने' के अर्थ में किया जाता है । 'लेख़ण' शब्द 'कलम' का वाचक है और 'लेख' शब्द 'भाग्य' का वाचक है ।

सिन्धी भाषा में[3] भी 'लिख, लिखीं' शब्द अक्षर-विन्यास के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं । 'लेख' 'भाग्य' को कहते हैं ।

---

१. ७/२१
२. श्लोक ९ (प्रस्ताविका)
३. कन्न०हि०कोष०, पृ० ३६१
४. मरा०व्यु०कोष०, पृ० ६३१
५. विद्यापति पदावली, पृ० १६२; ब०श०कोष०, २/१९६०; कविकङ्कणचण्डी, पृ० ४, ५, १६
६. पं०डिक्श०, पृ० ६७५-७६
७. सि०डिक्श०, पृ० ५२२

संस्कृत, कन्नड़, मराठी, पंजाबी, बंगला तथा सिन्धी भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने से इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि लिख् धातु अक्षर-विन्यास अर्थ में अधिक प्रचलित रही है। आज भी बोलचाल की भाषा में लिख शब्द का व्यवहार 'अक्षरविन्यास' की ओर ही संकेत करता है। वैदिक संस्कृत साहित्य में लिख् धातु 'अक्षरविन्यास' अर्थ में तो प्रचलित रही है; किन्तु 'हिंसा' अर्थ में लिख् धातु के प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक उपलब्ध हैं। लौकिक संस्कृत-साहित्य में खोदना, वर्णन करना, रचना करना एवं रेखा खींचना अर्थों में लिख् धातु का प्रयोग हुआ है। रेखा खींचना, चित्र बनाना एक प्रकार का लिखना ही है। चित्र बनाने में रेखाओं का ही विन्यास होता है, ऊपर-नीचे, आमने-सामने रेखाओं को खींचने से चित्र बन जाता है। रेखाओं के खींचने से ही अक्षर बनते हैं। उर्दू भाषा की लिपि देखने से यह बात और अधिक स्पष्ट हो जाती है। लिपि का ज्ञान न होने के कारण उस व्यक्ति के लिए वे रेखाएँ ही हैं। 'शार्टहेण्ड' की लिपि भी इस प्रकार की है।

चित्र बनाने अर्थ में आम बोलचाल की भाषा में 'लिख्' शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता, किन्तु साहित्यिक भाषा में प्रकरणवश 'चित्र बनाने' अर्थ में प्रयोग किया जाता है। रेखा खींचने के सम्बन्ध में लिख शब्द का व्यवहार आम बोलचाल की भाषा में भी देखने को मिलता है। तीन-चार साल के बच्चों को जब कुछ लिखने के लिए कहा जाता है, तो वे प्रायः रेखाएँ खींच देते हैं; तब सामान्यतः यही कहा जाता है—अरे, क्या लिख दिया अथवा क्या लिखा है? इस प्रकार अक्षर-विन्यास, रेखा खींचना, रचना करना, वर्णन करना अर्थ लिपिबद्ध करने के अन्तर्गत आ जाते हैं।

'अक्षरविन्यास' अर्थ में लिख् धातु के प्रसिद्ध होने के कारण एवं हिंसा' अर्थ का बाद के साहित्य में लुप्त हो जाना और 'खोदना' अर्थ में कम प्रयोग मिलने के कारण यह विचार ही ठीक लगता है कि दुर्ग और चन्द्र वैयाकरणों को 'लिख-लेखने, लिखने' धात्वर्थ-निर्देश से अक्षरविन्यास अर्थ ही अभिप्रेत रहा होगा। 'लिख-लिखने' धात्वर्थ के स्थान पर 'लिख अक्षरविन्यासे' धात्वर्थ अपेक्षाकृत सशक्त एवं अर्थबोध में अधिक समर्थ है।

काशकृत्स्न-निर्दिष्ट गति अर्थ में लिख् धातु के प्रयोग अनुपलब्ध हैं। अक्षरविन्यास अर्थ में प्रसिद्ध लिख् धातु वैदिक साहित्य में यदि हिंसा अर्थ में प्रयुक्त हो सकती है तो काशकृत्स्न द्वारा 'गति' अर्थ में लिख् धातु का पाठ कोई आश्चर्योत्पादक नहीं है।

हमारे विचार में गति अर्थ यहाँ लिख् धातु से व्युत्पन्न कलमवाचक 'लेखनी' तथा भाग्यवाचक 'लेखः' शब्द से सम्बद्ध है—

१. कलम से अक्षर-विन्यास करते समय एक अक्षर लिखने के बाद ही दूसरे अक्षर को लिखा जाता है। कलम की यही गति काशकृत्स्न को स्यात् अभिप्रेत है। कलमवाचक 'लेखनी' शब्द लिख् धातु से व्युत्पन्न है।

२. भाग्यवाचक 'लेखः' शब्द लिख् धातु से घञ् प्रत्यय करने पर बना है। भाग्य मनुष्य को कभी ऊपर उठा देता है, अर्थात् सम्पत्तिशाली बना देता है तो कभी नीचे गिरा देता है, अर्थात् गरीब बना देता है, यही गति है। काशकृत्स्न ने स्यात् इसी अभिप्राय से 'लिख्-गतौ' पाठ किया है।

देव् (देवृ) देवने[1]—

टीकाकार चन्नवीर ने[2] 'देवन' अर्थ की व्याख्या दुःख और तिङन्त रूप 'देवते' की व्याख्या 'पूजा' अर्थ में की है—

देवने—दुःखे। देवते--पूजयति

देवलः, देवलकः—देवोपजीवी (पुजारी इति भाषायाम्)।

दुर्गादास टीकाकार ने[3] 'देवनम्' पद की व्याख्या 'क्रीडा' अर्थ में की है और इस अर्थ की पुष्टि में हलायुध कोष से उद्धरण दिया है—

देवनमिह क्रीडा;

देवते बालः कन्दुकैर्नित्यमिति हलायुधः।

दुर्गादास टीकाकार ने[4] भट्टमल के मत को भी उद्धृत किया है—

देवृ—देवनम्। **देवनमिह रोदनमिति**।

इस प्रकार टीकाकारों द्वारा क्रीडा, रोना, दुःख, पूजा करना अर्थों में देव धातु की व्याख्या की गई है।

वैदिक साहित्य में देव् धातु के प्रयोग अनुपलब्ध हैं। लौकिक संस्कृत-साहित्य में प्रयोग तो उपलब्ध हैं, किन्तु अत्यल्प हैं—

---

१. पा०धा० १।३२७, चा०धा० १।४३८, जै०धा० १।४६१, काश०धा० १।५०३, कात०धा० १।४२१, शाक०धा० १।१९३, है०धा० १।८१७, क०क०द्रु०धा० २।२
२. काश०धा० १।५०३
३. श०क०द्रु० कोष, २।७४१
४. वही।

भट्टि-काव्य में[1] क्रीडा और द्योतन अर्थ में देव् धातु का प्रयोग हुआ है—
"अस्तृणादधिकं रामस्ततोऽदेवत सायकैः" ।

(रावण ने) राम की छाती को आच्छादित कर डाला, तब राम ने बाणों से पर्याप्त क्रीडा की ।

भट्टि-काव्य में ही[2] 'प्रकट होना' अर्थ में देव् धातु का प्रयोग देखिए—
"ततः सौमित्रिरस्मार्षीददेविष्ट च दुर्जयम् ।"

लक्ष्मण ने अभिनव के अविषय ब्रह्मास्त्र का स्मरण किया, और वे प्रकाशमान भी हुए ।

रोदन अर्थ में भी देव् धातु के प्रयोग उपलब्ध हैं, किन्तु ऐसे स्थलों पर परि उपसर्गयुक्त देव् धातु प्रयुक्त हुई है ।

भट्टि-काव्य में[3] ही देखिए—
"आत्मनः परिदेवध्वे कुर्वन्तो रामसंकथाम्" ।
अपने को शोक करते हो, राम की उत्तम कथा करते हुए ।

वेणीसंहार में[4] विलाप करने के अर्थ में परि उपसर्ग युक्त देव् धातु का प्रयोग देखिए—

"सूतः—कुमार, अलमत्यन्तपरिदेवनया कार्पण्येन" ।
अब अधिक विलाप करने, रोने की आवश्यकता नहीं ।
'अमर-कोष' में[5] भी 'विलापः परिदेवनम्' कहा गया है ।

हमारे विचार में क्रीडा और प्रकाशमान अर्थों का देव् धातु से सम्बन्ध इस प्रकार हो सकता है—देव भगवान् का वाचक है, भगवान् का स्वरूप प्रकाश है । सारा जगत् सृष्टि उसकी क्रीडा है, अतः 'देवते' तिङन्त रूप के क्रीडा करना, प्रकाशित होना अर्थ उचित ही जान पड़ते हैं ।

चन्नवीर टीकाकार द्वारा निर्दिष्ट पूजा अर्थ में देव् धातु का प्रयोग उचित ही जान पड़ता है । 'देवन' पद की व्याख्या 'दुःख' एवं तिङन्त रूप 'देवते' की की व्याख्या 'पूजा' अर्थ में करने से, विपरीतार्थक प्रतीत होती हुई भी विरोधी नहीं है—

---

१. १७।१०२
२. १५।६४
३. ७।८६
४. ३।१२ (गद्य)
५. पृ० ४६३

दुःख में ही मानव भगवान् को याद करता है, उसकी पूजा करता है। 'देवः' शब्द भगवान् के लिए प्रयुक्त होता है, और 'देवलः' शब्द देवपुजारी के अर्थ में आता है, अतः 'देवते' तिङन्त रूप का अर्थ 'पूजा करता है' हुआ। चूँकि पूजा सामान्यतः दुःख में ही की जाती है, भगवान् को याद किया जाता है, अतः पूजा और दुःख अर्थ भिन्नार्थ न होकर एक दूसरे से सम्बद्ध हैं।

पूजा और दुःख दोनों के एक दूसरे से सम्बद्ध होने में यह भी सम्भावना हो सकती है—जिस प्रकार पूञ् धातु पवने[1] अर्थात् पवित्र करने अर्थ में प्रचलित है। पवित्र करना, पापादि को दूर करना, उनका विनाश करना है। 'पापादि का विनाश' अर्थ कालान्तर में केवल 'विनाश' अर्थ में रूढि हो गया।[2] वैयाकरणों ने अर्थपरिवर्तन के इस कारण को न जानते हुए 'पवने और विनाशे' इन दोनों को भिन्नार्थ समझते हुए धातुएँ अनेकार्थक हैं, ऐसा समाधान प्रस्तुत किया,[3] किन्तु ये दोनों अर्थ परस्पर सम्बद्ध हैं। उसी प्रकार दुःख में भगवान् को याद करने वाले एवं उसकी पूजा करने से कालान्तर में दुःख का अर्थ भी पूजा अर्थ में संगृहीत हो गया होगा, अतः चन्नवीर द्वारा 'पूजा' अर्थ में की गई व्याख्या उपयुक्त ही जान पड़ती है।

धातुपाठ में अधिक स्पष्टीकरण न होने के कारण एवं उसी धातु से व्युत्पन्न शब्द को धात्वर्थ के रूप में रखने से, कोष के आधार पर एवं साहित्य में उपलब्ध प्रयोगों के आधार पर अनुमान ही लगा सकते हैं कि वैयाकरणों को 'देव्-देवने' धात्वर्थ से क्रीडा, दुःख, विलाप अर्थ ही अभिप्रेत रहे होंगे।

स्खद्—स्खदने[4] (पा०कात०, पा०काश०)।
खनने (जैन०)[5]।

---

१. पा०धा० ६।११, चा०धा० ६।८, जै०धा० ६।५०२, काश०धा० ८।८, कात०धा० ८।१००५, शाक०धा० ६।११६६, है०धा० ८।११
२. पूञो विनाशे (वार्तिक) ८।२।४४
३. त्रिपाठी भागीरथ प्रसाद, शोध-प्रबन्ध—'धात्वर्थविज्ञानम्'
अनेकार्थत्वाद् धातूनां पूञ् विनाशार्थः। धातूनामनेकार्थत्वात् 'पूञ्-पवने' इत्यस्य विनाशेऽपि वृत्तिः।
४. पा०धा० १।५०६, चा०धा० १।५१७, काश०धा० १।५८६, कात०धा० १।४६५
५. जै०धा० १।४६२

खदने (हैम०)[1]।
विदारे (क०क०द्रु०,[2]।

क्षीरस्वामी 'स्खदनं-विद्रावणम्[3] कहते हैं। विद्रावण पलायन और पिघलाना अर्थ का[4] वाचक है।

टीकाकार चन्नवीर[5] 'स्खदन' धात्वर्थ की व्याख्या विशरण और स्खदन अर्थ में करते हैं—

स्खदने—विशरणे, स्खलने च।

स्खदते, स्खदयति—कृन्तति, चोरयति, अपराध्यति।

स्खदकः, स्खदमानः विकर्तकः—अपराधी।

हेमचन्द्रसूरिनिर्दिष्ट 'खदने' धात्वर्थ से 'खद्' धातु[6] के स्थैर्य और हिंसा अर्थ अभिप्रेत हैं, अथवा कोई अन्य अर्थ अभिप्रेत है, स्पष्ट नहीं है।

त्रिलोचन राम 'स्खदनं स्थैर्य्यमिति' कहते हैं। गोविन्द 'पाटनम्' अर्थ में स्खदन शब्द पढ़ते हैं। रामनाथ के मत में स्खद 'हिंसा' है। गोयीचन्द्र के मत में स्खदन 'क्लेशोत्पादन' है, त्रिलोचन राम आदि वैयाकरणों द्वारा निर्दिष्ट अर्थ शब्दकल्पद्रुम कोष में[7] बताये गये हैं।

संस्कृत साहित्य में स्खद् धातु के प्रयोग उपलब्ध नहीं हैं और न ही अन्य भाषाओं से स्खद् धातु के सम्बन्ध में संकेत मिलते हैं, अतः टीकाकारों द्वारा की गई व्याख्या एवं कोष के आधार पर 'स्खदन' धात्वर्थ को विद्रावण, चोरी, हिंसा, स्थैर्य, स्खलन अर्थों का द्योतक मानना पड़ता है।

रम् (रभ) राभस्ये[8]—

माधवीय धातुवृत्ति[9] में 'राभस्यमुपक्रमः' कहा गया है। उपक्रम आरम्भ को कहते हैं। रूप भी आ उपसर्गपूर्वक हैं—आरभते, आरेभे।

---

१. हैं०धा० १।१००५
२. क०क०द्रु०धा० २०९
३. क्षीर० १।५१६
४. वही
५. काश०धा० १।५८६
६. हैं०धा० १।२९६
७. श०द्रु० कोष ५।४३१
८. पा०धा० १।६९३, जै०धा० ६।५०१, काश०धा०
   का०धा० १।४७१, हैं०धा० १।७८५, क०क०द्रु०धा० २४७
९. माध०धा० १।६९३

चन्नवीर टीकाकार ने[1] भी 'कार्योपक्रम' अर्थ में ही रभ् धातु की व्याख्या की है—राभस्ये-कार्योपक्रमे, रभते-उपक्रमते।

ऋक्-संहिता में[2] 'उद्यम करने' के अर्थ में रभ् धातु का प्रयोग हुआ है—

"पातं च सह्यसौ युधं च रभ्यसो नः।"

रभस्विनः—प्रौढोद्यमन्कुरुतम्।

वाजसनेयि-संहिता में[3] उत्साह अर्थ से 'रभसं' शब्द प्रयुक्त हुआ है—"पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठमन्ने रभसं दृशानम्।" उव्वट ने भाष्य में कहा है—रभ राभस्ये—'अनैर्घृतादिभिः क्षिप्तैरुत्साहवन्तम्'। महीधर ने भी यही अर्थ किया है—रभ राभस्ये-घृतायनैः सोत्साहम् अनेकान्नैर्हुतैरप्यस्य शक्ति-क्षयो नास्तीति भावः।

अथर्व-संहिता में[4] 'ग्रहण करने के लिए उद्यत हो' अर्थ में रभ् धातु प्रयुक्त हुई है—

"स्मा अगुर्योषितः शुम्भमाना उत्तिष्ठ नारि तवसं रभस्व"। शोभाप्रद अलंकारों को धारण करने वाली, ये जल लाने वाली स्त्रियाँ आ गई हैं; अत एव हे पत्नि, तू आसन से उठ और अपने पास आई हुई स्त्रियों को ग्रहण करने के लिए उद्यत हो।

रभस्व—संगृहीतुं उद्युक्ता भव।

मानवस्तोत्र सूत्र में[5] रभ् धातु का प्रयोग द्वेष करने वाले, शरीर को बांधने के अर्थ में हुआ है—

"यो नो द्वेष्टि तनूं रभस्व"।

यहाँ 'बांधने का कार्य आरम्भ कर दो' अर्थ ही व्यक्त होता है।

कन्नड़ भाषा में[6] रभस् शब्द आनन्द, उत्साह अर्थ में प्रयुक्त होता है।

बंगला भाषा में[7] 'रभ उत्सुकीभाव' को कहते हैं।

जिन स्थलों पर भाव कृदन्त शब्दों में ही, यदि उसी धातु से व्युत्पन्न

---

१. काश० धा०
२. १।१२०।४
२. ११।२३
४. वही
५. ३।५।१३
६. क० हि० कोष
७. बं० श० कोष, २।१८६४

प्रत्ययान्त शब्द नहीं रखे गए हैं, तो वहाँ अन्य धातुओं से व्युत्पन्न प्रत्ययान्त शब्द हैं; अथवा अर्थ परस्पराश्रित हैं।

परस्पराश्रित धात्वर्थ—

परस्पराश्रित धात्वर्थो की सूची इस प्रकार है—

१.	पा०धा०	चा०धा०	जै०धा०
अस् भुवि	२।७०	२।२५	१।४९६
भू-सत्तायाम्	१।१	१।१	१।४८९

२.	पा०धा०
आप्लृ लम्भने	१०।२३०
लभष् प्राप्तौ	१।६९४

३.	पा०धा०	है०धा०
कुपि चलने	१।२५६	१।७५६
चलि कम्पने	१।५३६	१।९७२

४.	पा०धा०	चा०धा०	शाक०धा०
कुप क्रोधे	४।१३०	४।७१	४।१०९१
क्रुध कोपे	४।८५	४।३०	४।१०५६

५.	पा०धा०	जै०धा०	काश०धा०	कात०धा०	शाक०धा०	है०धा०
गल्भ-धाष्ट्र्ये	१।२६९	१।४९०	१।४७५	१।३९६	१।१५०	१।७७४
ञिधृषा प्रागल्भ्ये	५।२३	१।४००	४।१८	४।८४३	५।११८२	४।२७

६.	पा०धा०	चा०धा०
ग्रन्थ-सन्दर्भे	१०।२२९	९।३०
दृभी-ग्रन्थे	६।३४	६।३६

७.	क०क०दु०धा०
ग्लै क्लमु	७६
क्लमु ग्लाने	२५१

८.	पा०धा०	काश०धा०
चिति स्मृत्याम्	१०।२	९।२
स्मृ चिन्तायाम्	१।६५५	१।३४७

९.	पा०धा०	चा०धा०	जै०धा०	काश०धा०	शाक०धा०
तृप प्रीणने	४।९२	५।२३	३।४९८	३।३४	१०।१७७०
प्रीञ् तर्पणे	१०।२२८	१०।१२	१०।५०५	९।३२२	१०।१८०३

१०.	पा०धा०	चा०धा०	काश०धा०	कात०धा०	है०धा०
त्यज हानौ	१।७०५	१।२६८	१।३६७	१।२८७	१।१७२
ओहाक् त्यागे	३।१३	३।५	२।६६	२।६८७	२।७८
१ .	पा०धा०	चा०धा०	काश०धा०	कात०धा०	
दृशिर् प्रेक्षणे	१।७०७	१।३००	१।३६६	१।२८६	
ईक्ष दर्शने	१।३६४	१।४४८	१।५२६	१।४३२	
१२.	जै०धा०				
धूञ् कम्पने	६।५०२				
कम्प विधूनने	१०।५०५				
१३.	चा०धा०				
नट नृत्ये	१।५२				
नृती नाट्ये	४।६				
१४.	पा०धा०	जै०धा०	काश०धा०	कात०धा०	
भक्ष अदने	१।६२०	१०।५०२	२।१	१।१०५	
अद भक्षणे	२।१	३।४६८	६।११	२।६८७	
१५.	पा०धा०	काश०धा०			
भर्त्स सन्तर्जने	१०।१२८	६।१२८			
तर्ज भर्त्सने	१।१३६	१।७५			
१६.	चा०धा०				
भास वचने	१।४५०				
वच भाषणे	२।२७				
१७.	पा०धा०	चा०धा०	काश०धा०		
भूष अलंकारे	१।४४४	१।२२७	१।२८६		
अल भूषणे	१।३३६	१।			
१८.	क०क०द्रु०धा०				
मस्ज व्रुडने	१२५				
व्रुड मज्जने	१६७				
१९.	क०क०द्रु०धा०				
मिश्र युत्याम्	२९				
यु मिश्रणेऽमिश्रणे च	६०				

२०.	पा०धा०	जै०धा०	कात०धा०	शाक०धा०
मृषु सहने	१।४५४	१।४६२	१।२२७	१।८५०
षह मर्षणे	१०।२०३	१।४६६	१।५६०	१।३५६

२१.	क०क०द्रु०धा०
मृष क्षान्तौ	३२१
क्षमु मर्षे	२५१

२२.	चा०धा०
रक्ष पालने	१।२०३
पाल रक्षणे	१०।५०

२३.	पा०धा०	चा०धा०	काश०धा०	कात०धा०	शाक०धा०
राध संसिद्धौ	५।१७	४।२२	३।२३	३।७२६	५।११७६
षिधू संराधौ	४।८८	४।३३	३।३२	३।७३६	४।१०५६

२४.	पा०धा०	जै०धा०	काश०धा०	कात०धा०	शाक०धा०
लक्ष अङ्कने	१०।५	१०।५०५	६।१०	६।‹०५३	१०।१७५८
अकि लक्षणे	१०।३१३	१०।५०४	१।४०७	६।१२८४	१०।१६४४

२५.	पा०धा०	क०क०द्रु०धा०
व्रीड लज्जे	४।१७	१६६
ओलजी व्रीडे	६।१२	११७

२६.	पा०धा०	है०धा०
श्लाघ कत्थने	१।८२	१।६४५
कत्थ श्लाघायाम्	१।३१	१।७१६

२७.	जै०धा०
सान्त्व सामप्रयोगे	१०।५०४
साम सान्त्वने	१०।५०४

२८.	क०क०द्रु०धा०
स्रु द्रुवत्	६२
द्रु स्रुवत्	५६

२९.	क०क०द्रु०धा०
हिक्क कूजे	८६
कूज हिक्कने	११७

३०.	पा०धा०	चा०धा०	काश०धा०	कात०धा०
चुर स्तेये	१०।१	१०।१	६।१	६।१
स्तेन चौर्ये	१०।२७६	१०।१६५	६।२२६	६।१०४६

धातुपाठों में परस्पराश्रित धात्वर्थों की परिमाण-तालिका इस प्रकार है—

धातुपाठ	धातु संख्या	परस्पराश्रित धात्वर्थ-संख्या	प्रतिशत
पाणिनीय	१९०५	१९	.९५
चान्द्र	१५७५	१२	.७६
जैनेन्द्र	१४७८	८	.५४
काशकृत्स्न	२४११	११	.४५
कातन्त्र	१८५८	७	.३७
शाकटायन	१८५५	१०	.०५
हैम	१९८०	८	.४०
कविकल्पद्रुम	२३५८	१२	.५०

निषिद्ध धात्वर्थ—

इसके अतिरिक्त धात्वर्थनिर्देश निषिद्ध अर्थों से भी किया गया है; जो भावकृदन्त एवं भावकर्मतद्धितान्त के ही अन्तर्गत हैं। सूची इस प्रकार है—

१. अगमने—कात०धा० ५९६।

२. अदर्शने—पा०धा० ४।५, चा०धा० ३।३५, जै०धा० ४।४९८, काश० धा० ३।४०, कात०धा० ३।७४४, शाक०धा० ४।११०६, है०धा० ३।५९।

३. अदाने—काश०धा० २।६५, क०क०द्रु०धा० २५८।

४. अवाष्ट्र्ये—पा०धा० १।२६०, चा०धा० १।४०५, जै०धा० १।४९०, काश०धा० १।४७५, कात०धा० १।३८७, शाक०धा० १।१४४, है०धा० १।७६८।

५. अनवस्थाने—पा०धा० ४।१०३, चा०धा० ४।४५, काश०धा० ३।४४, कात०धा० ३।७४८, शाक०धा० ४।१०६४, है०धा० ३।९०।

६. अनादरे—पा०धा० १०।३३, चा०धा० १०।१४, जै०धा० ६।५००, काश०धा० ९।२७, कात०धा० १।१५२, शाक०धा १।५९५ है०धा० १।७०३, क०क०द्रु०धा० ११३।

७. अनृतभाषणे—पा०धा० १०।६, चा०धा० १०।६, जै०धा० १०।५०२, काश०धा० ९।२३, कात०धा० ८।१०५५, शाक०धा० ९।१४४९, है०धा० ९।११७।

८. अप्रमादे—है०धा० ६।२५४, (अप्रमदे) क०क०द्रु०धा० १३४।
९. अप्रसादे—कात०धा० ६।११७०।
१०. अप्रीतौ—पा०धा० २।४, जै०धा० ३।४९८, काश०धा० २।५८, कात०धा० २।६७६, शाक०धा० २।१००५, है०धा० २।६८।
११. अप्लाव्ये—पा०धा० १।१८८।
१२. अभुग्गत्योः—क०क०द्रु०धा० ९८।
१३. अमिश्रणे—क०क०द्रु०धा० ६०।
१४. अविध्वंसने—जै०धा० १।४९१।
१५. अव्यक्ते शब्दे—पा०धा० १।४०४, चा०धा० १।७६१, जै०धा० १।४९१, काश०धा० १।३५६।
१६. असंशये—काश०धा० ६।१७५, कात०धा० ६।१२०५।
१७. असंस्कारे—पा०धा० १०।२७।
१८. असंस्कृते—क०क०द्रु०धा० १३७।
१९. असद्व्यवहारे—क०क०द्रु०धा० ८४।
२०. असर्वोपयोगे—पा०धा० १०।२०, है०धा० ६।४०८, शाक०धा० १०।१७६८, क०क०द्रु०धा० ३२६।
२१. असहने—चा०धा० ४।१०६।

निषिद्ध धात्वर्थों की परिमाण-तालिका इस प्रकार है—

धातुपाठ	धातुसंख्या	निषिद्ध-धात्वर्थ	प्रतिशत
पाणिनीय	१९०५	३०	१.५७
चान्द्र	१५७५	२०	१.२६
जैनेन्द्र	१४७८	२३	१.५५
काशकृत्स्न	२४११	३५	१.४५
कातन्त्र	१८५८	३०	१.६१
शाकटायन	१८५५	२७	१.४५
हैम	१९८०	३८	१.९१
कविकल्पद्रुम	२३५८	२०	०.८४

निषिद्धार्थक धात्वर्थों को प्रायः तीन वर्गों में बांटा जा सकता है। पहले वर्ग में उन धात्वर्थों को रखा जा सकता है; जिनमें किसी प्राप्तविधि का प्रतिषेध है। उदाहरणार्थ—यमोऽपरिवेषणे—अमन्त होने के कारण यम् धातु की मित्संज्ञा प्राप्त थी, परिवेषण से भिन्न अर्थ में मित् संज्ञा का प्रतिषेध

करने के लिए इस सूत्र की रचना उचित है। इसी प्रकार घुषिर् विशब्दने चौरादिक की प्रतिद्वन्द्वी 'घुषिर् अविशब्दने' भौवादिक धातु पढ़ी गई है। दूसरे वर्ग में ऐसे धात्वर्थ रखे जा सकते हैं, जिनमें नञ्घटित पद विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। उदाहरणार्थ—अनृतभाषणे, अव्यक्तायां वाचि, अव्यक्ते शब्दे, असद्व्यवहारे, असर्वोपयोगे। इनमें अनृत आदि पद भाषण आदि के विशेषण हैं। तीसरे वर्ग में उन धात्वर्थों को रखा जा सकता है; जिनमें नञ् का सीधा सम्बन्ध उत्तर पद से है। उदाहरणार्थ—अदर्शने, अनादरे, अप्रीतौ को लिया जा सकता है।

इस वर्ग के धात्वर्थनिर्देश पर शंका उत्पन्न होती है—वैयाकरणों ने नञ् को आरोप अथवा अभाव का द्योतक[1] माना है। तब नश् धातु का अर्थ होगा 'दर्शन का अभाव', द्विष् का अर्थ होगा 'प्रीति का अभाव'। परन्तु नश्यति को निरुक्त और महाभाष्य में स्पष्ट ही भाव-विकार स्वीकार किया है।[2] यदि नञिवयुक्त न्याय से तद्भिन्न तत्सदृश का भी ग्रहण किया जाये तब भी दर्शन-भिन्न, दर्शन-सदृश अर्थात् 'कर्णादि इन्द्रियों द्वारा उपलब्धि' अर्थ प्रतीत होने लगेगा। शंका का समाधान यह है कि नञ् का द्योत्य आरोप और अभाव सिद्धान्ततः ठीक है, परन्तु आर्थिक अर्थ की प्रतीति को वैयाकरणों ने भी स्वीकार किया है। वैयाकरण-भूषणसार में[3] उल्लेख है—

तत्सादृश्यम् अभावश्च तदन्यत्वं तदल्पता;
अप्राशस्त्यं विरोधश्च नञर्थाः षट् प्रकीर्तिताः ॥

तदनुसार जिस प्रकार अधर्म का अर्थ है 'धर्म-विरुद्ध संस्कार-विशेष' उसी प्रकार अनादर का अर्थ होगा तिरस्कार, अप्रीति का अर्थ होगा द्वेष और अदर्शन का अर्थ होगा विकार अर्थात् अवस्थान्तरप्राप्ति और अवस्थान्तर-प्राप्ति अर्थ में नश् धातु का आपस्तम्बधर्मसूत्र[1] में सुन्दर प्रयोग हुआ है—

---

१. महा० २।२।६

२. षड् भावविकारा भवन्तीति वार्ष्यायणिः—
जायते, अस्ति, विपरिणमते, वर्द्धते, अपक्षीयते, विनश्यतीति। निरु० १।१
षड्भावविकारा इति ह स्माह वार्ष्यायणिः
जायतेऽस्ति विपरिणमते वर्धतेऽपक्षीयते विनश्यतीति।
—महा० १।३।१ (भूवादयो धातवः)

३. पृ० ३१३ (नञर्थनिर्णय)

"नाश्य आर्यश्शूद्रायाम् वध्यश्शूद्र आर्याणाम् ।"
नाश्यः निर्वास्यः ।

तात्कालिक समाज में इन नव्युक्त अर्थों को सुगम समझते हुए आचार्यों ने इनका निर्देश किया था ।

इस प्रकार धात्वर्थनिर्देश की समीक्षा से इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि वैयाकरणों ने धात्वर्थनिर्देश धातु की क्रियावाचिता को द्योतित करने के लिए नहीं बल्कि प्रत्येक धातु किसी न किसी अर्थ में प्रयुक्त होती है, इसलिए किया है । धात्वर्थ अधिकतर संज्ञा की विशेषता को बताते हैं या फिर वे संज्ञावाची हैं । यदि धात्वर्थ क्रियावाची भी हैं तो वे या तो उसी धातु से व्युत्पन्न हैं या फिर परस्पराश्रित हैं । क्रिया को स्पष्ट करने वाले धात्वर्थ मात्रा में बहुत कम हैं ।

---

१. २।२७।८

चतुर्थ अध्याय

समानार्थक धातुओं के विशिष्ट अर्थ का विवेचन

गति, शब्द और हिंसा अर्थ में निर्दिष्ट धातुओं की संख्या सभी धातुपाठों में अत्यधिक है। ४१४ धातुएँ गत्यर्थक हैं, २०४ धातुएँ शब्दार्थक हैं और २१६ धातुएं हिंसार्थक हैं। इन वर्गों के धात्वर्थनिर्देश पर शंका उत्पन्न होती है— 'गम्' धातु सामान्य गमन, चलना अर्थ में प्रयुक्त होती है। अन्य ४१३ गत्यर्थक धातुएँ क्या गम् धातु की स्थानापन्न हैं ? गम् धातु के स्थान पर यदि 'सामान्य गमन' अर्थ में प्लु धातु का निर्देश किया जाये तो क्या वे उचित धात्वर्थबोध में समर्थ रहेंगी ? यदि नहीं तो, वैयाकरणों को गति धात्वर्थ से कौन सी गति अभिप्रेत है; क्योंकि दौड़ना, बैठना, तैरना, उड़ना, घूमना गति के ही प्रकार हैं। इसी प्रकार शब्दार्थक और हिंसार्थक धातुओं के सम्बन्ध में जानना चाहिए। शब्दार्थक कास् धातु के स्थान पर 'पर्द, कर्द' धातुओं का प्रयोग उचित धात्वर्थबोध में असमर्थ ही है। ये धातुएं किसी विशिष्ट अर्थ की द्योतक हैं। प्रस्तुत अध्याय में संस्कृत एवं अन्य भारतीय भाषाओं से उदाहरण देते हुए २६८ धातुओं के विशिष्ट अर्थ का विवेचन किया गया है।

चुरादिगणपठित भाषार्थक (भासार्थक) धातुएँ शब्दार्थक धातुओं के अन्तर्गत ही आती हैं, किन्तु धात्वर्थ की व्याख्या में मतभेद होने के कारण उन का पृथक् रूप से विवेचन किया गया है।

इस प्रकार इस अध्याय में समानार्थक धातुओं को चार भागों में बाँटा गया है—

१. गत्यर्थक	२. शब्दार्थक

३. भाषार्थक (भासार्थक)	४. हिंसार्थक।

प्रत्येक भाग की धातुओं का वर्गीकरण गणानुसार है।

सर्वप्रथम गत्यर्थक धातुओं पर विचार करते हैं—

गत्यर्थक धातुएँ

धातुपाठों में पठित गत्यर्थक धातुओं की परिमाण-तालिका—

धातुपाठ	कुल धातु संख्या	गत्यर्थक धातु संख्या	प्रतिशत
पाणिनीय	१९०५	१९५	१०.२३
चान्द्र	१५७५	२३५	१४.९२
जैनेन्द्र	१४७८	१९२	१२.९८
काशकृत्स्न	२४११	४१४	१७.१७
कातन्त्र	१८५८	२२८	१२.२७
शाकटायन	१८५५	१८६	१०.०२
हैम	१९८०	२२७	११.४६
कविकल्पद्रुम	२३५८	३३१	१४.०३

गत्यर्थक ४१४ धातुओं में से १३७ धातुओं के विशिष्ट अर्थ के सम्बन्ध में संकेत मिलते हैं। अतः उन्हीं धातुओं को यहाँ अध्ययन का विषय बनाया गया है। धातु-सूची इस प्रकार है—

भ्वादिगण

१. मन्द् २. स्पन्द्
३. सिध् ४. स्रङ्क्
५. श्रङ्क् ५. कङ्क्
७. वग् ८. वङ्क्
९. मङ्क १०. श्रवङ्क्
११. ढौक् १२. त्रौक्
१३. वस्क् १४. मस्क्
१५. टिक् १६. टीक्
१७. रघ् १८. रङ्घ्
१९. लङ्घ २०. अङ्घ
२१. फक्क् २२. उख्
२३. मख् २४. मङ्ख
२५. रख् २६. रङ्ख्
२७. लख् २८. इख्
२९. इङ्ख् ३०. ईङ्ख्
३१. वल्ग् ३२. रङ्ग्
३३. लङ्ग ३४. अङ्ग

३५. वङ्ग ३६. मङ्ग्
३७. तङ्ग् ३८. त्वङ्ग्
३९. इङ्ग् ४०. रिङ्ग्
४१. लिङ्ग् ४२. रिङ्ख्
४३. रिख् ४४. शिङ्ख्
४५. श्वञ्च् ४६. अञ्च्
४७. वञ्च् ४८. चञ्च्
४९. म्रुच् ५०. म्लुच्
५१. ध्रज् ५२. धृज्
५३. ध्वज् ५४. खञ्ज्
५५. व्रज् ५६. हिण्ड्
५७. पण्ड् ५८. अट्
५९. पट् ६०. शट्
६१. किट् ६२. कट्
६३. हुड् ६४. हूड्
६५. होड् ६६. रफ्
६७. लर्ब् ६८. बर्ब
६९. कर्ब् ७०. खर्ब्
७१. जङ्घ् ७२. अम्
७३. द्रम् ७४. हम्म्
७५. क्रम् ७६. अय्
७७. वय् ७८. पय्
७९. मय् ८०. चय्
८१. तय् ८२. रय्
८३. शल् ८४. वल्
८५. बल्ल् ८६. रैव्
८७. हय् ८८. हर्य्
८९. केल् ९०. खेल्
९१. क्ष्वेल् ९२. वेल्ल्
९३. खेल् ९४. खल्
९५. स्तल् ९६. क्ष्वल्
९७. खोर् ९८. अभ्र्

९९. चर्	१००. घन्व्
१०१. अच्	१०२. धाव्
१०३. ईष्	१०४. अंह्
१०५. रंह	१०६. नक्ष्
१०७. शव्	१०८. ध्वंस्
१०९. कण्	११०. रण्
१११. ह्वल्	११२. फण्
११३. चल्	११४. पत्
११५. भ्रम्	११६. पथ्
११७. कस्	११८. व्यय
११९. भ्रेष्	१२०. सृ
१२१. स्रु	१२२. द्रु
१२३. जु	१२४. जु
१२५. च्यु	१२५. प्तु
१२७. प्लु	१२८. स्कन्द
१२९. सृप्	१३०. श्यै
१३१. शिव ।	

अदादिगण

१३२. हन्	१३३. द्रा
१३४. वा ।	

जुहोत्यादिगण

१३५. हा	१३६. ऋ ।

दिवादिगण

१३७. घूर्	१३८. पद् ।

स्वादिगण

१३९. हि ।

तुदादिगण

१४०. ऋष् ।

भ्वादिगण

मन्द्[1] (मदि, मिदि) गतौ (आ.) पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

'गति' अर्थ में 'मन्द्' धातु के प्रयोग अनुपलब्ध हैं, किन्तु शनैः शनैः के वाचक 'मन्द' शब्द से संकेत मिलता है कि 'मन्द' धातु 'गति' अर्थ में प्रचलित रही होगी । धीरे-धीरे अपने आप में एक गति है । मेघदूत,[2] में 'मन्दं' शब्द का 'धीरे-धीरे' अर्थ में प्रयोग देखिए—

मन्दं-मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वाम् । अनुकूल पवन तुझे **धीरे-धीरे** ठीक ही ले जा रहा है ।

बंगला भाषा[3] में 'मन्द' शब्द 'गति' का वाचक है ।

स्पन्द्[4] (स्पदि) किञ्चिच्चलने (आ.) पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम ।

ईषत्कम्पे—कविकल्पद्रुम ।

टीकाकार चन्नवीर[5] द्वारा की गई व्याख्या इस प्रकार है—

किञ्चिच्चलने—अल्पगतौ । स्पन्दते—अल्पं गच्छति ।

साहित्य में 'स्पन्द्' धातु 'फड़कना, कम्पन' अर्थों में प्रयुक्त हुई मिली है—

आगमशास्त्र[6] में देखिए—

स्पन्दते मायया मनः ।

---

१. पा०धा० १।१३, क्षीर० १।१३, धा०प्र० १।१३, जै०धा० १।३८६, काश० धा० १।३८२, कात०धा० १।३०१, शाक०धा० १।१२, है०धा० १।७२३, क०क०द्रु०धा० २०२

२. पूर्वमेघ १/१०

३. बं०श०कोष २।१७३१

४. पा०धा० १/१४, क्षीर० १/१४, धा०प्र० १/१४, चा०धा० १/३१६, जै०धा० १/४८६, काश०धा० १/३८३, कात०धा० १/३०२, शाक०धा० १/१३, है०धा० १/७२४

५. काश०धा० १/८३

६. ३/२६

'रामायण'[1] में देखिए—

स्पन्दते मे बाहुः ।

मेरी भुजा फड़क रही है ।

महाभारत के शान्ति पर्व[2] में देखिए—

तेषां स्पन्दन्ति गात्राणि ।

उनके गात्र फड़क रहे हैं ।

'मृच्छकटिक'[3] में देखिए—

सव्यं मे स्पन्दते चक्षुः ।

मेरी बाईं आंख फड़क रही है ।

'भट्टि-काव्य'[4] में देखिए—

पस्पन्दे तस्य वामाऽक्षि ।

उसकी बाईं आंख फड़कने लगी ।

बंगला भाषा[5] में स्पन्द शब्द ईषत्कम्पन और स्फुरण अर्थ का वाचक है।

हिन्दी भाषा[6] में 'फांद' शब्द 'कूदना' अर्थ का वाचक है ।

प्राकृत भाषा में 'फंदति' क्रिया 'अस्थिर स्वभाव' अर्थ में प्रयुक्त हुई है । उदाहरणार्थ—

उत्तराध्ययन सूत्र[7] में देखिए—

इमे ये बद्धा फन्दन्ति मम······हत्थज्जमानया ।

टीका—फन्दन्ति, स्पन्दन्ते । अस्थिरधर्मतया प्रचलन्ति ।

हे आर्य, मेरे और आपके हाथों में प्राप्त हुए और इसीलिए अनेकविध उपायों द्वारा रक्षित किये गये, ये शब्दादि कामभोग अस्थिर स्वभाव वाले होने से स्थायी नहीं है ।

---

१. ३/७४/११
२. १०३/२४ (सुखथांकर)
३. ६/१५
४. १४/८३
५. बं०श०कोष २/२२६१
६. हि०धा०सं० पृ० १५
७. १४/४५

प्राकृत-व्याकरण[1] में 'फन्दह' शब्द का प्रयोग 'स्फुरण' अर्थ में हुआ है—

स्पन्देश्चुलचुलः । चुलचुलई फन्दह ।

सिध्[2] षिधु गतौ (प०) पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

'अपसारण' अर्थ में सिध् धातु प्रयुक्त हुई है—

'ऋक्-संहिता'[3] में देखिए—

सहस्राक्षो विचर्षणिरग्नी रक्षांसि **सेधति** ।

असंख्य ज्वाला वाली सबकी द्रष्टा यह अग्नि राक्षसों को यज्ञ से **भगाती है** ।

'तैत्तिरीय ब्राह्मण'[4] में देखिए—

अपामीवा ँ् **सेधत** ँ् रक्षसश्च ।

रोग और राक्षसों को **भगा दो** ।

'आपस्तम्बश्रौत सूत्र'[5] में देखिए—

अग्ने रक्षा ँ्सि **सेधति**

अग्नि राक्षसों को **भगाती है** ।

'निघण्टु'[6] में सिध् धातु को गत्यर्थक ही कहा गया है ।

पाणिनि ने 'अष्टाध्यायी'[7] में सिध् धातु को गत्यर्थक ही कहा है—'सेधतेर्गतौ' ।

प्राकृत भाषा[8] में 'सिज्झ' शब्द 'गति' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

---

१. ४/१२७
२. पा०धा० १/३९, क्षीर० १/३८, धा०प्र० १/४६, चा०धा० १/८, जै०धा० १/४९२, काश०धा० १/१०, कात०धा० १/८, शाक०धा० १/४४९, है०धा० १/३२०, क०क०द्रु०धा० २१८
३. १/७९/१२
४. २/८/४/६
५. ५/८/६
६. २/१४
७. ८/३/११४
८. पा०म० ११३१

[1]स्रङ्क् (स्रकि) गतौ (आ०) पाणिनीय, धातुप्रदीप, काशकृत्स्न, शाकटायन, कविकल्पद्रुम ।

श्रङ्क् (श्रकि) गतौ (आ०) पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

मराठी भाषा[2] में 'सरकणें' क्रिया गत्यर्थक 'स्रङ्क् श्रङ्क्' धातुओं से व्युत्पन्न है । 'सरकणें' क्रिया का अर्थ 'फिसलना' है । 'सरकावणें' क्रिया का अर्थ 'दूर हटा देना' है—

मराठी ज्ञानेश्वरी ग्रन्थ[3] में प्रयोग देखिए—

तेर्याचे सांधावेया जावो न ल्हाये । ऐसा **सरकटितु** आहासि ।

कङ्क्[4] (ककि) गतौ (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम ।

व्रजने कविकल्पद्रुम ।

टीकाकार चन्नवीरकृत[5] व्याख्या इस प्रकार है—

कङ्कते—उत्पाटयति । कङ्कः—जटायुः ।

कङ्क शब्द सफेद चील (कंकहड़ा) पक्षी का वाचक है[6], जिसके पंखों को बाण में लगाया जाता है ।

बंगला भाषा[7] में भी कङ्क शब्द पक्षीविशेष का वाचक है ।

---

१. पा०धा० १।६६, क्षीर० १।६७, धा०प्र० १।८३-८४, जै०धा० १।४८६, काश०धा० १।४१२, कात०धा० १।३३१, शाक०धा० २।४५-४६, है०धा० १।६२५, क०क०द्रु०धा० ८७
२. म०व्यु०कोष पृ० ७१४
३. ११।३८८
४. पा०धा० १।७७, क्षीर० १।७५, धा०प्र०, १।६३, चा०धा० १।३४६, जै०धा० १।४८६, काश०धा० १।४१२, कात०धा० १।३३१, शाक०धा० १।४८ है०धा० १।६२२, क०क०द्रु०धा० ८२
५. काश०धा० १।४१२
६. अ०कोष २।५।१६
७. बं०श०कोष १।५।१२

हमारे विचार में पक्षी-विशेष की उड़ान ही 'कङ्क गतौ' धात्वर्थ से अभिप्रेत है।

वग्[1] (वग)[1] गतौ (प०) शाकटायन।

'नवसाहसाङ्कचरित'[2] में वग् धातु का प्रयोग 'बरसाना' अर्थ में हुआ है—

यस्यां सुगन्धि तोयं जलदा वगन्ति।

जहां पर मेघ सुगन्धिपूर्ण जल बरसाते रहते हैं।

मराठी भाषा[3] में 'आवगणें' क्रिया 'वग गतौ' धातु से व्युत्पन्न है। 'आवगणे' क्रिया का अर्थ 'पथभ्रष्ट होना' है।

वङ्क्[4] (वकि) गतौ (आ०) पाणिनीय, धातुप्रदीप, कातन्त्र, कविकल्पद्रुम।

'ऋक् संहिता'[5] में वङ्कु शब्द का प्रयोग 'कुटिल गमन करने वाला' अर्थ में हुआ है—

त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसायं कविमवसे नि हृदयामहे।

रक्षा के लिए हम दीप्त, कुटिल गमन करने वाले कवि रुद्र को बुलाते हैं।

बंगला भाषा[6] में 'वङ्क' शब्द 'वक्रीभाव, गति' का वाचक है।

'मङ्क्'[7] (मकि) गतौ (आ०) कातन्त्र।

'शतपथ ब्राह्मण'[8] में मङ्कु शब्द पङ्गु (लंगड़ा) अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—

स मङ्कुरिव चचार।

वह पङ्गु के समान चलने लगा।

---

१. शाक०धा० १।५०४

२. १।५३

३. म०यु० कोष पृ० ७६

४. पा०धा० १।७७, पा०प्र० १।९४, कात०धा० १।३३१, क०क०द्रु०धा० ८५७

५. ७।११४।४

६. वं०श० कोष २।१४४१

७. कात०धा० १।३३१

८. ५।५।४।११

प्राकृत भाषा[1] में 'मंकिअ' शब्द का प्रयोग 'कूदकर आगे बढ़ना' अर्थ में हुआ है ।

भोजपुरी[2] में 'माकल' शब्द 'कूदने' के अर्थ में प्रयुक्त होता है ।

श्वङ्क्[3] (श्वकि) गतौ (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

मराठी भाषा[4] में 'हकणे, हांकणें' क्रियाएं 'गाड़ी चलाना' अर्थ में प्रयुक्त होती हैं । 'हकणें, हांकणें' क्रियाएँ 'श्वङ्क् गतौ' धातु से व्युत्पन्न हैं ।

ढौक्[5] (ढौकृ) गतौ (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

टीकाकार चन्नवीर[6] ने 'ढौक् गतौ' धात्वर्थ की व्याख्या 'शब्द' अर्थ में की है—'ढौकते-शब्दयति । ढौका-नदी' ।

'ढौक् गतौ' से तात्पर्य 'प्राप्त कराना, समर्पित करना' है ।

'कात्यायन-श्रौत-सूत्र'[7] में देखिए—

प्रावक्रयादन्नमुपहरन्त्यस्मै ।

उपहरन्ति-उपढौकयन्ति

'महाभारत' के शान्तिपर्व[8] में देखिए—

तन्मांसं चैव गोमायोस्तैः क्षणदाशु **ढौकितम्** ।

---

१. दे०ना० ८।१५
२. क०डि०लै, पृ० ५४४
३. पा०धा० १।७७, क्षीर० १।७५, धा०प्र० १।६५, चा०धा० १।३४६, जै० धा० १।४८६, काश०धा० १।४१२, कात०धा० १।३३१, है०धा० १.६२३, क०क०द्रु०धा० ८७
४. म०व्यु०कोष पृ० ७६१
५. पा०धा० १।७७, क्षीर० १।७५, धा०प्र० १।६७, चा०धा० १।३४६, जै० धा० १।४८६, काश०धा० १।४१२, शाक०धा० १।५१, है०धा० १।६२७, क०क०द्रु०धा० ८२
६. काश०धा० १।४१२
७. ७।२।२ (वेबर सं०)
८. १२।१११।५६

ढौकितम्-प्रवेशितम् ।

'जैन पद्मपुराण'[1] में 'समर्पित' करने के अर्थ में ढौक् धातु का प्रयोग देखिए—

हस्त्यश्वरथयानानि तस्मै ढौकितवान् ।

हाथी, घोड़े, रथ तथा अन्य वाहन लाकर उन्हें **समर्पित करने लगे** ।

'कथासरित्सागर'[2] में देखिए—

कुन्ती तदन्नपूर्णां च तस्मै पात्रीम**ढौकयत्** ।

कुन्ती ने खीर से भरी कड़ाही उनके लिए **उपस्थित** की ।

'राजतरंगिणी' में[3] देखिए—

अव्यक्तं वदतो हर्ष इति वाचं पुनः पुनः; निह्नोतुं नोनको भावं तस्या-दर्श**मढौकयत्** ।

वह अव्यक्त रूप से बार-बार 'हर्ष' 'हर्ष' कर रहा था, यह देखकर मंत्री नोनक ने उसके आगे दर्पण **रख दिया** ।

'राजतरंगिणी' में[4] ही एक अन्य स्थल पर **संग्रह करना** अर्थ में ढौक् धातु का प्रयोग देखिए—

न तापसाः पुत्रदारपशुधान्यान्य**ढौकयन्** ।

तपस्वियों ने पुत्र, स्त्री, घर, पशु तथा धान्यों का **संग्रह नहीं किया** ।

'नैषधीयचरित' में[5] **समर्पित करने** के अर्थ में ही ढौक् धातु का प्रयोग देखिए—

अमूनि संख्यातुमसावढौकि तैश्छलेन तेषां कठिनीव भूयसी ।

'हितोपदेश' में[6] समर्पित करना, भेजना अर्थ में 'ढौक्' धातु प्रयुक्त हुई है—

यदि प्रसादो भवति तदा वयमेव भवदाहाराय प्रत्यहमेकैकं पशुमु**पढौकयामः**।

यदि आप कृपा करें तो हम लोग ही आपके भोजन के लिए प्रतिदिन एक-एक जानवर सेवा **में भेज दिया करें** ।

---

१. ४।८

२. ३।२।३९

३. ७।७२०

४. ६।१०

५. १।१०१

६. २।८।१२३

उपढौकयामः—प्रापयामः।

बंगला भाषा में[1] भी 'ढौक' शब्द 'गति, प्रेरणा, आवरण' अर्थों में प्रयुक्त होता है।

मराठी भाषा में[2] 'डौकणें' क्रिया 'ढौक् गतौ' धातु से व्युत्पन्न है, 'डौकणें' क्रिया का अर्थ **तीक्ष्णदृष्टि से देखना** है।

त्रौक्[3] (त्रौकृ) गतौ (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

टीकाकार चन्नवीर[4] ने 'त्रौक् गतौ' धात्वर्थ की व्याख्या खेत आदि में गिरना अर्थ में की है—

त्रौकते—क्षेत्रादिषु पतति। त्रौकः—सस्यविनाशकः।
टिड्डी-नामा क्षुद्रप्राणी।

मराठी भाषा[5] में 'टोकणें' क्रिया 'त्रौक् गतौ' धातु से व्युत्पन्न है। 'टोकणें' क्रिया आह्वान (challenge) अर्थ में प्रयुक्त होती है।

वस्क्[6] (वस्क) गतौ व्या०—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

मराठी भाषा[7] में 'बहकणें' क्रिया 'वस्क् गतौ' धातु से व्युत्पन्न है। 'बहकणें' क्रिया का अर्थ 'पथ से विचलित होना' है।

मस्क्[8] (मस्क) गतौ (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

---

१. बं०श० कोष २।१००६
२. म०व्यु० कोष पृ० ३५२
३. पा०धा० १।७७, क्षीर० १।७५, धा०प्र० १।९८, जै०धा० १।४८९, काश० धा० १।४१२, कात०धा० १।३३१, शाक०धा० १।५२, है०धा० १।६२८, क०क०द्रु०धा० ८२
४. काश०धा० १।४१२
५. म०व्यु० कोष पृ० ३३९
६. पा०धा० १।७७, क्षीर० १।७५, धा०प्र० १।१००, चा०धा० १।३४६, शा० धा० १।५३, है०धा० १।६३०, क०क०द्रु०धा० ८५
७. म०व्यु० कोष पृ० ५३९
८. पा०धा० १।७७, क्षीर० १।७५, धा०प्र० १।१००, चा०धा० १।३४६, जै० धा० १।४८९, शाक०धा० १।५४, है०धा० १।६३१, क०क०द्रु०धा० ८४

मराठी भाषा[1] में 'मसकणें' क्रिया 'मस्क गतौ' धातु से व्युत्पन्न है। 'भसकणें' क्रिया का अर्थ 'बल पूर्वक भगाना, प्रहार करना' है।

टिक्[2] (टक) गतौ (आ०) पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, हैम, कविकल्पद्रुम।

संस्कृत साहित्य में टिक् धातु के प्रयोग अनुपलब्ध हैं।

हिन्दी[3] और बंगला भाषा[4] में 'स्थायी रहना' अर्थ में 'टिक' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

सिन्धी भाषा में[5] 'टिक् शब्द' 'किसी के घर कुछ दिन रहना' अर्थ में प्रयुक्त होता है।

मराठी भाषा में[6] 'टिकणें' क्रिया 'किसी के घर रहना', 'टिके रहना', 'स्थायी रहना' अर्थों में प्रयुक्त की जाती है।

टीक्[7] (टीक) गतौ (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

'यशस्तिलकचम्पू'[8] में 'टीकमानैः' शब्द का 'सञ्चरद्भिः' अर्थ में प्रयोग हुआ है।

'टीका' शब्द 'टीक् गतौ' धातु से व्युत्पन्न है—'टीक्यते, गम्यते ग्रन्थार्थोऽनया'।[9] 'गति' से तात्पर्य यहाँ 'अर्थबोधन' है।

रघ्[10] (रघ) गतौ (आ०)—काशकृत्स्न, शाकटायन।

---

१. म०व्यु० कोष पृ० ५६३
२. पा०धा० १।७७, क्षीर० १।७५, धा०प्र० १।१०३, चा०धा० १।३४६, काश०धा० १।४१२, कात०धा० १।३३१, है०धा० १।६३३, क०क०द्रु० धा० ८२
३. हि०धा०सं० पृ० ७
४. बं०श० कोष १।९७९
५. सि०डि० पृ०
६. म०व्यु० कोष, पृ० ३३७
७. पा०धा० १।७७, क्षीर० १।७५, चा०प्र० २।१०४, चा०धा० १।३४६, जै० धा० १।४८९, काश०धा० १।४१२, कात०धा० १।३३१, शाक०धा० १।५७, है०धा० १।६३४, क०क०दु०धा० ८२
८. ३।२१४
९. श०क०द्रु० कोष २।५७२
१०. काश०धा० १।४१२, शाक०धा० १।५८

टीकाकार चन्नवीर[1] ने 'रघते' तिङन्त रूप की व्याख्या 'शासन करना' अर्थ में की है—

रघते—शास्ति।

'ऋक् संहिता' में[2] 'शीघ्र गमन' अर्थ में 'रघ्' धातु प्रयुक्त हुई है।

ऋतस्य पदे अधि दीद्यानं गुहा **रघुष्यदधुयद्विवेद**;

चमकता हुआ, गुहा में **शीघ्र बहता हुआ, शीघ्र जाता हुआ** सूर्यमण्डल।

'तैत्तिरीयब्राह्मण' में[3] 'शीघ्र गति' अर्थ में ही 'रघ्' धातु का प्रयोग हुआ है—

नमस्ते अस्तु चक्षसे **रघूयते**।

कुशल दर्शन के लिए छोटी **शीघ्र गति** अपने लिए चाहता हूं।

रघूयते—लघ्वीं शीघ्रां गतिमात्मानम् इच्छते।

'भट्टि काव्य' में[4] 'गमन' अर्थ में 'रघु' शब्द का प्रयोग देखिए—

अपेक्ष्य धातोर्गमनार्थमर्थविच्चकार नाम्ना **रघुमात्मसंभवम्**।

'रघ्' धातु के गमनार्थक रूप का विचार कर अपने उस पुत्र का नाम (दिलीप ने) रघु रखा।

यहां रघ् धातु 'निरन्तर आगे बढ़ना', 'उन्नतिशील होना' अर्थ को व्यक्त कर रही है।

मराठी भाषा में[5] 'रघ्' धातु से व्युत्पन्न 'वरंघणें' क्रिया 'लुढ़कने' अर्थ में प्रयुक्त होती है।

रङ्घ्[6] (रघि) गतौ (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

---

१. काश०धा० १।४१२

२. ४।५।९

३. ३।७।१३।४

४. ३।२१

५. म०व्यु० कोष पृ० ६४२

६. पा०धा० १/७७, क्षीर० १/७५, धा०प्र० १/१०५, चा०धा० १/३४६, जै०धा० १/४८९, काश०धा० १/४१२, कात०धा० १/३३१, शा०धा० १/५८, है०धा० १/६३७, क०क०द्रु०धा० ९८

टीकाकार चन्नवीर[1] ने 'रङ्घ गतौ' धात्वर्थ की व्याख्या 'कूदना' अर्थ में की है—

'रङ्घते—कूर्दते'

'भट्टिकाव्य' में[2] 'गमन' अर्थ में 'रङ्घ' धातु का प्रयोग हुआ है—

द्वारं ररङ्घतुर्याम्यं महापार्श्वमहोदरौ ।

(प्रहस्त ने) महापार्श्व और महोदर नाम के दक्षिण द्वार में **गमन किया ।**

बंगला भाषा में[3] 'रङ्घयस' शब्द 'गति, वेग' का वाचक है और 'रङ्घ गतौ' धातु से व्युत्पन्न है ।

मराठी भाषा में[4] 'रङ्घ गतौ' धातु से व्युत्पन्न 'रांघणें' क्रिया 'छाती के बल चलना' अर्थ में प्रयुक्त होती है ।

लङ्घ (लघि)[5] गतौ (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

टीकाकार चन्नवीर ने[6] 'उछलने-कूदने' अर्थ में 'गति' धात्वर्थ की व्याख्या की है—लङ्घते-कूर्दते, लङ्घमानः कूर्दितरि ।

साहित्य में लाँघना, अतिक्रमण, उछलकर पार करना अर्थ में लङ्घ धातु के प्रयोग मिलते हैं—

'रामायण' में युद्धकाण्ड में[7] देखिए—

समुद्रं **लंघयित्वा** महानक्रसमाकुलम्;

बड़े-बड़े नाकों से भरे हुए समुद्र को **लांघकर** ।

'मृच्छकटिक' में[8] (भाग्य का) 'अतिक्रमण' अर्थ में 'लङ्घयितुम्' शब्द का प्रयोग देखिए—

---

१. काश०धा० १।४१२
२. १५।१५
३. बं०श०कोष २।१८८४
४. म०व्यु०कोष० पृ० ६१४
५. पा०धा० १।७७, क्षीर० १।७५, धा०प्र० १।०६, चा०धा० १।३४६, जै०धा० १।४८९, काश०धा० १।४१२, कात०धा० १।३३१, शाक०धा० १।५६, है०धा० १।६३८, क०क०द्रु०धा० ६८
६. काश०धा० १।४१२
७. २।५
८. ६।२

दवी च सिद्धिरपि लङ्घयितुं न शक्या ।

भाग्यवश होने वाली राज्य की प्राप्ति का भी अतिक्रमण नहीं किया जा सकता ।

'मुद्राराक्षस' में[1] गौरव, अतिक्रमण' में 'लङ्घित' कृदन्त शब्द का प्रयोग हुआ है—आर्याज्ञयैव मम **लंघितगौरवस्य** ।

आर्य की ही आज्ञा से उनके गौरव का हमने **अतिक्रमण किया** ।

'भट्टिकाव्य' में[2] 'चढ़ना' अर्थ में **लङ्घ धातु प्रयुक्त** हुई है—

अन्ये **त्वलंघिषुः** शैलान् ।

अन्य (वानर) पर्वत पर **चढ़ गये** ।

बंगला भाषा में[3] भी 'छलांग मारकर पार करना' अर्थ में 'लङ्घ' शब्द प्रचलित है ।

कन्नड़ भाषा में[4] भी 'पार करना' अर्थ में 'लंघिसु' क्रियापद का प्रयोग होता है ।

सिन्धी[5] और पंजाबी भाषा में[6] 'लङ्घ' शब्द 'लांघना' अर्थ में प्रयुक्त होता है ।

अङ्घ (अघि)[7] 'गत्याक्षेपे जवे (आ०)---पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

क्षीरस्वामी[8] ने 'गत्याक्षेप' धात्वर्थ की व्याख्या इस प्रकार की है—

गत्याक्षेपः वेगगतिर्गमनारम्भो वा ।

---

१. ३।३३

२. १५।३२

३. बं०श०कोष २।१६४२

४. क०हि०कोष पृ० ३८६

५. सि०डि०

६. पं०डि० पृ० ६६३

७. पा०धा० १।७८, क्षीर० १।७७, धा०प्र० १।७०७, चा०धा० १।३४७, जै०धा० १।४८६, काश०धा० १।४१३, कात०धा० १।३३३, शाक०धा० १।६०, है०धा० १।६३६, क०क०द्रु०धा० ६६७

८. क्षीर० १।७७

संस्कृत साहित्य में अंघ् धातु के प्रयोग उपलब्ध नहीं हैं। मराठी भाषा में[1] अंघ् धातु के गत्यर्थ में प्रचलित होने के संकेत मिलते हैं। अंघ् शब्द 'ऊपर चढ़ना' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

ज्ञानेश्वरी ग्रन्थ'[2] में देखिए—

ऐसिया वेंघेनिस्वप्ना। धांवत भवस्वर्गाचेया राना।

परिसा संनिघ **वेंघले**।

फक्क् (फक्क)[3] नीचैर्गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम।

असद्व्यवहारे शनैर्गतौ—कविकल्पद्रुम।

क्षीरस्वामी ने[4] 'नीचगति' की व्याख्या 'मन्दगमन, बुरा व्यवहार' अर्थ में की है।

'प्रतापरुद्रीय'[5] में 'फक्कत्' शब्द का प्रयोग देखिए—

भुजगराज**फक्कत्**फणा:

मराठी भाषा[6] की फाकणें फांकणें क्रियाएं 'फक्क् नीचैर्गतौ' धातु से व्युत्पन्न हैं। फांकणें क्रिया का अर्थ विस्तृत करना है।

पंजाबी भाषा[7] में 'फक्कना' शब्द 'अधिक खर्च करना, व्यय करना' अर्थ में प्रयुक्त होता है।

उख्[8] (उख) गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

---

१. कुलकर्णी-क०व्यु०कोष, पृ० ६६८

२. १५।४९२

३. पा०धा० १।८४, क्षीर० १।८३, धा०प्र० १।११४, चा०धा० १।३०, जै० धा० १।४८३, काश०धा० १।३१,

४. क्षीर० १।८३

५. ३३

६. म०व्यु० कोष पृ० ५२५

७. पं०डि० पृ० ९००

८. पा०धा० १।९१, क्षीर० १।९१, धा०प्र० १।१२७, चा०धा० १।३८, जै० धा० १।४९३, काश०धा० १।३८, कात०धा० १।३८, शाक०धा० १।४९० है०धा० १।६३, क०कद्रु०धा० ९०

टीकाकार चन्नवीरकृत[1] व्याख्या इस प्रकार है—

ओखति—ज्वलति ।

'मराठी भाषा'[2] का ओकारी शब्द 'उख् गतौ' धातु से व्युत्पन्न है। 'ओकारी' शब्द का अर्थ 'उल्टी करना' है ।

अमृता जुनी पोथी[3] में प्रयोग देखिए—

दृस्यांचीया शृष्टी ।

ऊं कीती दीठीवरी दिठी ।

उठविलीया तलवटी । चीन्मात्रीचीं ।

मराठी भाषा में आवुखणें क्रिया 'फैलाना' अर्थ में प्रयुक्त होती है और उख् गतौ धातु से निष्पन्न है ।[4]

[5]मख् (मख) गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

मङ्ख (मखि) पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, हैम, कविकल्पद्रुम ।

टीकाकार चन्नवीर[6] ने 'प्रज्वलन' अर्थ में मख् गतौ धात्वर्थ की व्याख्या की है—मखति—प्रज्वलितो भवति, मखः—यज्ञः ।

संस्कृत साहित्य में मख शब्द यज्ञ का वाचक है—

मखः; मखन्ति, मङ्खन्ति, गच्छन्ति देवा अत्रेति ।[7]

इस प्रकार 'मख गतौ' से तात्पर्य 'यज्ञ में जाना' है ।

रख्[8] (रख) गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र,

---

१. काश०धा० १।३८

२. म०व्यु० कोष पृ० ११७

३. ५१२

४. म० व्यु० कोष पृ० ७०

५. पा०धा० १।६१, क्षीर० १।६१, धा०प्र० १।१३०, चा०धा० १।३८, जै० धा० १।४६३, काश०धा० १।३८, कात०धा० १।३८, शाक०धा० १।४६३ हैं०धा० १।६३, क०क०द्रु०धा० ६१

६. काश०धा० १।३८

७. हला० कोष पृ० ५०५

८. पा०धा० १।६१, क्षीर० १।६१, धा०प्र० १।१३१, चा०धा० १।३८, जै० धा० १।४६३, काश०धा० १।३८, कात०धा० १।३८, शाक०धा० १।४६४ हैमधा० १।६८, क०क०द्रु०धा० १

जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

मराठी भाषा की रखडणें और उरकणें क्रियाएँ रख् गतौ धातु से व्युत्पन्न हैं। 'उरकणें' क्रिया उस् उपसर्ग पूर्वक रख् धातु से निष्पन्न है और 'समाप्त करना' अर्थ की वाचक है। 'रखडणे' क्रिया का अर्थ 'भारीपन से, श्रम से चलना' है।[१]

रङ्ख्[२] (रखि) गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

महाभारत के उद्योगपर्व[३] में 'काकरङ्खः' शब्द की व्याख्या में नीलकण्ठ-टीका में 'पलायन' अर्थ दिया गया है—

काकरङ्खः—काकवत् रङ्खति, पलायते।

लख्[४] (लख) गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

मराठी भाषा[५] में 'लगटणें' क्रिया 'समीप पहुँचना' अर्थ की वाचक है और 'लख् गतौ' धातु से व्युत्पन्न है।

[६]इख् (इख) गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, हैम, कविकल्पद्रुम।

इङ्ख (इति) पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

---

१. म०व्यु० कोष पृ० १०७

२. पा०धा० १।९१, क्षीर० १।९१, चा०धा० १।३८, जैं०धा० १।४९३, काश०धा० १।३८, कात०धा० १।३८, शाक०धा० १।४९५, है०धा० १।७१, क०क०दु०धा० ९१

३. ५।१३३।१४

४. पा०धा० १।९१, क्षीर० १।९१, धा०प्र० १।१३२, चा०धा० १।३८, जैं० धा० १।४९३, कात०धा० १।३८, शा०धा० १।४९५, है०धा० १।६९, क०क०दु०धा० ९१

५. म०व्यु० कोष पृ० ६२३

६. पा०धा० १।९१, क्षीर० १।९१, धा०प्र० १।३६, चा०धा० १।३८, जैं०धा० १।४९३, कात०धा० १।३८, शाक०धा० १।४९७-९८, है०धा० १।७४-७५ क०क०दु०धा० ९०

टीकाकार चन्नवीर[1] में 'प्रवेश करना' अर्थ ने 'इङ्ग् गतौ' धात्वर्थ की व्याख्या की है—

इङ्खति—प्रविशति ।

मराठी भाषा[2] में 'इख् गतौ' धातु से व्युत्पन्न 'इघणें' क्रिया का अर्थ गमन' है । उदाहरणार्थ ज्ञानेश्वरी ग्रन्थ[3] में 'इघे' क्रिया का प्रयोग देखिए—

विचार जेय न रिघे । हेतु जेय नेघे ।'

बंगला भाषा[4] में 'निर्जीव चीजों का तैरना' अर्थ में 'इख, इङ्ख' शब्दों का प्रयोग होता है ।

रघुवंश[5] में प्रेरित करने के अर्थ में प्रेङ्खयन शब्द का प्रयोग हुआ है—

प्रेङ्खयन्परिजनापविद्धया ।

मराठी भाषा[6] की फेंकणें क्रिया प्र+इङ्ख धातु से व्युत्पन्न है । 'फेंकणें क्रिया का अर्थ 'प्रक्षेप, फेंकना' है ।

ईङ्ख (इखि) गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र जैनेन्द्र, हैम, कविकल्पद्रुम ।

ऋक् संहिता[8] में प्रेरित करना' अर्थ में णिजन्त 'ईङ्खयन्ति' क्रिया का प्रयोग हुआ है—

य ईङ्खयन्ति पर्वतान्;

मरुत् मेघों को प्रेरित करते हैं ।

ऋक् संहिता[9] में ही एक अन्य प्रयोग देखिए—

इन्दो समुद्रमीङ्खय;

हे सोम, उदक को प्रेरित करो ।

---

१. काश० धा० १।३८

२. व०श० कोष १।१७४

३. म० व्यु० कोष पृ० ८२

४. ४।१४६

५. १६।४४

६. म० व्यु० कोष पृ० ५३०

७. पा०धा० १।६१, क्षीर० १।६१, धा०प्र० १।३७, चा०धा० १।६८, जै०धा० १।४६३, है०धा० १।७६, क०क०दु०धा० ६०

८. १।१६।७

९. ९।३५।१२

सा०भा०—ईङ्खयतिर्गतिकर्मा उदकप्रेरक इति ।

'भट्टि-काव्य'[1] में ईङ्ख् धातु का प्रयोग 'क्षुभित होना' अर्थ में हुआ है—

सन्त्रासमबिभः शक्रः प्रैङ्खच्च ।

इन्द्र त्रस्त और क्षुब्ध हुए ।

'मालतीमाधव'[2] में देखिए—

प्रेङ्खद्भूरिमयूरमेचकवयैः ।

प्रेङ्खन्तः – प्रचलन्तः ।

चलते हुए मयूरों के चन्द्रक-समूहों से ।

'अमरुशतक'[3] में देखिए—

प्रेङ्खन्नखांशुचयसंवलितो मृढान्याः ।

पार्वती के स्फुरित नाखूनों की किरणों के समूह से युक्त ।

इस प्रकार ईङ्ख् धातु प्रेरित करना, क्षुब्ध होना, चलना अर्थ में प्रयुक्त हुई है ।

वल्ग्[4] (वल्ग) गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, कातन्त्र, शाकटायन, हैम ।

व्रजे—कविकल्पद्रुम ।

'विष्णु पुराण'[5] में वल्ग् धातु 'उछलना' अर्थ में प्रयुक्त हुई है—

वल्गन्ति गोपाः कृष्णेन ये चेमे सहिताः पुरः ।

मेरे सामने कृष्ण के साथ ये जितने गोपगण उछल रहे हैं—

'विष्णु-पुराण'[6] में एक अन्य प्रयोग देखिए—

---

१. १७।१०८

२. ६।५

३. १

४. पा०धा० १।९१, क्षीर० १।९१, धा०प्र० १।३७, चा०धा० १।३८, जै० धा० १।४९३, कात०धा० १।३८, शाक०धा० १।४९८, है०धा० १।७७, क०क०द्रु०धा० ६५

५. ५।२०।८४

६. ५।२०।६४

बलभद्रोऽपि चास्फोट्य **ववल्ग** ललितं यथा ।

बलभद्र भी अपने भुजदण्डों को ठोकते हुए मनोहर भाव से **उछलने लगे** ।

'भट्टि-काव्य'[1] में वल्ग् धातु का प्रयोग 'सामान्य गमन' अर्थ में हुआ है—

भ्रेमुर्ववल्गुर्ननृतुः ।

(कुछ वानरों ने) भ्रमण किया, कोई किसी स्थान में **गये** ।

वानर उछल-उछल कर चलते हैं, अतः वानरों के गमन से तात्पर्य यहाँ उछल-उछल कर चलना है ।

'बंगला भाषा'[2] में 'वल्ग्' शब्द 'गति, प्लुत गति' का वाचक है ।

'विमानवत्थु'[3] में 'प्लुत गति' अर्थ में 'वग्गति' क्रिया का प्रयोग हुआ है ।

रङ्ग्[4] (रगि) गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

टीकाकार चन्नवीर[5]कृत व्याख्या इस प्रकार है—

रङ्गति—रजति । रङ्गः—रजनम् ।

'यशस्तिलकचम्पू'[6] में रङ्ग् धातु का प्रयोग 'चलना' अर्थ में हुआ है—

स्वल्पं रङ्गति जानुहस्तचरणः ।

(बच्चा) घुटनों व हाथों का सहारा लेकर थोड़ा सा चलता है ।

'पउमचरिउ'[7] में लहरों का इधर उधर चलना अर्थ में रङ्गन्त शब्द का प्रयोग हुआ है—

कत्थइ तरङ्गरङ्गन्त फणपरिवड्ढियावयवा ।

कहीं पर **इधर-उधर चलने वाली** लहरों से उत्पन्न फेन के कारण वह आकर्षक अवयव वाली लगती थी ।

---

१. १३।२८

२. वं०श० कोष २।१४७१

३. द्र०प्रा०धा०स० पृ० ४४३

४. पा०धा० १।६१, क्षीर० १।६१, धा०प्र० १।३८, चा०धा० १।३८, जै०धा० १।४६३, काश०धा० १।३८, कात०धा० १।३८, शाक०धा० १।४६६, है०धा० १।७८, क०क०द्रु०धा० ६४

५. काश०धा० १।३८

६. २।२०२

७. १०।२१

मराठी भाषा[1] में 'रांगणें' क्रिया का अर्थ 'घुटनों एवं छाती के बल चलना' है। रांगणें क्रिया 'रङ्ग् गतौ' धातु से व्युत्पन्न है।

लङ्ग्[2] (लगि) गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन।

खञ्जने—हैम।

गतौ, खञ्जे-कविकल्पद्रुम।

टीकाकार चन्नवीर[3]कृत व्याख्या इस प्रकार है—

लङ्गति—चञ्चलो भवति।

निरुक्त[4] में लाङ्गल और 'लाङ्गूल शब्द की व्युत्पत्ति 'लङ्ग् गतौ' धातु से की गई है—

लाङ्गलं लङ्गतेर्लाङ्गूलवद्वा।

लाङ्गूलं लङ्गतेर्लम्बतेर्वा।

लाङ्गल (हल) चलाया जाता है, अतः लाङ्गल शब्द 'लङ्ग् गतौ' धातु से व्युत्पन्न है। पूंछ वाचक लाङ्गूल शब्द भी 'लङ्ग् गतौ' धातु से व्युत्पन्न है, क्योंकि पूंछ हिलती रहती है।

'हिन्दी भाषा'[5] में 'लंगड़ा' शब्द पङ्गु का वाचक है।

'मराठी भाषा'[6] में 'लंग' शब्द दुर्बल, कमजोर का वाचक है। मराठी 'लङ्ग' शब्द 'लङ्ग् गतौ' धातु से व्युत्पन्न है।

अङ्ग्[7] (अगि) गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

---

१. म०व्यु० कोष, पृ० ६१४

२. पा०धा० १।६१, क्षीर० १।६१, धा०प्र० १।१४०, चा०धा० १।३८, जै० धा० १।४६३, काश०धा० १।३८, कात०धा० १।३८, शाक०धा० १।५०० हैं०धा० १।८०, क०क०द्रु०धा० ६४

३. काश०धा० १।३८

४. ६।५

५. हि०धा०सं० पृ० १४

६. म०व्यु० कोष पृ० ६२३

७. पा०धा० १।६१, क्षीर० १।६१, धा०प्र० १।१४१, चा०धा० १।३८, जै० धा० १।४६३, कात०धा० १।३८, शाक०धा० १।५०१, हैं०धा० १।८४, क०क०द्रु०धा० ६२

अङ्ग् धातु के प्रयोग अनुपलब्ध हैं, किन्तु 'अङ्गन' एवं 'अङ्गूषः' शब्द 'अङ्ग' धातु के 'गति' अर्थ में प्रचलन की ओर संकेत कर रहे हैं। 'अङ्गन' शब्द 'आंगन' का वाचक है और 'अङ्ग् गतौ' से धातु से व्युत्पन्न है—

अङ्ग्यते गृहान्निःसृत्य गम्यते अत्र अङ्गनम्।[१]

घर से बाहर निकल कर टहलने के लिए जहाँ जाना पड़ता है, उसे आंगन कहते हैं। 'अङ्गूषः' शब्द बाण का वाचक है[२] और 'अङ्ग् गतौ' धातु से व्युत्पन्न है। बाण के फेंके जाने से एवं बाण के निशाने पर पहुँचने तक बाण की गति ही देखी जाती है।

टीकाकार चन्नवीर[3] 'अङ्ग् गतौ' की व्याख्या 'अङ्कुरितो भवति' अर्थ में करते हैं—

अङ्गम्—अवयवः, अङ्गति—अङ्कुरितो भवति।

'अङ्ग' शब्द आज भी अवयव का द्योतक है। 'अङ्गति' तिङन्त रूप से 'अवयवों का हृष्ट-तुष्ट होना, बढ़ना' अर्थ व्यक्त होता है। 'हृष्ट-पुष्ट होना' अंगों की गति है, इसी अभिप्राय से चन्नवीर टीकाकार ने 'अङ्कुरितो भवति' व्याख्या की है और यह उचित भी जान पड़ती है।

वङ्ग्, वगि[४] गतौ (प०) पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

'खञ्ज' से तात्पर्य 'लंगड़ाकर चलना' है, चन्नवीर टीकाकार[५] ने 'वङ्ग् गतौ' की व्याख्या 'कान्तिहीन, मुरझा जाना' अर्थ में की है—

वङ्गति—ग्लायति।

'पंजाबी भाषा' में[६] 'वगना' शब्द गमन, दौड़ना अर्थ में प्रयुक्त होता है।

---

१. श०क०द्रु० कोष १।१४७

२. रा० क० द्रु० कोष १।१६

३. काश० धा० १।३८

४. पा० धा० १।६१, क्षीर० १।६१, धा० प्र० १।१३६, चा० धा० १।२८, जै० धा० १।४६३, काश० धा० १।३८, कात० धा० १।३८, शाक० धा० १।५०४, है० धा० १।८५, क०क०द्रु०धा० ६५

५. काश० धा० १।३८

६. पं० डि० पृ० ११८४

मङ्ग् (मगि)[१] गतौ (प०) सर्पणे — पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

विशेषावश्यक सूत्र भाष्य में[२] 'मंगिज्जए' शब्द का प्रयोग सिद्ध होना, प्राप्त होना अर्थ में हुआ है—

'मंगिज्जए धिगम्मइ जेण हिअं तेण मंगलं होइ।

भाष्य—मङ्ग्यतेऽवगम्यते साध्यते यतो हितमनेन तेन कारणेन मंगलं भवति।

'मङ्ग्यते' क्रिया 'मङ्ग् गतौ' धातु से व्युत्पन्न है।

'मराठी भाषा' में[३] 'मांगणें' क्रिया मङ्ग्-गतौ' धातु से व्युत्पन्न है। 'गति' से तात्पर्य यहाँ बिखेरना, इधर-उधर होना, इधर-उधर फैलना है।

'ज्ञानेश्वरी ग्रन्थ' में[४] प्रयोग भी हुआ है।

तङ्ग् (तगि)[५] गतौ (प०) — पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, हैम, कविकल्पद्रुम।

मराठी भाषा में तांगणे क्रिया 'तङ्ग् गतौ' धातु से व्युत्पन्न है। 'तांगणें' क्रिया का अर्थ 'टांगों से बांधना' है।

त्वङ्ग्[७] (त्वगि) गतौ (प०) — पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

'कथासरित्सागर' में[८] त्वङ्ग' धातु 'टापने' के अर्थ में प्रयुक्त हुई है—

---

१. पा० धा० १।६१, क्षीर० १।६१, धा०प्र० १।१४२, चा०धा० १।३८, जै०धा० १।४६३, काश०पा० १।३८, कात०पा० १।३८, शाक०धा० १।५०५, है०धा० १।८५, क०क०द्रु०धा० ६३
२. २२
३. म०व्यु०कोष पृ० ४८५
४. ६।१३८
५. पा० धा० १।६१, क्षीर० १।६१, धा०प्र० १।१४३, पा०धा० १।३८, है० धा० १।८०, क०क०द्रु०धा० ६२
६. म० व्यु० कोष पृ० ३७२
७. पा० धा० १।६१, क्षीर० १।६१, धा०प्र० १।१४४, पा०धा० १।३८, जै० पा० १।४६३, शाक० धा० १।५१०, है०पा० १।६१, क०क०द्रु० धा० ६२
८. ३।४।७

'त्वङ्गतुरङ्गसङ्घातखुराग्राङ्कनखक्षता ।

टापते हुए अश्वसमूह के खुरों के अग्र भाग से नखक्षत ।

इङ्ग् (इगि)[1] गतौ (प०) पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन ।

चन्नवीर टीकाकार[2] 'इङ्ग गतौ' की व्याख्या इस प्रकार करते हैं—

इङ्गति—अल्पीभवति ।

'इङ्ग्' धातु 'चेष्टा करना' अर्थ में प्रसिद्ध है । उदाहरणतः

'ऋक् संहिता' में[3] देखिए—

गुहा त्रीणि निहिता **नेङ्गयन्ति** ।

गुफा में छिपे हुए तीन भाग **चेष्टा नहीं करते** ।

नेङ्गयन्ति—न चेष्टन्ते, न निमिषन्ति ।

'शतपथ ब्राह्मण'[4] और 'महाभाष्य' में[5] भी उपर्युक्त पंक्ति ही वर्णित है । गीता में[6] देखिए—

'यथा दीपो निवातस्थो **नेङ्गते**' ।

जैसे वायु-रहित स्थान में रखा हुआ दीपक निश्चल भाव से स्थित रहता है, **हिलता-डुलता नहीं है** ।

'महाभारत में आरण्यक पर्व' में[7] देखिए—

त्रासानां स्थावराणां च यच्चेङ्ग यच्च **नेङ्गति** ।

जो **चेष्टा करता है** और जो **चेष्टा नहीं करता**, उन सब स्थावर जङ्गम (प्राणियों के लिए भयंकर समय आ गया है) ।

'भविष्य पुराण' में[8] इसी अर्थ में 'इङ्ग्' धातु का प्रयोग देखिए—

यस्माद्भिन्नमिदं सर्वं यच्चेदं यच्च **नेङ्गति** ।

---

१. पा०धा० १।९१, क्षीर० १।९१, धा०प्र० १।१४९, चा०धा० १।३८, जै०धा० १।४९३, काश०धा० १।३८, कात०धा० १।३८, शाक०धा० १।५०७, है०धा० १।८७, क०क०द्रु०धा० ९२

२. काश०धा० १।३८

३. १।१६४।४५

४. ४।१।३।१७

५. पस्पशा०

६. ६।१९

७. १५८।२८

८. ६१।१९

'व्याकरण-चन्द्रोदय में[1] इङ्ग् धातु का अर्थ 'चेष्टा करना' ही बताया गया है।

'बंगला भाषा' में[2] 'इङ्ग' शब्द 'गति और चाल' का वाचक है।

कन्नड़ भाषा में[3] भी 'इङ्ग' शब्द 'गति और चाल' का वाचक है।

रिङ्ग (रिगि)[4] गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

काशकृत्स्न ने रिङ्ग् धातु का एक ही सूत्र में दो बार पाठ किया है--

'अख उख णख वख मयूख मख मुख रख रिख लख लिख रखि लखि इखि वखि रगि रिगि लगि रिगि वगि मगि सखि इगि षिगि लिगि—गतौ'

काशकृत्स्न को स्यात् 'गति' धात्वर्थ से भिन्न-भिन्न प्रकार की गति अभिप्रेत रही होगी। अन्यथा गति अर्थ में 'रिगि' धातु का दो बार पाठ व्यर्थ प्रतीत होने लगेगा।

काशकृत्स्न धातुपाठ के टीकाकार चन्नवीर ने[5] 'धातु सूत्र' की व्याख्या में रिङ्ग् धातु का केवल 'तिङन्त रूप' दिया है, और तिङन्त रूप का उल्लेख उसके उचित स्थान पर न कर 'मयूख्' धातु की व्याख्या के साथ किया गया है—

'मयूखति-पाटयति तमः' रिङ्गति।

चन्नवीर द्वारा की गई व्याख्या को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि 'रिङ्गति' तिङन्त रूप का अर्थ भी 'पाटयति तमः' अर्थात् अन्धकार को दूर करना रहा होगा अन्यथा 'रिङ्गति' तिङन्त रूप का उल्लेख अपने उचित स्थान पर होना चाहिए था।

संस्कृत साहित्य में 'रेंगना', 'घुटनों के बल चलना' अर्थ में रिङ्ग् धातु प्रयुक्त हुई मिली है—

भागवत पुराण में[6] देखिए—

---

१. ३।५७

२. बं०श०कोष १।३४०

३. क०हि०कोष पृ० ६९

४. पा०धा० १।६१, क्षीर० १।६१, धा०प्र० १।१५०, चा०धा० १।३८, जै० धा० १।४६३, काश०धा० १।३८, कात०धा० १।३८, शाक०धा० १।५०६ है०धा० १।८९, क०क०द्रु०धा० ६४

५. काश०धा० १।३८

६. १०।८।२१

जानुभ्यां सह पाणिभ्यां **रिङ्गमाणौ** विजह्रतुः ।

घुटनों और हाथों के बल **रेंग-रेंग कर** चलने लगे ।

'भागवत-पुराण' में[1] ही एक अन्य स्थल पर देखिए—

रिङ्गयामास काप्यङ्घ्री कर्षन्ती घोषनिःस्वनैः ।

(एक गोपी) नूपुरों का शब्द करती हुई पांव खींच कर **घुटनों के बल बकैयां चलने लगी** ।

'शिशुपालवध' में[2] सूर्य का शिखरों पर **घूमना** अर्थ में रिङ्ग् धातु प्रयुक्त हुई है—

उदयशिखरिशृङ्गप्राङ्गणेष्वेष **रिङ्गन्** ।

बालसूर्य उदयाचल के विस्तृत शिखरों पर **घूमता** हुआ ।

सूर्य का शिखरों पर घूमना, बिना पैरों के चलना, रेंगना है, जिस प्रकार छोटे बच्चे पैरों के बल ठीक से खड़े न होने के कारण घुटनों के बल चलते हैं ।

'हिन्दी भाषा' में[3] आज भी 'घुटनों के बल चलने' को रेंगना कहते हैं ।

'कन्नड़ भाषा' में[4] भी 'रिङ्गण' शब्द 'घुटनों के बल चलना, रेंगना' अर्थ में ही प्रचलित है । 'रिङ्गण' शब्द 'रिङ्ग्-गतौ' धातु से ही व्युत्पन्न है ।

बुन्देलखण्डीय भाषा में[5] भी 'रिंगना' शब्द 'मन्द गति से गमन करना' अर्थ का वाचक है ।

'रिङ्ग गतौ' धात्वर्थनिर्देश के स्थान पर 'रिङ्ग् जानुभ्यां गमने' धात्वर्थ अधिक उपयुक्त है ।

लिङ्ग् (लिगि)[6] गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

प्राकृत भाषा में[7] 'लिङ्ग' शब्द 'गति' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

---

१. १०।३०।१६

२. ११।४७

३. हि०धा०सं० २१।२६६

४. क०हि०कोष पृ० ३८८

५. पा०धा०स० पृ० ४००

६. पा०धा० १।६१, क्षीर० १।६१, धा०प्र० १।१५१, चा०धा० १।३८, जै०धा० १।४६३, काश०धा० १।३८, कात०धा० १।३८, शाक०धा० १।५०६, है०धा० १।६०, क०क०द्रु०धा० ६४

७. पाइ०म० पृ० ६०१

रिङ्ख्[1] (रिखि) गतौ (प०) हैम, कविकल्पद्रुम ।

क्षीरतरंगिणी[2] में 'रिङ्ख' धातु के सम्बन्ध में कहा गया है—

द्रमिडानाम् रिखिरपि,

रिङ्खति, रिङ्खणम् स्खलनम् ।

कुमारपालप्रतिबोध[3] में 'रिक्खंतो' शब्द का प्रयोग 'चलने' के अर्थ में हुआ है—अच्छिन्न-पक्खो अंतरिक्खे **रिक्खतो** लक्खिज्जई ।

रिख् (रिख)[4] गतौ (प०) काशकृत्स्न ।

टीकाकार चन्नवीरकृत[5] व्याख्या इस प्रकार है—

रेखदि—रेखां करोति ।

'मराठी भाषा' में[6] रेंगणें रेंघणे क्रियाएँ 'रिख् गतौ' धातु से व्युत्पन्न हैं । 'रेंग (घ) णें क्रिया का अर्थ 'छाती के बल चलना' है ।

शिङ्ख्[7] (शिखि) गतौ (प०) पाणिनीय ।

माधवीय धातुवृत्ति में[8] कहा गया है—सम्मतायां तु शिखि ।

मराठी भाषा में[9] 'शिंगणें' शब्द 'शिङ्ख गतौ' धातु से व्युत्पन्न है; 'शिगणें' क्रिया का अर्थ 'मदोन्मत्त' होना है ।

श्वञ्च्[10] (श्वचि) गतौ (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

'ऋक् संहिता' में[11] 'श्वञ्च्' धातु का प्रयोग हुआ है—

---

१. है०धा० १।७३, क०क०द्रु०धा० ९१
२. १।९१
३. ६७
४. काश०धा० १।३८
५. वही
६. म०व्यु० कोष पृ० ६१९
७. पा०धा० १।९१
८. वही
९. म०व्यु० कोष पृ० ३२८
१०. पा०धा० १।१०२, क्षीर० १।१०२, धा०प्र० १।१६५, चा०धा० १।३५५, जै०धा० १।४८९, काश०धा० १।४२५, कात०धा० १।३४५, शाक०धा० १।७१, है०धा० १।६५१, क०क०द्रु०धा० ११०
११. २०।१८।१२

सा०भा०—**उच्छ्वञ्चमाना** पृथिवी सु तिष्ठतु ।

उभरी हुई पृथ्वी ठीक व्यवस्थित रहे।

'ऋक्-संहिता' में[1] ही अन्य प्रयोग देखिए—

सा०भा०—**इवञ्चयो** गिरीनु···।

पर्वतों को **हिला दिया** ।

अञ्च्[2] (अञ्चु) गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

अञ्च् धातु 'सिकुड़ना, घूमना' अर्थों में प्रयुक्त हुई मिली है—

'भट्टि काव्य' में[3] देखिए—

त्वमप्सरायमाणेह स्वतन्त्रा कथमञ्चसि ?

अप्सरा के सदृश तुम (उस वन में) अकेली क्यों **घूम रही हो** ?

'भामिनी-विलास' में[4] 'कृशता को प्राप्त करना' अर्थ में अञ्च् धातु का प्रयोग देखिए—

दैवात् **कृशमञ्चति** ।

'भगवती सूत्र' में[5] गमन अर्थ में 'अञ्चि' शब्द का प्रयोग हुआ है ।

'ठाणङ्गसुत' में[6] 'गमन' अर्थ में 'यंच' शब्द का प्रयोग हुआ है ।

वञ्च् (वञ्चु)[7] गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

---

१. १०।१३८।२

२. पा०धा० १।१।८, क्षीर० १।६०५, धा०प्र० १।१८५, चा०धा० १४६, जै०धा० १।४६३, काश०धा० १।४८, कात०धा० १।४८, शाक०धा० १।५२२, है०धा० २।१०५ क०क०द्रु०धा० १००

३. ४।२२

४. १।४८

५. पाइ०म० पृ० ८

६. ५-१ पत्र-३००, पाइ०म० पृ० ८७०

७. पा०धा० १।११६, क्षीर० १।१२६, धा०प्र० १।१८६, चा०धा० १४६, जै०धा० १।४६३, काश०धा० १।४६, कात०धा० १।४६, शाक०धा० १।५२२, है०धा० १।१०६, क०क०द्रु०धा० १०६

'वाजसनेयिसंहिता' में[1] 'गमन' अर्थ में वञ्च् धातु प्रयुक्त हुई है—

'नमो **वञ्चते परिवञ्चते** सढायूनां पतये नमः'।

उ०भा०—**गमन करने वाले** और **सब ओर गमन करने वाले** चोरों के स्वामी को नमस्कार हो।

वञ्चतिर्गत्यर्थः—गन्त्रे। परिवञ्चते—सर्वतोगन्त्रे।

'अथर्वसंहिता' में[2] 'घिसटना' अर्थ में वञ्च् धातु का प्रयोग देखिए—

त्वमिन्द्र कपोताय च्छिन्नपक्षाय **वञ्चते**।

हे इन्द्र, आप पर कटे अत एव खिचड़ते हुए कपोत के लिए।

'भट्टि-काव्य' में[3] 'गमन' अर्थ में वञ्च् धातु प्रयुक्त हुई है—

ववञ्चुश्चाहवक्षितिम्।

रणभूमि में **यात्रा की**।

पाणिनि ने अष्टाध्यायी[4] में गति अर्थ में वञ्च् धातु का निर्देश किया है—

वञ्चेर्गतौ।

'जातक' में[5] गति अर्थ में वञ्च् धातु प्रयुक्त हुई है।

वैदिक साहित्य में गमन अर्थ में वञ्च् धातु प्रयुक्त हुई है किन्तु आज वञ्च् धातु केवल 'धोखा देना' अर्थ में ही प्रसिद्ध है। गति अर्थ में प्रचलित नहीं है।

चञ्च् (चञ्चु चचि)[6] गतौ (पा०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

काशकृत्स्न धातुपाठ के टीकाकार चन्नवीर[7] 'चञ्च्' की व्याख्या 'झूठ बोलना' अर्थ में करते हैं—

---

१. १६।२१

२. २०।१३५।१२

३. १४।७४

४. ७।३।६३

५. पाइ०म० पृ० ४३५

६. पा०धा० १।११६, क्षीर० १।१२०, धा०प्र० १।१८७, चा०धा० १।४६, जै०धा० १।४६३, काश०धा० १।४६, कात०धा० १।४६, शाक०धा० १।५२३, है०धा० १।१०७, क०क०द्रु०धा० १०३

७. काश०धा० १।४६

चञ्चति-अनृतभाषणं करोति।

अनृतभाषण अर्थ में प्रयोग अनुपलब्ध हैं। 'कन्नड़ भाषा' में भी इस अर्थ में 'चञ्च्' शब्द प्रचलित नहीं है। टीकाकार चन्नवीर ने 'झूठ बोलना' अर्थ में 'चञ्च्' धातु की व्याख्या किस प्रकार की है, समझ में नहीं आता।

साहित्य में 'चञ्च्' धातु के कृदन्त रूपों का ही अधिकतर प्रयोग हुआ है।

'उत्तररामचरित' में[1] 'हिलने-डुलने' अर्थ में 'चञ्चत्' शब्द का प्रयोग देखिए—

चञ्चत्पञ्चचूडश्चमूनाम्।

हिलती हुई पाँच शिखाओं वाला।

'वेणीसंहार' में[2] इसी अर्थ में 'चञ्चत्' शब्द का प्रयोग देखिए—

चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघात...

हिलते हुए भुजदण्डों से घुमाये हुए भीषण गदा के प्रहार से—

'गीतगोविन्द' में[3] 'व्याकुल होकर इधर-उधर जाना' अर्थ में हुआ है—

त्रिलपति हसति विषीदति रोदिति **चञ्चति** मुञ्चति तापम्।

विलाप करती है, हंसती है, दुःख करती है, रोती है, **व्याकुल होकर इधर उधर जाती है** और संताप को त्याग देती है।

'कथासरित्सागर'[4] में देखिए—

बभूव चन्द्रोत्सवस्तत्र **चञ्चद्**धूचरचारणः।

इस प्रकार प्रयोगों से स्पष्ट है कि 'चञ्च्' धातु कम्पन, हिलना डुलना अर्थ में प्रसिद्ध है। 'चञ्च्' धातु का तिङन्त रूप केवल 'गीतगोविन्द' में ही मिलता है, अन्यत्र कृदन्त रूप ही उपलब्ध हैं और वे भी हिलना डुलना अर्थ में।

म्रुच् म्लुच् (म्रुच म्लुचु)[5] गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप,

---

१. ५।२

२. १।२१

३. ४।८

४. ४।२।१७५

५. पा०धा० १।११६, क्षीर० १।१२०, धा०प्र० १।९२-९३, चा०धा० १।४६, जै०धा० १।४९३, कात०धा० १।४६, शाक०धा० १।५२६-२६, है०धा० १।१११-१२, क०क०द्रु०धा० १०६

चान्द्र, जैनेन्द्र, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

'म्रुच् म्लुच् गतौ' से तात्पर्य अस्त होना है, उदाहरणार्थ ऋक्-संहिता में[1] देखिए—

श्रद्धां सूर्यस्य **निम्रुचि** श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ।

सूर्य के **अस्त होने पर** सायं समय में भी···।

सा०भा०—निम्रुचि अस्तमयवेलायां सायं समये ।

'शतपथब्राह्मण' में[2] देखिए—

म्लोचन्ति ह्यन्या देवता न वायुः ।

अन्य देवता **अस्त हो जाते हैं**, वायु अस्त नहीं होता ।

'जैमिनीय ब्राह्मण' में[3] देखिए—

एष वै मृत्युर् यद् आदित्यो **म्रोचन्** एव नाम ।

'मनुस्मृति' में[4] देखिए—

तं चेदभ्युदियात्सूर्यः शयानं कामचारतः ।

निम्लोचेद्वा ।

निद्रा के वश से सूर्य यदि अभ्युदय से **अस्त हो जाये** ।

निम्लोचेत्—अस्तमियात् ।

व्रज्[5] (व्रज) **गतौ** (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

व्रज धातु 'उड़ना, वेगपूर्वक चलना' अर्थ में प्रसिद्ध है ।

'ऋक् संहिता' में[6] देखिए—

श्येनस्येव **व्रजतो** अन्तरिक्षे ।

अन्तरिक्ष में उड़ते हुए बाज पक्षियों के समान ।

---

१. १०।१५१।५
२. १४।४।३।३३
३. १।१७
४. २।२२०
५. पा०धा० १।१३५, क्षीर० १।२३६, धा०प्र० १।२८४, चा०धा० १।६४, जै०धा० १।४९३, काश०धा० १।६४, कात०धा० १।६३, शाक०धा० १।५३२, है०धा० १।१३५, क०क०द्रु०धा० १२२
६. १।१६५।२

'ऋक् संहिता' में[1] ही 'वायु के वेगपूर्वक चलने' अर्थ में व्रज् धातु का प्रयोग देखिए···आ वातस्य **व्रजतो** रन्त इत्या।

जाती हुई वायु की गति दोनों ओर से प्रसन्न करती है।

सा०भा०—**व्रजतः गच्छतः**।

वायु का गमन 'वेगपूर्वक चलना' है।

'शतपथ ब्राह्मण' में[2] पक्षी के उड़ने अर्थ में व्रज् धातु प्रयुक्त हुई है—

श्येनस्येव **व्रजतो** अङ्कसं परिदधिक्राव्णः।

जैसे आज पक्षी जब उत्सुकता से **उड़ता** है, तो उसके पंख हिलते हैं।

'शतपथ ब्राह्मण' में ही[3] एक अन्य प्रयोग देखिए—

वातस्य त्वा **व्राज्या** इति;

वायु तुझे **हिलाये**।

इस प्रकार 'व्रज्' धातु वायु की गति, पक्षियों के उड़ने' अर्थ में प्रयुक्त होती है।

वृज्[4] (वृज) गतौ (प०)—पाणिनीय, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

बंगला भाषा में[5] 'वृज' शब्द 'गति' का वाचक है।

ध्वज्[6] (ध्वज) गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

पताकावाचक 'ध्वजः' शब्द ध्वज् गतौ धातु से व्युत्पन्न है। ध्वजति उच्छ्रितो भवतीति ध्वजः।[7]

---

१. ७।३६।३

२. ५।१।५।२०

३. ३।८।३।२१

४. पा०धा० १।१३५, धा०प्र० १।२१६, जै०धा० १।४९३, काश०धा० १।६४, कात०धा० १।६३, शाक०धा० १।५३०, है०धा० १।१३०, क०क० द्रु०धा० १२१

५. बं०श०कोष १।११६५

६. पा०धा० १।१३५, क्षीर० १।१३६, धा०प्र० १।२।८, जै०धा० १।४९३, काश०धा० १।६४, कात०धा० १।६३, शाक०धा० १।५३१, है०धा० १।१३२, क०क०द्रु०धा० १२२

७. श०क०द्रु० कोष २।८१०

हमारे विचार में 'ध्वज् गतौ' से तात्पर्य उन्नति करना, ऊँचा उठना है। 'पताका ऊँचा होना' भी इसी अर्थ को व्यक्त करता है।

बंगला भाषा में[१] 'ध्वज' शब्द 'गति' का वाचक है।

खञ्ज्[२] (खजि) गतिवैकल्ये (प०)···पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम।

पाङ्गुल्ये कविकल्पद्रुम।

'खञ्ज् गतिवैकल्ये' धात्वर्थ से तात्पर्य लंगड़ाकर चलना है। उदाहरणार्थ 'मनुस्मृति'[३] में देखिए—

खञ्जो वा यदि वा कालः।

खञ्जो गतिविकलः।

गर्भ उपनिषद्[४] में भी 'खञ्जाः' शब्द का प्रयोग देखिए—

व्याकुलितमनसोऽन्धाः **खञ्जाः** कुब्जा वामना भवन्ति।

महाभाष्य[५] में 'खञ्जति' 'निखञ्जति' तिङन्त रूपों का प्रयोग हुआ है।

कर्पूरमञ्जरी[६] में 'खञ्जित' शब्द का प्रयोग देखिये—

खञ्जिततुरङ्गरथी।

लंगड़ाते हुए घोड़ों से युक्त रथ

नैषधीयचरित[७] में देखिए—

खञ्जन्प्रभञ्जनजनः पथिकः पिपासुः।

खञ्जन्···तरुलग्नादिगहनत्वात् मन्दीभवन् वायुः कण्टकवेधात् सोढन् विकलं गच्छन्नित्यर्थः।

बुन्देलखण्डीय भाषा[८] में 'खेतों में हल का उचित स्थान से हट कर चलने' अर्थ में 'खांजा' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

---

१. बं०श० कोष १।११६८

२. पा०धा० १।४२, क्षीर० १।१४६, धा०प्र० १।२३०, चा०धा० १।७२, जै०धा० १।४६४, काश०धा० १।६५, कात०धा० १।६६, शाक०धा० १।५६१, है०धा० १।१४७, क०क०द्रु० ११८

३. ३।२४२

४. ३

५. १।२।२

६. १।२१

७. ११।१०६

८. पा०धा०स० पृ० १३६

व्रज्[1] (व्रज) गतौ (प०) पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

व्रज् धातु 'सामान्य गमन' अर्थ में प्रयुक्त हुई मिलती है ।

'ऋक् संहिता'[2] में देखिए—

वव्राजा सोमनदतीरदब्धाः ।

अभक्षयन्ती: अहिंसिता: मातृभूता अपोऽग्नि: सर्वत: व्रजति ।

'अथर्व संहिता'[3] में देखिए—

मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ।

ब्रह्मतेज प्रदान कर परतत्व ब्रह्मलोक को **चली जाये** ।

'शतपथ ब्राह्मण' में[4] देखिए—

अन्यत: प्लक्षेति बिसवती तस्य हाप्यन्तेन **वव्राज** ।

वहाँ एक झील है । वह इसके किनारे पर **टहलता** रहा ।

'गीता' में[5] देखिए—

मामेकं शरणं **व्रज** ।

'महाभारत' में[6] आश्रमवासिक पर्व' में देखिए—

व्रजाव: शरणं च व: ।

बुद्धचरित में[7] देखिए—

नृपोऽपि **वव्राज** पुरं गिरिव्रजम् ।

राजा भी गिरिव्रज नगर को **गया** ।

'प्राकृत व्याकरण'[8] में 'वच्चइ' शब्द 'गमन' अर्थ में प्रयुक्त होता है ।

---

१. पा०धा० १।१५७, क्षीर० १।१५८, चा०धा० १।८१, काश०धा० १।६४, कात०धा० १।६३, शाक०धा० १।५३५, है०धा० १।१३८, क०क०द्रु० धा० १२६

२. ३।१।६

३. १६।७१।११

४. ११।५।१।४

५. १८।६६

६. १४।६

७. ११।७३

८. ४।२२५

अट्[1] (अट) गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

'अट्' धातु 'भ्रमण' अर्थ में प्रसिद्ध है, उदाहरणार्थ—

'सामरहस्य उपनिषद्' में[2] देखिए—

भगवन्, सर्वभूतानां हिताय भुवनेऽटसि।

भगवन्, सब प्राणियों के हित के लिए लोक में **भ्रमण कर रहे हैं।**

'नारदपरिव्राजक उपनिषद्'[3] में देखिए—

भिक्षार्थ**मटनम्**—

भिक्षा के लिए **घूमना।**

'महाभारत के अनुशासन पर्व' में[4] 'विचरण' अर्थ में 'अट्' धातु प्रयुक्त हुई है—

मुक्तो **ह्यटति** निर्मुक्तो न चैकपुलिनेशयः।

'विष्णु पुराण' में[5] 'विचरण' अर्थ में अट् धातु का प्रयोग देखिए—

सूदर्यस्तापसानुग्रो वनान्य**टति** यस्सदा।

वह तपस्वियों को मारता हुआ सदा वनों में **विचरण करता था।**

'बुद्धचरित' में[6] इसी अर्थ में 'अट्' धातु का प्रयोग देखिए—

कथं सोऽद्य भिक्षाम**टति** भिक्षुवत्।

वह (बुद्ध) आज भिक्षु की तरह किस प्रकार भिक्षा माँगते **पर्यटन करते हैं?**

भट्टिकाव्य में[7] देखिए—

ज्योतिष्कुर्वन्निर्वैकोऽस**ावाटीत्** संख्ये पराध्यर्वत्।

---

१. पा०धा० १।१९६, क्षीर० १।१९८, धा०प्र० १।२९३, चा०धा० १।१०४, जै०धा० १।४९४, काश०धा० १।११३, कात०धा० १।१०२, शाक०धा० १।६१२, है०धा० १।१९४, क०क०द्रु०धा० १३३

२. २३०।१४

३. ३।६५

४. १४१।८७

५. ५।१४।६

६. १९।१०

७. ९।६४

अग्नि को प्रदीप्त करते हुए के सदृश, अकेले होते हुए भी (हनुमान्) परार्ध्यसंख्यक के तुल्य हो संग्राम में घूमने लगे।

इस प्रकार अट् धातु साहित्य में घूमना, विचरण, भिक्षा के लिए दर-दर भटकना, यात्रा करना अर्थों में प्रयुक्त हुई मिली है।

'प्रश्न व्याकरण सूत्र'[१] में 'अंडति' का प्रयोग भ्रमण अर्थ में हुआ है··· अंडति संसारे।

बंगला भाषा में[२] 'अट्' धातु से व्युत्पन्न 'अट' शब्द 'भ्रमण करना' अर्थ में प्रयुक्त होता है, और 'अटण' शब्द 'भ्रमण करने वाले व्यक्ति' का वाचक है।

कन्नड़ भाषा में[३] भी 'अट' और 'अटन' शब्द भ्रमण अर्थ में ही प्रयुक्त होते हैं। 'अटिसु' क्रियापद का व्यवहार 'खेल, क्रीडा' और 'भ्रमण करना' इन अर्थों में किया जाता है; स्यात् इसीलिए कन्नड़ टीकाकार चन्नवीर ने भी काशकृत्स्न धातुपाठ की कन्नड़ टीका में 'अट्' धातु की व्याख्या 'भ्रमण' अर्थ के साथ साथ 'क्रीडा' अर्थ में भी की है।

पट[४] गतौ (प०)...पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

टीकाकार चन्नवीर[५] 'पट् गतौ' की व्याख्या 'आच्छादन' अर्थ में करते हैं—पटति-आच्छादयति।

तेजोबिन्दु उपनिषद्[६] में 'पटु' शब्द का 'गति' अर्थ में प्रयोग हुआ है।

बगला भाषा[७] में 'पट' शब्द 'गति' का वाचक है।

शट् (शट) गतौ[८] (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

---

१. १।१

२. अ०श०कोष १।३७

३. क०हि०कोष पृ० १८

४. पा०धा० १।१९६, क्षीर० १।१९८, धा०प्र० १।२९४, चा०धा० १।१०४, जै०धा० १।४९४, काश०धा० १।११३, कात०धा० १।१०२, शाक०धा० १।६१३, हैं०धा० १।१९५, क०क०द्रु०धा० १३९

५. काश०धा० १।११३

६. ४।२४ पा०धा०स० पृ० २५२

७. बं०श० कोष २।१२५५

८. पा०धा० १।१९९, क्षीर० १।२०१, धा०प्र० १।२९८, जै०धा० १।४९४, कात०धा० १।८६, शाक०धा० १।५९२, है०धा० १।१७५, क०क०द्रु०धा० १४५

प्राकृत ग्रन्थ 'विपाकनुत'[1] में 'गति' अर्थ में 'सडइ' शब्द का प्रयोग हुआ है—

'मराठी भाषा' में[2] 'सटकणें' क्रिया 'शट् गतौ' धातु से व्युत्पन्न है। गति से तात्पर्य यहाँ to start and to disappear है।

किट्[3] (किट) गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

पुरीषवाचक 'किट्टम' शब्द किट् धातु के 'गति' अर्थ में प्रचलित होने की ओर संकेत करता है—

केटति निर्गच्छतीति किट्टम् गत्यर्थे क्त[4]:।

कट्[5] (कटी) गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, चान्द्र, जैनेन्द्र, शाकटायन।

कट धातुप्रदीप, कातन्त्र, हैम, कविकल्पद्रुम।

बुन्देलखण्डीय भाषा में[6] 'कड़ना' शब्द 'गमन' 'निर्गमन' अर्थ में प्रयुक्त होता है।

संस्कृत भाषा में[7] 'कट' शब्द हाथी के गण्डस्थल का वाचक है। 'कट्' धातु का 'बरसाना' अर्थ व्यक्त हो रहा है—

कटति वर्षति मदम् इति कट:।

काशकृत्स्न ने[8] केवल 'वर्षा' अर्थ में पाठ कर अर्थ विस्तार-कर दिया है। 'कट् गतौ' से तात्पर्य 'गण्डस्थल से बरसाना' है।

---

१. १,१ पत्र १६, पाई०म० पृ० १०७४
२. म०व्यु० कोष पृ० ७०३
३. पा०धा० १।२१५, क्षीर० १।२१८, धा०प्र० १।३१८, चा०धा० १।१०४, जै०धा० १।४६४, काश०धा० १।११३, कात०धा० १।१०२, शाक०धा० १।६१५, है०धा० १।१६७, क०क०द्रु०धा० १८०
४. व्या०च० ३।६७
५. पा०धा० १।२१५, क्षीर० १।२१८, धा०प्र० १।३१८, चा०धा० १।१०४, जै०धा० १।४६४, कात०धा० १।१०२, शाक०धा० १।६१३, है०धा० १।१९८, क०क०द्रु०धा० १३३
६. पा०धा०स० पृ० ६१
७. अ० कोष २।८।३६
८. १।८४

'बंगला भाषा' में[1] 'कट' शब्द 'गति' का वाचक है।

हुड्[2] (हुड) गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, जैनेन्द्र, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

बंगला भाषा में[3] 'हुड' शब्द 'गति' का वाचक है।

हूड्[4] (हूडृ) गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

'मराठी भाषा'[5] में 'बहुडणें' क्रिया अव+'हूड्' गतौ धातु से व्युत्पन्न है। 'बहुडणें' क्रिया का अर्थ 'गोल-गोल घूमना' है।

'ज्ञानेश्वरी ग्रन्थ' में[6] प्रयोग देखिए—

आइके द्वारकापुर सुहाडा। मज सुकतिया जी झाडा।

हे मेटी नव्वे बहुडा। मेघाचा केला।

होड्[7] (होडृ) गतौ (प०)—पाणिनीय, धातुप्रदीप, काशकृत्स्न, कातन्त्र (आ०) कविकल्पद्रुम।

टीकाकार चन्नवीरकृत[8] होड् धातु की व्याख्या बड़ी विचित्र है—

होडति जानाति, होड:—व्याघ्र:।

संस्कृत साहित्य में होड् धातु के प्रयोग अनुपलब्ध हैं।

हिन्दी भाषा में[9] 'होड़' शब्द प्रतिस्पर्धा का वाचक है। यह प्रतिस्पर्धा किसी भी चीज में सम्भव है, जैसे दौड़ लगाने की स्पर्धा गति से सम्बद्ध है।

---

१. बं०श० कोष १।५१५
२. पा०धा० १।२४१, क्षीर० १।२४६, जै०धा० १।४६४, कात०धा० १।१५१, शाक०धा० १।६२०, है०धा० १।२४७, क०क०द्रु०धा० १६८
३. बं०श० कोष २।२३७२
४. पा०धा० १।२४१, क्षीर० १।२१४, कात०धा० १।१५१, शाक०धा० १।६२१, है०धा० १।२४६, क०क०द्रु०धा० १६८
५. म०व्यु० कोष पृ० ५४०
६. ११।६७०
७. पा०धा०१।२४१, धा०प्र० १।३५५, काश०धा० १।२१४, कात०धा० १।१५१
८. काश०धा० १।२१४
९. सं०हि०श० पृ० १०७७

'मराठी भाषा' में[१] भी 'होड' शब्द स्पर्धा का वाचक है।

'बंगला भाषा'[२] में 'होड' शब्द गति का वाचक है और होड नाव को भी कहते हैं। 'नाव में बैठकर जाना' अर्थ ही बंगला भाषा में 'होड्' शब्द से व्यक्त किया जाना होगा।

रफ्[३] (रफ) गतौ (प०) पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र।

लर्ब् (लर्ब) पाणिनीय, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

'मराठी भाषा' में[४] 'पार्श्व गति' अर्थ में 'वरलणें' 'वरलणें' क्रिया का प्रयोग होता है। 'बरलणें, ब्ररलणें' क्रियाएँ 'रफ्, लर्ब् गतौ' धातु से व्युत्पन्न हैं।

बर्ब्[५] (बर्ब) गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

टीकाकार चन्नवीरकृत[६] व्याख्या इस प्रकार है—

बर्बति-चलति, बर्बन्-वायुः।

'मराठी भाषा' में[७] "बरब्ररणें' क्रिया 'बर्ब् गतौ' धातु से व्युत्पन्न है। बरबरणें मराठी क्रिया श्लेष्मादिमलसहित भागना अर्थ की द्योतक है।

---

१. म०श० कोष ७।३२२५

२. बं०श०कोष २।२३८८

३. पा०धा० १।२८२, क्षीर० १।२८६, धा०प्र० १।४१४, चा०धा० चा०धा० १।१४३, जै०धा० १।४६५, काश०धा० १।२०३, कात०धा० १।१४१, शाक०धा० १।६७६, है०धा० १।३५२, क०क०द्रु०धा० २३८
यहाँ गति से तात्पर्य विभिन्न रंगों से युक्त होना है।

४. म०व्यु० कोष पृ० ५३८

५. पा०धा० १/२८२, क्षीर० १/२८६, धा०प्र० १/४१८, काश०धा० १।२०३, कात०धा० १/१४१, शाक०धा० १/६८२, है०धा० १/३६२, क०क०द्रु०धा० २४१

६. काश०धा० १।२०३

७. म०व्यु० कोष, पृ० ५३८

कर्ब्[1] (कर्ब) गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

'कर्बुरः' शब्द 'कर्ब् गतौ' धातु से व्युत्पन्न है । 'कर्बुरः' शब्द 'नाना वर्ण चित्र-विचित्र' का वाचक है—'कर्बति नानावर्णतां गच्छतीति कर्बुरः' ।[2]

यहाँ गति से तात्पर्य विभिन्न रंगों से युक्त होना है ।

खर्ब्[3] (खर्ब) गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

'खर्ब', 'खर्व' शब्द वामन, बौना के वाचक हैं ।[4] 'खर्ब् गतौ' धात्वर्थ से हमारे विचार में 'वामन गति' ही अभिप्रेत होगी ।

'बंगला भाषा'[5] में 'खर्ब' शब्द 'गति और वामन' का वाचक है । जङ्घ् (जघि)[6] गतौ (प०) काशकृत्स्न ।

टीकाकार चन्नवीरकृत[7] व्याख्या इस प्रकार है—

जङ्घति—उत्थापयति; जङ्घा-जघनम्' ।

'जङ्घ्' धातु के प्रयोग अनुपलब्ध हैं; किन्तु हिरनवाचक जङ्घालः शब्द जङ्घ् धातु से जलच् प्रत्यय से बना है—

प्रशस्ता जङ्घास्त्यस्येति (जङ्घा+लच् सिद्धादिभ्यश्च लच्[8]) जङ्घालः से तात्पर्य अतिवेगवान् है—जङ्घालोऽतिजवस्तुल्यः ।[9]

---

१. पा०धा० १।२८२, क्षीर० १।२८८, धा०प्र० १।४२१, जै०धा० १।४९५, कात०धा० १।१४१, शाक०धा० १।२८३, है०धा० १।३५५, क०क०द्रु० धा० २४०
२. हला० कोष पृ० ३०९
३. पा०धा० १।२८२, क्षीर० १।२८९, धा०प्र० १/४२२, चा०धा० १/१४३, जै०धा० १।४९५, कात०धा० १/१४१, शाक०धा० १/६८४, है०धा० १।३५६, क०क०द्रु०धा० २४०
४. अ० कोष २।६।४६
५. बं०श०कोष १।७२३
६. काश०धा० १/२७३
७. वही,
८. श०क०द्रु०कोष २/५०३
९. अ०कोश २।८।७३

जङ्घाला: प्रायशः सर्वे पित्तश्लेष्महराः स्मृताः,
किञ्चिद्वातकराश्चापि लघवो गलवर्धना: ।"[1]

हिरन अत्यन्त तेजी से दौड़ते हैं, अतः उन्हें जङ्घाल: कहा जाता है ।

'कन्नड़ भाषा' में[2] भी 'जङ्घा' शब्द 'तीव्र गति' को ही सूचित करता है—

जङ्घा अनिल—जल्दी जल्दी चलने वाली हवा ।

अम् (अम)[3] गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

बंगला भाषा में[4] 'अम' शब्द 'गति' अर्थ का वाचक है । संस्कृत साहित्य में इस धातु के प्रयोग अनुपलब्ध हैं ।

द्रम्[5] (द्रम) गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

'कठोपनिषद्' में[6] 'अत्यन्त कुटिल गति, बुरी गति' अर्थ में द्रम् धातु का प्रयोग हुआ है—

दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा अन्धनैव नीयमाना यथान्धाः ।

अविवेकी मूढ़ अत्यधिक **कुटिल** अनेक रूप वाली **गति को जाते** हुए बुढ़ापा मरण रोगादि दुःखों से घिर जाते हैं ।

दन्द्रम्यमाणाः—अत्यर्थकुटिलामनेकरूपां गतिं गच्छन्तः ।

'निघण्टु' में[7] भी द्रम्' धातु को गत्यर्थक कहा गया है ।

---

१. धा०प्र० पूर्वखण्ड ११।१४

२. क०हि०कोष पृ० २६८

३. पा०धा० १।३०७, क्षीर० १।३१२, धा०प्र० १।४६४, पा०धा० १।१५५ जै०धा० १।४९५, काश०धा० १।२२४, कात०धा० १।१६०, शाक०धा० १।७१३, है०धा० १।३९२, क०क०द्रु०धा० २५१

४. बं०ग० कोष १।६५

५. पा०धा० १।३०८, क्षीर० १।३१३, धा०प्र० १।४६५, चा०धा० १।१५५, काश०धा० १।२२४, कातन्त्र १।१६०, शाक०धा० १।७१८, है०धा० १।३९३, क०क०द्रु० धा० २५३

६. २।५

७. २।१४

'भट्टिकाव्य' में[1] 'इधर-उधर घूमना' अथ में 'द्रम्' धातु का प्रयोग हुआ है—
वानरा दद्रमुश्चाऽथ ।

वानर इधर-उधर घूमने लगे ।

हम्म्[2] (हम्म) गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

हम्ँ — शाकटायन ।

हम्म् — चान्द्र ।

हम्म् धातु सौराष्ट्र देश में 'गति' अर्थ में प्रयुक्त होती है ।[3]

क्रम्[4] (क्रम्) पादविक्षेपे (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम ।

पादविहरणे — चान्द्र ।

गतौ — कविकल्पद्रुम ।

'ऋक् संहिता' में[5] विहरण करने के अर्थ में क्रम् धातु का प्रयोग देखिए—

अश्वासो न चङ्क्रमत ।

हमारे आशीर्वाद से अश्वों के समान तुम सब **विहार करो** ।

चङ्क्रमत—विहरत ।

'अथर्व संहिता'[6] में देखिए—

इन्द्रो रूपेणाग्निर्वहेन प्रजापतिः परमेष्ठी विराट् विश्वानरे **अक्रमत** ।[7]

अक्रमत—तादात्म्येन प्रविष्टः ।

---

१. १४।७०

२. पा०धा० १।३०८, क्षीर० १।३१३, धा०प्र० १।४६६, चा०धा० १।१५५, काश०धा० १।२२४, कात०धा० १।१६०, शाक०धा० १।७१६, है०धा० १।३६५, क०क०द्रु०धा० २५६

३. महाभाष्य (पस्पशाह्निक)

४. पा०धा० १।३१०, क्षीर० १।३१६, धा०प्र० १।४७२, चा०धा० १।१५७, जै०धा० १।४६५, काश०धा० १।२२१, कात०धा० १।१५७, शाक०धा० १।७२६, है०धा० १।३८५, क०क०द्रु०धा० २५१

५. ८।५५।४

६. ४।११।७

७. १।५।३।८

'शतपथ ब्राह्मण'[1] में देखिए—

स यत्रैव तिष्ठन् **प्रयाजेभ्य आभावयेद्** । तत एव **नापक्रमेत्सङ्ग्रामो** वा एष सन्निधीयते यः **प्रयाजैर्यजते यतरो वै** संयत्तयोः पराजयतेऽप-वै **सङ्क्रामत्य**-भितरामु वै जयन्**क्रामति** तस्मादभितरामभितरामेव **क्रामेद**भितरामभितरामाहुती-र्जुहुयात् ।

वह जहाँ खड़ा होकर प्रयाजों के लिए बुलाये, वहाँ से **हटे नहीं** । संग्राम हो जाता है जब कोई प्रयाजों से यज्ञ करता है और लड़ने वालों में जो परास्त हो जाता है वह पीछे **हट जाता है** और जो विजयी होता हैं, वह निकट **चलता** जाता है, इसलिए शायद अध्वर्यु भी निकट निकट **जाकर** आहुति देने को उद्यत है ।

महाभारत में[2] देखिए—

नादारां क्रमते शस्त्रं दारौ शस्त्रं निपात्यते ।

भागवत पुराण[3] में देखिए—

क्रमतो गां पदैकेन द्वितीयेन दिवं विभो ।

एक पैर से पृथ्वी और दूसरे पैर से स्वर्ग **नापते हुए** ।

रघुवंश में[4] 'अतिक्रमण करना' अर्थ में 'क्रान्त्वा' शब्द का प्रयोग देखिए—

स्थितः सर्वोन्नितेनोर्वीं **क्रान्त्वा** मेरुरिवात्मना ।

दिलीप अपने ऊंचे शरीर से पृथ्वी को **आक्रान्त कर** सुमेरुपर्वत के समान स्थित है ।

किरातार्जुनीय'[5] में भी 'अतिक्रमण' अर्थ में 'क्रामद्भिः' शब्द का प्रयोग हुआ है—

क्रामद्भिर्भवनपदवीमनेकसंख्यैस्तेजोभिः ।

असंख्य किरणों से आकाश को **अतिक्रमण करती हुई** ।

'उत्तररामचरित'[6] में भी क्रम धातु का लांघना, अतिक्रमण अर्थ में ही प्रयोग हुआ है—

---

१. ६।५।५
२. ८।१६।३४
३. ८।१६।३४
४. १।१४
५. ४।३४
६. २।१३

योजनानि शतानि क्रान्त्वा प्राप्तः ।

सैंकड़ों योजन लांघकर यहाँ आये हैं ।

'भट्टिकाव्य' में[1] उछलने के अर्थ में 'क्रान्त्वा' शब्द का प्रयोग देखिए—

स्थायं स्थाय क्वचित्क्वचिद्यान्तं क्रान्त्वा क्रान्त्वा स्थितं क्वचित् ।

कहीं-कहीं पर रुककर उछलकर जाता हुआ तथा कहीं पर उछल-उछल कर रुकता हुआ ।

'शिशुपालवध'[2] में देखिए—

क्रामत्युच्चैर्भूभृतो यस्य तेजः ।

जिसका तेज बड़े-बड़े राजाओं को आक्रान्त करता है ।

'विशेष आवश्यक भाष्य' में[3] 'क्रम' शब्द का प्रयोग 'चलना' अर्थ में हुआ है—मणसो वि विनयनियमो न कमइ ।

अय्[4] (अय) गतौ (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम ।

चन्नवीर टीकाकार[5] की व्याख्या इस प्रकार है—

अयते—चलति । अयनम्—मार्गः ।

उत्तरायणम् दक्षिणायनम्—सूर्यरथस्य उत्तरदक्षिणयोर्गतिः ।

'ऋक् संहिता'[6] में 'गमन' अर्थ में ही 'अयमान' शब्द का प्रयोग देखिए—

मनोजवा अयमान आयसीमतरत्पुरम् ।

गरुड मनोवेग से जाते हुए हिरण्यमयी नगरी में उतरे ।

अयमानः गच्छन् ।

'वाजसनेयि संहिता'[7] में 'गति' अर्थ में ही 'अयन' शब्द का प्रयोग देखिए—

---

१. ३।५१

२. १६।८३

३. २४६

४. पा०धा० १।३१२, क्षीर० १।३१८, धा०प्र०, १।४७३, चा०धा० १।४२४, जै०धा० १।४६०, काश०धा० १।४८५, कात०धा० १।४०६, शाक०धा० १।१६८, है०धा० १।७६०

५. काश०धा० १।४८५

६. ८।१००।८

७. १६।६६

शुचीदयन्दीधितिमुत्पशासः क्षामामिन्दन्तो अरुणीरपव्रन् ।

'गायत्रीरहस्य उपनिषद्'[1] में 'सूर्य की गति' के लिए 'अयन' शब्द का प्रयोग हुआ है—

ज्योतिषामयनमिति पञ्चमः ।

सूर्य की गति-भेद से अयन दो प्रकार का होता है, उसमें जब सूर्य की गति कुछ उत्तर की तरफ होती है, उसे 'उत्तरायण' और जब सूर्य की गति दक्षिण की तरफ होती है, उसे 'दक्षिणायन' कहते हैं । उत्तरायण में मकर से मिथुन राशि तक और दक्षिणायन में कर्क से धनु राशि तक सूर्य की संक्रान्ति रहती है ।

'मराठी भाषा'[2] में भी 'अयन' शब्द 'सूर्य की गति' एवं 'अयनचलन' शब्द 'ध्रुव तारे के आस-पास घूमने वाले तारों की गति' के लिए प्रयुक्त होता है ।

'बंगला भाषा' में[3] 'सूर्य एवं चन्द्रमा की गति' के लिए 'अयन' शब्द का व्यवहार किया जाता है ।

'कन्नड़ भाषा'[4] में भी 'अयन' शब्द 'सूर्य की गति' एवं अय शब्द 'गमन करने वाले' के लिए किया जाता है ।

इस प्रकार सामान्य गमन एवं सूर्य की गति इन दोनों अर्थों में 'अय्' धातु का प्रयोग किया जाता है ।

हिण्ड्[5] (हिडि) गतौ (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

'हिन्ड्' धातु के घूमना' अर्थ में प्रयोग मिलते हैं—

दशकुमारचरित'[6] में देखिए—

१. ४०६।६
२. कुलकर्णी-म० व्यु० कोष
३. बं०श०कोष १।१७५
४. क०हि०कोष पृ० ३९
५. पा०धा० १।१७१, क्षीर० १।१७१, धा०प्र० १।२७४, चा०धा० १।३७६ जै०धा० १।४९०, काश०धा० १।४३५, कात०धा० १।३५६, शाक०धा० १।९६, है०धा० १।७०४, क०क०द्रु०धा० १६६
६. ६।४१०

पर्यहिण्डन्त शुष्काः काकमण्डल्यः ।

बुभुक्षित कौओं का समूह **इधर-उधर घूमने लगा** ।

'कर्पूरमंजरी' में[1] देखिए—

मुक्तशङ्क ; हरिणाङ्क ! किं त्वं सुन्दरीपरिसरेण **हिण्डसे** ?

'यशस्तिलकचम्पू' में[2] देखिए—

'अयि कुरङ्गि, किमकाण्डमितस्ततो **हिण्डसे**' ?

'दिव्यावदान' प्राकृत ग्रन्थ में[3] देखिए—

धर्मं ह्यभिज्ञाय जिनप्रशस्त-
माहिण्डसे कोकिलगर्दभौ यथा ।

बुन्देलखण्डीय भाषा में[4] भ्रमण अर्थ में ही 'हुंडना' शब्द का प्रचलन है ।

पण्ड्[5] (पडि) गतौ (आ०) पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

पण्डित शब्द 'पण्ड् गतौ' धातु से व्युत्पन्न है—

पण्डितः— पण्ड्यते तत्वज्ञानं प्राप्यतेऽस्मात् गत्यर्थेति क्तः ।[6]

इस प्रकार 'पण्ड् गतौ' से तात्पर्य 'ज्ञान प्राप्त करना' है ।

वयँ[7] (वय) गतौ (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

---

१. ३।३४

२. २।२०१

३. १२।११, पृ० १०२

४. पा०धा०स० पृ० ५५४

५. पा०धा० १।१८४, क्षीर० १।१८५, धा०प्र० १।२७४, चा०धा० १।३८८, जै०धा० १।४६०, काश०धा० १।४५०, कात०धा० १।३७१, शाक०धा० १।११५, है०धा० १।६८२, क०क०द्रु०धा० १६१

६. हला०कोष पृ० ४०७

७. पा०धा० १।३१४, क्षीर० १।३१८, धा०प्र० १।४७४, चा०धा० १।४२४, जै०धा० १।४६०, काश०धा० १।४८५, कात०धा० १।४०६, शाक०धा० १।१७३, है०धा० १।७६१, क०क०द्रु०धा० २६०

ऋक्-संहिता[1] में सायण ने 'वय' शब्द का अर्थ 'गमनशील पक्षी' किया है—

वयः गमनवन्तः पक्षिमृगादयः ।

'वय' चिड़िया को[2] कहते हैं, अतः हमारे विचार में 'चिड़िया का उड़ना' हो 'वय् गतौ' मे अभिप्रेत होगा ।

'सुरसुन्दरीचरित्र'[3] प्राकृत ग्रन्थ में 'वयइ' शब्द 'गति' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

पय्[4] (पय) गतौ (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

'महाभारत' विराट् पर्व में[5] पय् धातु का प्रयोग हुआ है—

सोपयात् सहसा पश्चात् साहसाध्नाभ्युपेयिवान् ।

'नलकीण्ठ' व्याख्या में 'पय्' धातु की 'गति' अर्थ में व्याख्या की गई है—

अपयात् – पय् गतौ गत्यभावादित्यर्थः ।

पय् धातु के गति अर्थ में अन्य प्रयोग उपलब्ध नहीं है । 'पय' शब्द जल एवं दूध का वाचक है ।[6] तरल पदार्थों का स्वभाव 'बहना' होता है । 'पय् गतौ' से तात्पर्य 'स्रवण' भी हो सकता है ।

मय्[7] (मय) गतौ (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

---

१. १।१४१।८
२. बं०कोष ३ ३।२३१
३. १।२४८
४. पा०धा० १।३१४, क्षीर० १।३१८, जैं०धा० १।४६०, काश०धा० १।४८५, कात०धा० १।४०६, शाक०धा० १।१७३, हैं०धा० १।७६२, क०क०द्रु०धा० २ ६
५. ४।५५।१७
६. अ० कोष १।१०।३, २।६।५१
७. पा०धा० १।३१४, क्षीर० १।३१८, धा०प्र० १।४७६, चा०धा० १।४२४, जैं०धा० १।४६०, काश०धा० १।४८५, शाक०धा० १।१७१, हैं०धा० १।७६३, क०क०द्रु०धा० २६०

'मय' शब्द संस्कृत में[1] ऊँट को कहते हैं अतः 'मय् गतौ' से 'ऊँट की गति' ही अभिप्रेत होगी।

चय्[2] (चय) गतौ (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, हैम, कविकल्पद्रुम।

प्राकृत भाषा[3] में 'चवइ' शब्द का 'प्राणगमन' अर्थ में प्रयोग होता है। प्राण-गमन का अर्थ एक जन्म से दूसरे जन्म में आना है।

तय[4] (तय) गतौ (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

'भट्टिकाव्य' में[5] 'प्रस्थान करना' अर्थ में तय् धातु प्रयुक्त हुई—

अध्युवास रथं तेये पुराश्चुक्षाव चाशुभम्।

रथ में आरोहण किया और लंका से प्रस्थान किया।

'भट्टिकाव्य'[6] में ही एक अन्य स्थल पर 'पृथ्वी पर उतरना' अर्थ में तय् धातु प्रयुक्त हुई है।

धरित्रीं मुसलीं तेये प्रहस्तश्चिखेदे न च।

प्रहस्त भी मुसल लेकर जमीन पर उतरा, खिन्न भी नहीं हुआ।

रय्[7] (रय) गतौ (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

'रय्' धातु का अर्थ 'सामान्य गति' न होकर 'तेज़ी से बहना' है—

---

१. अ०कोष ३।९।७५

२. पा०धा० १।३१४, क्षीर० १।३१८, धा०प्र० १।४७७, चा०धा० १।४२४, काश०धा० १।४८५, कात०धा० १।४०६, है०धा० १।७९५, क०क०द्रु० धा० २५८

३. मवि० ३।१७

४. पा०धा० १।३१४, क्षीर० १।३१८, धा०प्र० १।४७८, चा०धा० १।४२४, काश०धा० १।४८५, कात०धा० १।४०६, शाक०धा० १।१७५, है०धा० १।७९७, क०क०द्रु०धा० २५८

५. १४।७५

६. १४।१०८

७. पा०धा० १।३१४, क्षीर० १।३१८, धा०प्र० १।४८१, चा०धा० १।४२४, जै०धा० १।४९०, काश०धा० १।४८५, कात०धा० १।४०६, शाक०धा० १।१७३, है०धा० १।७९६, क०क०द्रु०धा० २६०

'मेघदूत'[1] में देखिए—

अम्बुकुञ्जप्रतिहतरयं तोयमादाय गच्छेः ।

जामुनों के कुँजों द्वारा रोके गये वेग वाले उस नर्मदा के जल को लेकर जाना ।

यहाँ 'रयम्' शब्द का प्रयोग हुआ है—

रयः—वेगः, नदी-प्रवाहः ।

शल्[2] (शल) गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

'कथासरित्सागर'[3] में शल् धातु से व्युत्पन्न कृदन्त शब्दों का प्रयोग देखिए—

स्वच्छन्दोच्छलदुद्दाममहामरुमरीचिभिः ;

स्वतन्त्रता से उछलती हुई मरुभूमि की किरणों से ।

'शिशुपालवध'[4] में देखिये—

यस्याश्चलद्वारिधिवारिवीचिच्छटोच्छलच्छङ्खकुलाकुलेन ।

चंचल समुद्र के जल की लहरों की परम्परा से उछाल कर लाये गये शंखों से संकुलित ।

शल् धातु का 'गति' अर्थ बाणवाचक शल्य शब्द में दिखाई देता है—

'शलति चलतीति शल्यम्'[5] शस्त्र फेंका जाता है, चलाया जाता है, लक्ष्य तक पहुँचने तक बाण की गति ही देखी जाती है ।

बल्[6] (बल) सञ्चरणे (आ०)—पाणिनीय ।
चलने कातन्त्र ।

---

१. पूर्वमेघ २०

२. पा०धा० १।५७०, क्षीर० १।८८०, धा०प्र० १।४८६, चा०धा० १।५७२, जै०धा० १।४९५, काश०धा० १।२४७, कात०धा० १।५५४, शाक०धा० १।१८६, है०धा० १।९८४, क०क०द्रु०धा० २८२

३. ५।२।९

४. १।३७

५. ५।३४

६. पा०धा० १।३२२, कात०धा० १।४१६

किरातार्जुनीय[1] में दृष्टि का 'इधर-उधर घूमना' अर्थ में बल् धातु का प्रयोग देखिए—

दृष्टिरन्यतो न **बलति** ।

'शिशुपालवध'[2] में देखिए—

इदमपास्य विरागि परागिणीरलिकदम्बकमम्बुरुहां···**बलतेऽभिमुखं** तव ।

परागयुक्त कमलश्रेणियों को छोड़कर विरागयुक्त यह भ्रमर-समूह तुम्हारे **सामने आ रहा है** ।

'महावीरचरित'[3] में देखिए—

अन्योन्यं शरवृष्टिरेव **वलते** दृष्टिस्तयोर्वत्सला ।

एक दूसरे पर बाण ही **प्रवृत हो रहे है**, आंखें तो दोनों की वात्सल्यपूर्ण हैं ।

'अनर्घराघव'[4] में देखिए—

प्रक्षेप्तुमुदधौ लक्ष्मीं भूयोऽपि **वलते** मनः ।

मन **कर रहा है** कि इस लक्ष्मी को फिर उसी सागर में फेंक दूं ।

'विक्रमांकदेवचरित'[5] में देखिए—

लीला**वलत्**कण्ठमकुण्ठभावा निरीक्षता कापि नरश्वरेण ।

राजा द्वारा लीला से गर्दन **घुमाकर** देखी जाने पर··· ।

'गीतगोविन्द'[6] में देखिए—

त्वदभिसरणरभसेन **वलन्ती** ।

तुम्हारे पास आने की इच्छा से उत्साहवश **डगमगाती हुई** ।

इस प्रकार वल् धातु डगमगाना, संचलन अर्थ में प्रयुक्त हुई है ।

वल्ल्[7] (वल्ल) सञ्चरणे (आ०)—पाणिनीय ।

चलने कातन्त्र ।

कुमारपालप्रतिबोध[8] में संचरण, स्पन्दन अर्थ में वल्ल् धातु का प्रयोग हुआ है ।

१.
२. ६।११
३. ६।४१
४. ७।४२
५. १२।१८
६. ६।३
७. पा०धा० १।३२२, कात०धा० १।४१६
८. ८४

रेव्[1] (रेव) प्लवगतौ पाणिनीय, चान्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र।
प्लुतगतौ (आ०) क्षीरतरंगिणी।
गतौ धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, शाकटायन, हैम।
प्लुतौ कविकल्पद्रुम।

मराठी भाषा में[2] 'रेवणे' क्रियापद 'रेव् गतौ' धातु से व्युत्पन्न है। 'रेवणें' मराठी शब्द 'डूबना, प्रवेश करना' अर्थ में प्रचलित है। डूबना, अन्दर जाना गति ही है।

हय्[3] (हय) गतौ (प०)——पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

टीकाकार चन्नवीर[4] 'हय् गतौ' की व्याख्या नृत्य करना, कूदना अर्थ में करते हैं——

हयति——कूर्दते, नृत्यति, हयः——घोटकः

यास्क[5] भी हय् धातु को गत्यर्थक मानते हैं——

हयति गच्छतीति हयन्तात् गतिकर्मणः।

संस्कृत भाषा में 'हय' शब्द 'अश्व' का वाचक है।[6] अश्व का स्वभाव ही दौड़ना, भागना, कूदना होता है, अतः 'हय् गतौ' धातु से 'अश्व-गति' अर्थात् कूदना अर्थ ही इष्ट है।

चन्नवीर द्वारा 'नृत्य' अर्थ में की गई व्याख्या 'अश्व-गति' से सम्बद्ध है। अश्व का इधर-उधर कूदना मानों नृत्य करना है अथवा किसी का नृत्य अच्छा न लगने पर अश्व-गति से उपमा दी जाती है, अतः चन्नवीर द्वारा की गई व्याख्या ठीक ही जान पड़ती है।

---

१. पा०धा० १।३२६, क्षीर० १।३३६, धा०प्र० १।५०७, चा०धा० १।४८०, जै०धा० १।४६०, काश०धा० १।५०५, कात०धा० १।४२३, शाक०धा० १।१७४, है०धा० १।८२८, क०क०द्रु०धा० २६५
२. क०व्यु० कोष पृ० ६२०
३. पा०धा० १।३३३, क्षीर० १।३४०, धा०प्र० १।५१३, चा०धा० १।१६० जै०धा० १।४६५, काश०धा० १।२२४, कात०धा० १।१६०, शाक०धा० १।७३४, है०धा० १।३६७, क०क०द्रु०धा० २६१
४. काश०धा० १।२२४
५. २।१४
६. अ०कोष २।८।४४

हर्य्[1] (हर्य) गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

टीकाकार चन्नवीर[2] 'हर्य् गतौ' की व्याख्या 'सिंह-गति' अर्थ में करते हैं—

हर्यक्षः सिंहः, हर्यः सिंहगतिः ।

'हर्यः' सिंह का वाचक है,[3] अतः हमारे विचार में भी हर्य गतौ से तात्पर्य 'सिंहगति' ही है ।

केल्[4] (केलृ) चलने (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, शाकटायन, हैम ।

गतौ काशकृत्स्न, कातन्त्र, कविकल्पद्रुम ।

अमरकोष में[5] केलि क्रीडामात्र को कहा गया है ।

द्रवकेलिपरिहासाः क्रीडा लीला च नर्म च ।

साहित्यदर्पण[6] में 'केलि' को स्त्रियों के सात्विक भाव से उत्पन्न अलंकार माना गया है—

यौवने सत्वजास्तासामष्टाविंशतिसङ्ख्यकाः ;

अलङ्कारास्तत्र भावहाव···केलिरित्यष्टादशसंख्यकाः ।

'बंगला भाषा'[7] में 'केल' शब्द गति, क्रीड़ा (जल-केलि) का वाचक है ।

---

१. पा०धा० १।३३५, क्षीर० १।३४२, धा०प्र० १।५१५, चा०धा० १।१६०, जै०धा० १।४९५, काश०धा० १।२२५, कात०धा० १।१६१, शाक०धा० १।७३३, है०धा० १।३९८, क०क०द्रु०धा० २६१

२. काश०धा० १।२२५

३. अ० कोष २।४।१

४. पा०धा० १।३५३, क्षीर० १।३६०, धा०प्र० १।५३७, चा०धा० १।१७८, जै०धा० १।४९५, काश०धा० १।२४७, कात०धा० १।१८०, शाक०धा० १।७५७, है०धा० १।४४५, क०क०द्रु०धा० २७२

५. १।७।३२

६. ३।८९।९३

७. बं०श०कोष १।६७७

खेल्[1] (खेलृ) चलने (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, शाकटायन, हैम।

गतौ काशकृत्स्न, कातन्त्र, कविकल्पद्रुम।

खेल् धातु की व्याख्या चन्नवीर टीकाकार[2] ने इस प्रकार की है—

खेलति-क्रीडति, नृत्यति। खेला विलासः।

संस्कृत साहित्य में खेल् धातु खेलने, क्रीडा अर्थ में प्रयुक्त हुई है—

पंचतन्त्र में[3] देखिए—

'अथ तस्यां पुष्पवाटिकायां पङ्गुररघट्टं **खेलयन्दिष्यगिरागीतमुद्गिरति।'** तब उस वाटिका में एक पंगु कुएं की सीढ़ी पर **खेलता हुआ** मनोहर स्वर से गा रहा था।

मुद्राराक्षस में[4] 'खेलितुम्' शब्द का प्रयोग देखिए—

किं भणसि—'अहमपि अहिना **खेलितु**मिच्छामि।'

क्या कह रहे हो—'मैं भी सर्पों के साथ **खेलना** चाहता हूं।'

कथासरित्सागर में[5] भी एक स्थल पर इसी अर्थ में **खेलयन्** शब्द का प्रयोग हुआ है—

'कृपणोऽहं हि जीवामि भुजगं **खेलयन्** सदा।'

मैं अत्यन्त निर्धन व्यक्ति हूं। सांपों को **खेलता हुआ** जीवित रहता हूं।

खेल मनोविनोद के लिए किये जाते हैं, जैसे बच्चों का रेत में घरौंदे बनाना, भाग दौड़ करना, बैड्मिण्टन आदि आदि। भागने दौड़ने में पाद-विक्षेप तो होता है, किन्तु मनोविनोद के लिए की गई भागना आदि क्रियाएं खेल ही कहलातीं हैं। क्रीडा अर्थ में सामान्यतः 'खेल्' धातु का प्रयोग किया जाता है। गम् धातु का प्रयोग सामान्यतः 'चलने' के अर्थ में किया जाता है। गमन क्रिया को व्यक्त करने के लिए यदि खेल् धातु का प्रयोग किया जाये तो वह धात्वर्थबोध में असमर्थ ही रहेगा; चूंकि खेल किसी विशेष समय में एक ही स्थान पर खेले जाते हैं, इसके विपरीत गमन क्रिया किसी भी समय हो

---

१. पा०धा० १।३५३, क्षीर० १।३६०, धा०प्र० १।५३८, चा०धा० १।१७८, जै०धा० १।४६५, काश०धा० १।२४७, कात०धा० १।१८०, शाक०धा० १।७५८, है०धा० १।४४७, क०क०द्रु०धा० २७२

२. काश०धा० १।२४७

३. ५।५६१

४. २।१

५. २।१।७६

सकती है। 'खेल् गतौ' धात्वर्थ के स्थान पर 'खेल क्रीडायाम्' धात्वर्थ अधिक उपयुक्त है और खेल् धातु गम् धातु की स्थानापन्न है, इस शंका की भी निवृत्ति हो जाती है।

कन्नड़ भाषा में[1] भी 'खेलन, खेले' शब्द क्रीडा, खेल अर्थ में ही प्रयुक्त होते हैं।

क्ष्वेल्[2] (क्ष्वेलृ) चलने (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, शाकटायन।

क्ष्वेल् धातु खेलना, कूदना, क्रीडा अर्थ में प्रयुक्त हुई है—

महाभारत में आश्वमेधिक पर्व[3] में देखिए—

प्रमत्तमत्तसंमत्तक्ष्वेडितोत्क्रुष्टसकुलः।

अनवधान, मदमस्त कूदते हुए, एक दूसरे को खींचते हुए लोगों से भरा हुआ।

नीलकण्ठ टीका—क्ष्वेडितं—कूर्दनम्।

'भागवत पुराण'[4] में देखिए—

क्ष्वेलिकायां मां मृषा समाधिना मीलितदृशम्—।

(जब वह चंचलतावश) कूद फांद करता, मैं झूठ-मूठ समाधि लगाकर आंख मूंद कर बैठ जाता।

वेल्ल्[5] (वेल्ल)चलने (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, हैम।
(वेल्लृ) कविकल्पद्रुम।

कथासरित्सागर[6] में देखिए—

बेल्लद्वीचिर्महानदी।

हिलोरों वाली तरंगों से युक्त महानदी।

काव्यप्रकाश[7] में देखिए—

---

१. क०हि०कोष पृ० २१७
२. पा०धा० १।३५२, क्षीर० १।३६०, धा०प्र० १।५३६, जै०धा० १।४६५, शाक०धा० १।७६०
३. १४।५६।१०
४. ५।८।२१
५. पा०धा० १।३५२, क्षीर० १।३६०, धा०प्र० १।५४०, जै०धा० १।४६५, है०धा० १।४४२, क०क०द्रु०धा० २८१
६. ७।५.१४४
७. १५०।१०

वेल्लति नवपरिणया वधूः।
नवविवाहित वधू कांपती है।

रंभामंजरी में[1] कम्पन अर्थ में 'वेल्लति' क्रिया का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार 'वेल्ल्' धातु 'कम्पन' अर्थ की वाचक है।

[2]सेल् (षेलृ) गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, चान्द्र, जैनेन्द्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।
सेल् (सेलृ) पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, काशकृत्स्न, कातन्त्र, हैम, कविकल्पद्रुम।

टीकाकार चन्नवीरकृत[3] व्याख्या इस प्रकार है—
खेलति—श्लिष्यति।

'मराठी भाषा' में[4] 'सेलणें' क्रिया 'बलपूर्वक तैरना' और हवाई 'जहाज में उड़ना' अर्थ की वाचक है। 'सेलणें' क्रिया 'सेल् गतौ' धातु से व्युत्पन्न है—

ज्ञानेश्वरी ग्रन्थ[5] में प्रयोग देखिए—
ते उपरतीच्या बांबीं सेलत।

खल्[6] (खल) चलने (प०)—पाणिनीय, चान्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम।
सञ्चलने धातुप्रदीप।
चाले कविकल्पद्रुम।

थेरगाथा में[7] 'खलित्वा' शब्द का प्रयोग 'सञ्चलन' अर्थ में हुआ है।

---

१. पा०धा०स० पृ० ४६३
२. पा०धा० १।३५३, क्षीर० १।३६१, चा०धा० १।१७८, जै०धा० १।४६५, काश०धा० १।२४७, कात०धा० १।१८०, शाक०धा० १।७७२, है०धा० १।४३४-३६, क०क०द्रु०धा० २८३
३. काश०धा० १।२४७
४. म०व्यु०कोष पृ० ७५२
५. ७।१०१
६. क्षीर० १।३६३, धा०प्र० १।५४५, चा०धा० १।१८१, काश०पा० १।२४८, कात०पा० १।१८१, शाक०धा० १।७६१, है० धा० १।४४६, क०क०द्रु०धा० २७२, २७१
७. १।४५

मिलिन्दपञ्ह[1] में सञ्चलन अर्थ में ही खल् धातु का प्रयोग हुआ है।

स्खल्[2] (स्खल) सञ्चलने (प०)—पाणिनीय, धातुप्रदीप।

चलने (चले) क्षीरतरंगिणी, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, हैम, कविकल्पद्रुम।

स्खल् चलने से अभिप्राय पद से विचलित होना, गिरना है।

ऐतरेय ब्राह्मण[3] में देखिए—

स्विष्टं तयोरुभयोरेव शान्त्यै सा तत्र प्रायश्चित्तिस्तदाहुर्यस्याग्निहोत्रमधिश्रितं प्राङुदायन् स्खलते वापि वा भ्रंशते।

भागवत पुराण[4] में देखिए—

श्रुत्वा मृतं पुत्रमलक्षितान्तकं विनष्टदृष्टिः प्रपतन् स्खलन् पथि।

पुत्र की अचानक मृत्यु सुनकर शोक के मारे अन्धा सा होकर राजमार्ग में गिरता, डगमगाता हुआ।

रघुवंश[5] में उल्लंघन अर्थ में स्खल् धातु प्रयुक्त हुई है—

तस्याननादुच्चारितो विवादश्चस्खाल वेलास्वपि नार्णवानाम्।

उसके मुख से निकली हुई आज्ञा समुद्रों के तटों तक उल्लंघित नहीं हुई।

मृच्छकटिक[7] में फिसलना अर्थ में स्खल् धातु का प्रयोग देखिए—

स्खलित चरणं भूमौ।

भूमि पर मेरा पैर लड़खड़ा रहा है।

किरातार्जुनीय[8] में विरुद्ध आचरण अर्थ में स्खलितम् शब्द का प्रयोग देखिए—

मन्मथेन परिप्लुतमतीनां प्रायशः स्खलितमप्युपकारि।

कामदेव के द्वारा उपहृत बुद्धि वाले व्यक्तियों का विरुद्ध आचरण भी उपकारक हो जाता है।

---

१. १८९, साथ ही पा०धा०स० पृ० १४०
२. पा०धा० १।३५४, क्षीर० १।६३२, धा०प्र० १।५४६, चा०धा० १।१८०, जैं०धा० १।४९५, काश० धा० १।२४९, कात०धा० १।१८२ है०पा० १।४४८, क०क०द्रु०धा० २८४
३. ७।२।४
४. ६।१४।५०
५. १८।४३
६. ६।१३
७. ६।३७

राजतरंगिणी[1] में देखिए—

निरुष्णीषोऽङ्गसंस्यूतवासाः स्खलन्नृपः ।

उष्णीष से रहित, वर्षा से भीग जाने के कारण चिपके हुए वस्त्र वाला एवं (मार्ग में) फिसलता हुआ राजा—

हितोपदेश[2] में भ्रष्ट होना अर्थ में स्खल् धातु के कृदन्त शब्द का प्रयोग देखिए—

महीभुजो मदान्धस्य संकीर्णस्येव दन्तिनः;

स्खलतो हि—

मदान्ध और संकुचित हृदय वाला राजा मतवाले हाथी के साथ जब भ्रष्ट होने पर—

गाथा सप्तशती[3] में देखिए—

गलत्केशस्खलत्कुण्डल—

बिखरते बालों, कांपते कुण्डलों वाली ।

'पाइयलच्छीनाममाला'[4] में भी 'स्खलित' में 'खलिअ' शब्द प्रयुक्त हुआ है ।

क्ष्वल्[5] (क्ष्वल) आशु गतौ (प०)—पाणिनीय, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, शाकटायन, हैम ।

वेगे कविकल्पद्रुम ।

मराठी भाषा में[6] 'सुकणें' क्रिया अचानक 'खिसक जाना' अर्थ की वाचक है । 'सुक्कणें' क्रिया 'क्ष्वल् गतौ' धातु से व्युत्पन्न है ।

खोऋ्[7] गतिप्रतिघाते (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, शाकटायन ।

---

१. ७।१६४०

२. ३।१३४

३. ५।४६

४ ८२२

५. पा० धा० १।३५६, धा०प्र० १।५५०, जै०धा० १।४६५, काश०धा० १।२५१, शाक०धा० १।७६३, है०धा० १।४५०, क०क०द्रु०धा० २८२

६. म०व्यु०कोष पृ० ७५०

७. पा० धा० १।३६०, क्षीर० १।३३८, धा०प्र० १।५५२, चा०धा० १।१८६ शाक०धा० १।७६५

'मराठी भाषा'[1] में 'खुरटणें' क्रिया 'खोऋृ गतौ' धातु से व्युत्पन्न है। खुरटणें क्रिया का अर्थ 'लंगड़ाना' है।

अभ्र[2] गतौ (प०)—(प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

संस्कृत भाषा में[3] अभ्र बादलों को कहा जाता है। बादलों का घिर आना अर्थ 'अभ्र गतौ' से इष्ट होगा।

बंगला भाषा में[4] 'अभ्र' शब्द परिक्रमण का वाचक है। बंगला अभ्र शब्द 'अभ्र गतौ' धातु से व्युत्पन्न है।

चर् (चर)[5] गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, कातन्त्र, हैम, कविकल्पद्रुम।

ऋक् संहिता में[6] विचरण, घूमना, अर्थ में चर् धातु प्रयुक्त हुई है—

शुनमष्ट्राव्यचरत्कपर्दी वरत्रायां दार्वानह्यमानः।

अचरत्—संचरति।

ऋक् संहिता में[7] ही एक अन्य स्थल पर 'चर्' धातु ऊर्ध्वगमन अर्थ में प्रयुक्त हुई है—

विशां गोपा अस्य चरन्ति जन्तवः।

चरन्ति—उद्गच्छन्ति।

इस अग्नि से किरणें प्राणियों की रक्षा करती हुई ऊपर को जाती हैं।

अथर्व संहिता में[8] विचरण करने के अर्थ में चर् धातु प्रयुक्त हुई है—

---

१. म०व्यु० कोष पृ० २१०

२. पा०धा० १।३६४, क्षीर० १।३७१, धा०प्र० १।५५७, चा०धा० १।१६०, जै०धा० १।४६५, काश०धा० १।२५६, कात०धा० १।१८९, शाक०धा० १।७७८, है०धा० १।४०७, क०क०द्रु०धा० २:२

३. अ०कोष १।३६

४. बं०श० १।१६४

५. पा०धा० १।३६४, क्षीर० १।३७१, धा०प्र० १।५६०, चा०धा० १।१६०, कात०धा० १।१८९, है०धा० १।४१०, क०क०द्रु०धा० २६४

६. १।१०२।८

७. १।६४।५

८. १२।४।२९

वशा चरन्ती बहुधा देवानां निहितो निधिः ।

देवताओं की निधि रूप में स्थापित हुई वशा जब अनेक प्रकरण से विचरण करती है ।

गीता में[1] देखिए—

इन्द्रियाणां हि चरतां मन्मनो नु विधीयते ।

विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों को बीच में जिस इन्द्रिय के साथ मन रहता है ।

मनुस्मृति में[2] घूमने के अर्थ में चर् धातु का प्रयोग हुआ है—

दिवा चरेयुः कार्यार्थं चिह्निता राजशासनैः ।

राजनिर्दिष्ट चिह्न धारण करके दिन में अपने काम से इधर उधर घूम सकते हैं ।

रामायण में युद्धकाण्ड[3] में देखिए—

चरेयुः संयुगमहीं सासारो जलदाविव ।

रथ बादलों के समान युद्धभूमि में विचर रहे थे ।

भागवत पुराण में[4] देखिए—

अनुग्रहायेह चरन्ति नूनं भूतानि भव्यानि जनार्दनस्य ।

लोगों पर कृपा करने के लिए ही भगवान् के भव्य भक्त संसार में विचरते रहते हैं ।

रघुवंश में[5] भी घूमने के अर्थ में चर् धातु का प्रयोग हुआ है—

कपयश्चेरुरार्तस्य रामस्येव मनोरथाः ।

वानर राम के मनोरथ के समान इधर-उधर घूमने लगे ।

अभिज्ञान शाकुन्तल में[6] भी देखिए—

नष्टशंका हरिणशिशवो मन्दमन्दं चरन्ति ।

निर्भीक मृगों के बच्चे धीरे धीरे विचरण कर रहे हैं ।

इस प्रकार इन सब प्रयोगों से स्पष्ट है कि चर् गतौ से तात्पर्य विचरण से ही है ।

---

१. २।६७

२. १०।५५

३. १०७।३४

४. ३।५।३

५. १२।५६

६. १।१५

धन्व्[1] (धवि) गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, हैम ।
व्रजे कविकल्पद्रुम ।

ऋक् संहिता[2] में देखिए—

एते शुक्रासो धन्वन्ति ।

दीप्यमान सोम कलशों के प्रति जाते हैं ।

धन्वन्ति—कलशानभिगच्छन्ति ।

अव्[3] (अव) गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

निरुक्त में[4] अव् धातु को गत्यर्थक कहा गया है—

'अवतिर्गतिकर्मा' और उदाहरण रूप में ऋक्संहिता[5] से मन्त्र उद्धृत किया गया है—

परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनु पस्पशानम् ।

'प्रवतः' शब्द में 'अव्' धातु गत्यर्थक है । प्रवतः—प्रकृष्ट गति वाले; उद्वतः—ऊर्ध्व गति वाले; निवतः—निकृष्ट गति वाले; भूतवर्ग को मार्ग दिखाते हुए ।

धाव् (धातु)[6] (उ) गतौ—पाणिनीय, धातुप्रदीप, चान्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम ।
जवे कविकल्पद्रुम ।

वेगितायां गतौ इत्याहुः क्षीरतरंगिणी ।

धाव् धातु शीघ्र गमन, दौड़ना अर्थ में ही प्रयुक्त होती है ।

---

१. पा०धा० १।३८१, क्षीर० १।३८६, धा०प्र० १।५६७, चा०धा० १।२०५ जै०धा० १।४६५, है०धा० १।४५८, क०क०द्रु०धा० २६२

२. ६।६७।२०

३. पा०धा० १।३८४, क्षीर० १।३६२, धा०प्र० १।६००, जै०धा० १।४६६, शाक०धा० १।८०२, है०धा० १।४८६, क०क०द्रु०धा० २८६

४. १०।१३

५. १०।१४।१

६. पा०धा० १।३८६, क्षीर० १।३६४, धा०प्र० १।६०१, चा०धा० १।५८६, काश०धा० १।६६१, कात०धा० १।५७०, शाक०धा० १।६००, है०धा० १।६२०, क०क०द्रु०धा० २६३

ऋक् संहिता में[1] देखिए—

आ यः पप्रौ भानुना रोदसी उभे धूमेन धावते दिवि ।

जो अग्नि दीप्ति से द्यावा-पृथिवी को युक्त करती है एवं जो धुएं से अन्तरिक्ष में जाती है ।

'धाव्' धातु का ऋक् संहिता में ही[2] अन्य प्रयोग देखिए—

एते धावन्तीन्दवः सोमा इन्द्राय ।

ये सोम इन्द्र के लिए जाते हैं ।

शतपथ ब्राह्मण में[3] दौड़ने के अर्थ में धाव् धातु का प्रयोग देखिए—

तथा न कुर्याद्यथा पराञ्चं धावन्तमनुलिप्सेत ।

परन्तु ऐसा नहीं करना चाहि ', क्योंकि अगर कोई भाग जाये और दूसरा उसको पकड़ने दौड़े ।

छान्दोग्य उपनिषद् में[4] देखिए—

अद्यापि धावति मनः ।

महाभारत में सौप्तिक पर्व में[5] देखिए—

धावन्तो यवनाश्चण्डा पवनोद्धतमूर्धजाः ।

भागवतपुराण में[6] देखिए—

पुंसोऽभ्रमाय दिवि धावति भूतभेदः ।

मनुष्यों के मोह को दूर करने के लिए विशेष महाभूत दौड़ा करते हैं ।

अभिज्ञान शाकुन्तल में[7] देखिए—

गच्छति पुरः शरीरं धावति पश्चादसंस्तुतं चेतः ।

शरीर आगे जा रहा है और शरीर से अपरिचित मन पीछे दौड़ रहा है ।

भट्टिकाव्य में[8] देखिए—

---

१. ६।४८।६
२. ६।२१।१
३. ३।२।१।३६
४. ३।६
५. ७।३३
६. ३।११।१५
७. १।३३
८. १५।६७

आदीपि तरुहस्तोऽसावधावीच्चाऽरिसंमुखम् ।

तब कुम्भकर्ण हाथ में वृक्ष लेकर शोभित हुआ और शत्रु के सम्मुख दौड़ पड़ा ।

सुअगडांगसुत[1] में 'वेग से दौड़ता हुआ' अर्थ में ही 'धावमाण' शब्द का प्रयोग हुआ है ।

ईष्[2] (ईष) (गतौ) आ०—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, कातन्त्र, शाकटायन, हैम ।

(सर्पणे) कविकल्पद्रुम ।

ईष् धातु का गमन, पलायन अर्थ में ही प्रयोग हुआ है—

ऋक् संहिता[3] में देखिए—

क ईषते को तुज्यते को बिभाय को मंसते सन्तमिन्द्रं को अस्ति ।

सा०भा०—इन्द्र के आने पर, कौन जाता है (कोई नहीं)···।

यहाँ ईष धातु पलायन अर्थ को व्यक्त कर रही है। शत्रु से डरे हुए लोग इन्द्र के आ जाने पर नहीं भाग सकते ।

ऋक् संहिता में[4] एक अन्य स्थल पर पक्षियों के गमन अर्थ में ईष् धातु का प्रयोग हुआ है—

ईषते वयः ।

पक्षिमृगादि जाते हैं ।

ईषते—गच्छन्ति ।

तैत्तिरीय आरण्यक[5] में पलायन अर्थ में ईष् धातु देखिए—

सखा सखायमब्रवीत् जहाको अस्मदीषते ।

ईषते—भीतः पलायते ।

---

१. १।७

२. पा०धा० १।३९५, क्षीर० १।४०४, धा०प्र० १।६१५, चा०धा० १।४४६, जै०धा० १।४६१, कात०धा० १।४३३, शाक०धा० १।२११, है०धा० १।८३३, क०क०द्रु०धा० ३०६

३. १।८४।१७

४. १।१४१।८

५. १।३।१

अंह (अहि)[1] गतौ (आ०)—क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

वक्रगतौ काशकृत्स्न ।

टीकाकार चन्नवीरकृत[2] व्याख्या इस प्रकार है—

अंहते—कुटिलं गच्छति । अहकः—पापः ।

भट्टिकाव्य में[3] 'गमन' अर्थ में 'अंह्' धातु प्रयुक्त हुई है—

आंहिषातां रघुव्याघ्रो शरभङ्गाश्रमं ततः ।

राघवश्रेष्ठ राम और लक्ष्मण शरभङ्ग ऋषि के आश्रम में गये ।

नक्ष्[4] (णक्ष) गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम ।

साहित्य में व्याप्त करना, गमन, प्राप्त करना अर्थों में नक्ष् धातु प्रयुक्त हुई मिली है । 'व्याप्त करना' 'व्याप्त होना' अर्थ में नक्ष् धातु का प्रयोग अधिक हुआ है ।

ऋक् संहिता[5] में देखिए—

वर्षिष्ठेभिर्भानुभिर्नक्षति द्याम् ।

(जो अग्नि) बढ़ी हुई ज्वालाओं से द्युलोक को व्याप्त करती है ।

अथर्व संहिता[6] में 'व्याप्त होना' अर्थ में नक्ष् धातु का प्रयोग देखिए—

'मध्वा यज्ञं नक्षति प्रेणानो नराशंसो अग्निः सुकृद् देवः सविता, विश्ववारः' ।

मनुष्यों से श्लाघनीय, सुन्दर कर्मों को करने वाले सविता, विश्व भर के वरणीय अग्निदेव मधु से यज्ञ को संयुक्त करते हुए व्याप्त हो रहे हैं ।

---

१. क्षीर० १।४२१, धा०प्र० १।६३६, चा०धा० १।४६४, जै०धा० १।४६१, काश०धा० १।५४२, कात०धा० १।४४८, शाक०धा० १।२२०, है०धा० १।८५८, क०क०द्रु०धा० ३४४

२. काश०धा० १।५४२

३. ४।४

४. पा०धा० १।४३०, क्षीर० १।४४०, धा०प्र० १।६६३, चा०धा० १।२१५, जै०धा० १।४६६, काश०धा० १।२७७, कात०धा० १।२०८, शाक०धा० १।८११, है०धा० १।५७६

५. १०।३।५

६. ५।२७।३

तैत्तिरीय ब्राह्मण[1] में देखिए—

यो वा इह यजते अमु ँ् स लोकं नक्षते।

जो यजमान नक्षत्रों से युक्त समय में यज्ञ करता है, वह यजमान स्वर्ग-लोक को प्राप्त करता है।

निरुक्त[2] में गमन अर्थ में नक्ष् धातु का प्रयोग हुआ है—

राक्षस शब्द की व्युत्पत्ति 'नक्ष् गतौ' धातु से की गई है—

रात्रौ नक्षते गच्छतीति वा रक्षः।

नक्षत्राणि नक्षतेर्गतिकर्मणः।

निघण्टु[3] में भी नक्ष् धातु को 'गत्यर्थक' ही कहा गया है।

शव्[4] (शव) गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

निघण्टु[5] में शव् धातु को गत्यर्थक कहा गया है—

शवतिः—गतिकर्मा।

कम्बोज देश में शव् धातु 'गति' अर्थ में प्रचलित है।[6]

रंह (रहि)[7] गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

टीकाकार चन्नवीरकृत[8] व्याख्या इस प्रकार है—

रंहति-चलति। रण्डा रंहकः—द्वौ शीघ्रगमके।

---

१. १।५।२।५

२. ४।३।३५, ३।४

३.

४. पा०धा० १। , क्षीर० १।४७७, धा०प्र० १।७२६, जै०धा० १।४६६, काश०धा० १।३०८, कात०धा० १।२३८, शाक०धा० १।७७६, है०धा० १।४५६, क०क०द्रु०धा० २६६

५. २।१४

६. महाभाष्य पस्पशाह्निक

७. पा०धा० १।४७२, क्षीर० १।४८४, धा०प्र० १।७३३, चा०धा० १।२५४, जै०धा० १।४६६, काश०धा० १।३१८, कात०धा० १।२४६, शाक०धा० १।८१२, है०धा० १।५५५, क०क०द्रु०धा० ३०

८. काश०धा० १।३१८

रंह् धातु के प्रयोग 'वेगपूर्वक चलना' अर्थ में ही मिले हैं—

ऋक् संहिता[1] में देखिए—

तस्येदर्वन्तो रंहयन्त आश्वस्तस्य ।

उसके व्यापनशील अश्व **वेगपूर्वक आते** हैं ।

रंहयन्ते वेगं कुर्वन्ति ।

ऋक् संहिता[2] में ही एक अन्य प्रयोग देखिए—

स रंहत··· ।

वह सोम अतिशीघ्र जाता है ।

रंहत—अतिशीघ्रं गच्छतीति ।

यहाँ सोम का अतिशीघ्र जाना बहना ही है··· ।

ऋक् संहिता[3] में ही एक अन्य प्रयोग देखिए—

अरंह ऊधः पर्वतस्य वज्रिन्;

हे वज्रवान् इन्द्र, मेघ के जल को **बहाओ** ।

अरंहः—अगमयः ।

निघण्टु[4] में रंह् धातु को गत्यर्थक ही कहा गया है—

रंहतिः गतिकर्मा ।

ध्वंस्[5] (ध्वंस) गतौ (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

आश्वलायन गृह्यसूत्र[6] में प्र उपसर्ग पूर्वक 'ध्वंस्' धातु का 'गति' अर्थ में प्रयोग देखिए—

यत्र सर्वत्र आपः **प्रध्वंसेरन्** ।

सब जगह पानी **बहे** ।

एक अन्य प्रयोग देखिए—

---

१. ८।१९।६
२. ९।९७।९
३. ५।३२।२
४. २।१४
५. पा०धा० १।४३९, क्षीर० १।५०१, धा०प्र० १।७५९, चा०धा० १।५०६, जै०धा० १।४९१, काश० धा० १।५७४, शाक०धा० १।२९३, है०धा० ९५४ क०क०द्रु०धा० ३३६
६. ४।२

अपध्वंस रे जाल्म,[1]

दुष्ट, दूर हो।

निघण्टु[2] में ध्वंस् धातु को गत्यर्थक कहा गया है।

बंगला भाषा[3] में 'ध्वंस' शब्द स्खलन गति का वाचक है।

कण्[4] (कण) गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

कण् गतौ से तात्पर्य 'अत्यन्त सूक्ष्मत्व को प्राप्त होना' है—

कणति अत्यन्तसूक्ष्मत्वं गच्छतीति कणः।[5]

महाभाष्य[6] में 'अकणीत' शब्द का प्रयोग हुआ है।

रण्[7] (रण) गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

महाभारत उद्योग पर्व[8] में नीलकण्ठ टीका में रण् धातु का 'प्राप्त कराना' अर्थ में प्रयोग हुआ है—

रणय—इष्टं कामं गमय, प्रापय।

ह्वल् (ह्वल) चलने (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप,

---

१. व्या०च० ३।४७
२. २।१४
३. अं०श०कोष १।११६७
४. पा०धा० १।५२४, क्षीर० १।५३७, धा०प्र० १।७६८, चा०धा० १।५३५ जै०धा० १।४६२, काश०धा० १।६०६, कात०धा० १।५१४, शाक०धा० १।३२८, है०धा० १।१०३८, क०क०द्रु०धा० १७१
५. हला०को० १९५
६. ७।२।१
७. पा०धा० १।५२४, क्षीर० १।५३७, धा०प्र० १।७६६, चा०धा० १।५३५, जै०धा० १।४६२, काश०धा० १।६०६, कात०धा० १।५१४, शाक०धा० १।३२६, है०धा० १।१०३६, क०क०द्रु०धा० १७७
८. ५।१३।२७
९. पा०धा० १।५३०, क्षीर० १।५४३, धा०प्र० १।८१०, चा०धा० १।५३८, जै०धा० १।४६२, काश०धा० १।६११, कात०धा० १।५२०, शाक०धा० १।३३८, है०धा० १।१०५६, क०क०द्रु०धा० २८५

चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम ।

चाले कविकल्पद्रुम ।

शतपथ-ब्राह्मण में[1] ह्वल् धातु का अधिक प्रयोग हुआ है, उदाहरणतः—

अथ यज्ञशय **ह्वलेत** । तत्समन्वीक्ष्य जुहुयाद्दीक्षोपसत्स्वादयनोदये प्रसुतऽअग्निद्रु विवाऽएत यज्ञस्य पवस्रंसत यद्ह्वलति ।

अब यज्ञ का जो भाग **सफल न हो**, उसी के उद्देश्य से आहुति दे । उपसदों में और आहवनीय में दीक्षा यज्ञ में तथा सोम यज्ञ में आग्नीध्र में । क्योंकि यज्ञ के जिस भाग में सफलता न हो वही टूटा हुआ समझो ।

शतपथ ब्राह्मण में[2] ही एक अन्य प्रयोग देखिए—

हव्यं वहेद्यथा न **ह्वलेदेवं** देवता उपधावति ।

विधिपूर्वक हवि उनके लिए ले जावे । **अवहेलना न करे** ।

शतपथ ब्राह्मण में ही[3] एक अन्य प्रयोग देखिए—

'यजमानो वाऽअग्निष्ठाग्निरु वै यज्ञः स यदग्नेरग्निष्ठा **ह्वलयेद्धवलयेद्ध** यज्ञाद्यजमानस्तस्मात्सम्प्रत्यग्निमग्निष्ठां मिनोत्यथ'।

यजमान अग्नि के सम्मुख होता है और यज्ञ अग्नि है । यदि उस सिरे का मुंह **फेर दिया जाए** तो यजमान का मुंह यज्ञ से **फिर जाय, इसलिए** उसका मुंह अग्नि की ओर कर देता है ।

वि उपसर्गपूर्वक ह्वल् धातु से व्युत्पन्न 'विह्वल' शब्द 'गति' अर्थ को ही व्यक्त करता है किन्तु वह गति सामान्य गमन न होकर मन की गति अर्थात् व्याकुल होना है ।

महाभारत में[4] आदिपर्व में देखिए—

विह्वलतीव मे मनः ।

बङ्ग कोष में[5] में ह्वल-चलन कहा गया है ।

इस प्रकार 'ह्वल्' धातु अवहेलना एवं व्याकुल होना अर्थ में प्रयुक्त होती है।

---

१. ४।५।६

२. १।५।१।१४

३. ३।७।१।१६

४. १।२१६

५. बं०श०कोष २।२३६१

फण् (फण)[1] गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, हैम, कविकल्पद्रुम ।

टीकाकार चन्नवीरकृत व्याख्या[2] इस प्रकार है—

फणति-आश्रयति ।

ऋक संहिता में[3] समीप भेजना अर्थ में फण् धातु का प्रयोग हुआ है—

यो व्यतीरफाणयत्सुयुक्तां उप दाशुषे ।

जो इन्द्र, गमन करने वाले रथ में जुड़े अश्वों को, हवि देने वाले यजमान को प्राप्त कराने के लिए **भेजता है।**

उप अफाणयतं—उपगमयति ।

फणतिर्गतिकर्मा ।

ऐतरेय ब्राह्मण में[4] में उपर्युक्त मन्त्र ही वर्णित है ।

शिव उपनिषद् में[5] फण् धातु का प्रयोग देखिए—

वर्षकोटि महाभोगैः शिवलोके महीयते ।

निवेद्य **फाणितं** शुद्धं शिवाय गुरवेऽपि वा ।।

'फण' सर्पमस्तक को भी कहते हैं। फणों में प्रसार और संकुचन होता रहता है, यह भी एक गति है । 'फणः' शब्द 'फण् गतौ' धातु से व्युत्पन्न है—

फणति प्रसारसङ्कोचं गच्छतीति फणः ।[6]

चल्[7] (चल) गतौ (प०) कविकल्पद्रुम ।

'चल्' धातु 'विचलित होना' एवं 'कम्पन' अर्थ में अधिक प्रयुक्त हुई है—

मनुस्मृति[8] में देखिए—

---

१. पा०धा० १।५५०, क्षीर० १।५६१, धा०प्र० १।८२३, चा०धा० १।५५६, काश०धा० १।६२८, कात०धा० १।५३८, है०धा० १।१०३७, क०क०द्रु० धा० १७६
२. काश०धा० १।६२८
३. ८।६९।१३
४. ४।१।४
५. ६।२८
६. हला० कोष० पृ० ४७५
७. २७३
८. २।१५

स्वधर्मान्न चलन्ति च ।

अपने धर्म से विचलित नहीं होते ।

याज्ञवल्क्यस्मृति[1] में देखिए—

स्वधर्माच्चलिताद्राजा विनीय स्थापयेत्पथि ।

अपने धर्म से विचलित को दण्ड देकर राजा उन्हें धर्म पर लाये ।

रामायण में युद्धकाण्ड में[2] देखिए—

यस्मिन् न चलते धर्मो...

धर्म उनसे कभी अलग नहीं होता ।

भागवत पुराण में[3] देखिए—

सद्वीपाद्रिश्चचाल भूः ।

द्वीपों तथा पर्वतों समेत पृथ्वी हिलने लगी ।

पंचतन्त्र में[4] 'हिलना' अर्थ में चलितुम् शब्द का प्रयोग देखिए—

मृतपृष्ठगतस्तिलमात्रमपि चलितुं न शक्नोति ।

यह मेरी पीठ पर से एक तिल भर भी इधर-उधर हट नहीं सकता ।

पंचतन्त्र में[5] ही एक अन्य प्रयोग देखिए—

मुनेरपि यतस्तस्य दर्शनाच्चलते मनः ।

धन को लेकर तो ऋषि मुनियों का भी मन भी चल सकता है ।

यहां चल धातु चंचल होना, धर्म से स्खलित होना अर्थ में प्रयुक्त है ।

कुमारसम्भव में[6] सामान्य गमन अर्थ में चल् धातु प्रयोग देखिए—

इतो गमिष्याम्यथवेति वादिनी चचाल बाला ।

या तो मैं यहाँ से उठकर चली जाती हूँ, यह कहकर वह चलने लगी ।

किरातार्जुनीय[7] में विचलित होना अर्थ में 'चल्' धातु का प्रयोग देखिए—

चलति नयान्न जिगीषतां हि चेतः ।

विजयाभिलाषियों का चित्त नीतिपथ से विचलित नहीं होता ।

---

१. ११३५६
२. २८।६
३. ७।३।५
४. १।४३३
५. १।४३३
६. ५।८४
७. १०।२६

भट्टिकाव्य[1] में 'चल्' धातु का प्रयोग देखिए—

चेलु: क्षणं भुजाः ।

बाहु कुछ काल तक **फड़कने** लगे ।

भट्टिकाव्य[2] में ही एक अन्य प्रयोग देखिए—

चलत्पर्णाऽग्रसम्भृताः ।

हिलते हुए पत्तों के अग्रभाग में संचित ।

इस प्रकार चल् गतौ से स्खलन, कम्पन, सामान्य गमन अर्थ अभिप्रेत है।

पत्[3] (पत्लृ) गतौ (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन हैम, कविकल्पद्रुम ।

गति से तात्पर्य यहाँ गिरना है । उदाहरणार्थ—

अथर्वसंहिता[4] में देखिए—

यो अन्तरिक्षेण **पतति** ;

जो अन्तरिक्ष से **गिरता है** ।

शतपथब्राह्मण[5] में देखिए—

यदेनं घ्नन्तीव जिनन्तीव—गर्तमिव **पतन्ति** ।

कोई लोग उसको मार रहे हैं या परास्त कर रहे हैं या गड्ढे में **गिर रहे हैं** ।

कात्यायन श्रौतसूत्र[6] मे देखिए—

न दक्षिणा **पतेत्** ।

गीता में[7] देखिए—

प्रसक्ताः कामभोगेषु **पतन्ति** नरकेऽशुचौ ।

---

१. १४।४०

२. ६।८१

३. पा०धा० १।५७०, क्षीर० १।५८६, धा०प्र० १।८४८, चा०धा० १।५७२, जै०धा० १।४६२, काश०धा० १।६४५, कात०धा० १।५५४, शाक०धा० १।३७६, है०धा० १।६६२, क०क०द्रु०धा० १८२

४. ४।२०।६

५. १४।७।१।२०

६. ६।१।१७

७. १६।१६

विषयभोगों में आसक्त हुए लोग अपवित्र नरक में **गिरते हैं**।

मनुस्मृति[1] में देखिए—

परधर्मेण जीवन् हि सद्यः **पतति** जातितः।

रामायण में सुन्दरकाण्ड[2] में देखिए—

पतन्त्यो रेजिरेऽभ्रेभ्यः सौदामिन्य इवाम्बरात्;

गिरते समय वे आकाश में स्थित मेघों से गिरने वाली बिजलियों के समान प्रकाशित होती थीं।

महाभारत में मांसल पर्व[3] में देखिए—

अमुश्च रामस्य पदं पतन्तः।

भागवत पुराण[4] में देखिए—

तवापि **पतताद्** देहो लोभाद् धर्ममजानतः।

आपने लोभवश धर्म नहीं पहचाना, अतः आपका शरीर भी **नष्ट हो जाये**।

पंचतन्त्र[5] में देखिए—

मयि ते पाद**पतिते** किंकरत्वमुपागते;

तुम्हारे चरणों पर **गिरने पर** तथा दासता को प्राप्त होने पर।

अभिज्ञानशाकुन्तल[6] में देखिए—

सुहृज्जने **पतन्ति** चक्षूंषि—

मित्रजनों पर सज्जनों की दया से सौम्य दृष्टि ही पड़ती है।

इस प्रकार पत्[7] धातु गिरना, भ्रष्ट होना, अर्थ में प्रयुक्त होती है।

भ्रम्[8] (भ्रमु) चलने (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र,

---

१. १०।९७
२. २५।२६
३. ५।१
४. ९।१३।५
५. ४।७
६. ४.८
७. ६।२९
८. पा०धा० १।५७६, क्षीर० १।५८६, धा०प्र०, १।८५३, चा०धा० १।५७६, काश०धा० १।६४९, कात०धा० १।५५८, शाक०धा० १।७२७, है०धा०, १।९७०, क०क०द्रु०धा० २५३

काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम ।

चाले कविकल्पद्रुम ।

भ्रम् धातु भ्रमण, घूमना, बार-बार जन्म लेना अर्थों में प्रयुक्त हुई है। शतपथ ब्राह्मण[1] में देखिए—

अथैनमभिमृशति । भ्रमसि, ज्वलदसि ।

अब इसको छूता है । **तू चलने वाला है** । तू जलने वाला है ।

योगचूडामणि उपनिषद्[2] में देखिए—

तावज्जीवो **भ्रमत्येव** यावत्तत्वं न विन्दति ।

प्राणी जब तक तत्व प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक (संसार चक्र में) **घूमता है** ।

'गीता'[3] में देखिए—

न च शक्नोम्यवस्थातुं **भ्रमतीव** च मे मनः ।

मेरा मन **भ्रमित हो रहा है**, इसीलिए मैं खड़ा रहने में समर्थ नहीं हूं ।

महाभारत कर्णपर्व[4] में देखिए—

भ्रमन्ति नानाविधशस्त्रचेष्टिता: ।

नाना प्रकार के शस्त्रों से युक्त होकर **घूम रहे हैं** ।

भागवत पुराण[5] में देखिए—

तावत्संसारचक्रेऽस्मिन् **भ्रमतेऽ**ज्ञानतः पुमान् ।

मनुष्य अज्ञानवश तब तक इस संसार चक्र में **चक्कर काटता रहता है** ।

दशकुमारचरित पूर्वपीठिका[6] में देखिए—

दुर्विनीतः कामपालो जनकाग्रजन्मनोः शासनमतिक्रम्य भुवं **बभ्राम** ।

दुष्ट कामपाल पिता एवं बड़े भाइयों की आज्ञा का उल्लंघन कर पृथ्वी पर **घूमने लगा** ।

मालतीमाधव[7] में देखिए—

---

१. १४।६।३।६
२. १४
३. १।३०
४. ६०।२८
५. माहात्म्य० ३।२७
६. १।६
७. १।३२

मनो निष्ठाशून्यं **भ्रमति** च किमप्यालिखति च ।

मन स्थितिशून्य होता हुआ **भ्रमण करता है** ।

पथ्[1] (पथे) गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

संस्कृत साहित्य में पथ् धातु के प्रयोग अनुपलब्ध हैं किन्तु पथ् धातु सामान्य रूप से चलना अर्थ में प्रचलित रही होगी, मार्गवाचक 'पथः' शब्द प्रमाणस्वरूप है—

पथति गच्छति अत्र पथः ।[2]

मार्ग को पथ इसलिए कहा जाता है, क्योंकि उस पर गमन किया जाता है ।

कस्[3] (कस) गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

गमने जैनेन्द्र ।

यशस्तिलकचम्पू[4] में 'कस्' धातु गमन अर्थ में प्रयुक्त हुई है—

सारस, **कस**, तारस्वरः प्रदक्षिणप्रचारः ।

हे सारस पक्षि, उच्च स्वर वाले शब्दों का उच्चारण करते हुए राजा के दक्षिण पार्श्वभाग में संचार करने वाले होकर **गमन करो** ।

संस्कृत भाषा में प्रचलित कस्तूरी शब्द 'कस् गतौ' धातु से व्युत्पन्न है ।

कसति गन्धोऽस्याः दूरतः[5] ।

जिसकी गन्ध दूर तक **जाती है** ।

वि उपसर्ग पूर्वक 'कस्' धातु का प्रयोग 'खिलना' अर्थ में अत्यधिक हुआ है।

---

१. पा०धा० १।५७३, क्षीर० १।५८३, धा०प्र० १।५८०, चा०धा० १।५७२, जै०धा० १।४६२, काश०धा० १।६४५, कात०धा० १।५५४, शाक०धा० १।३७७, है०धा० १।६६३, क०क०द्रु०धा० १८७

२. हला० कोप पृ० ४०८

३. पा०धा० १।५६०, क्षीर० १।६०१, धा०प्र० १।८६३, चा०धा० १-५८७, जै०धा० १।४६२, काश०धा० १।६५६, कात०धा० १।५६८, शाक०धा० १।३६०, है०धा० १।६८७, क०क०द्रु०धा० ३३१

४. २।२०२

५. ३।१८४१

निरुक्त में[1] सक्तु शब्द की निष्पत्ति 'कस् गतौ' धातु से की गई है—

सक्तुमिव तितउना पुनन्तः—।

सक्तुः कसतेर्वा स्याद्विपरीतात् विकसितो भवति ।

पूर्वोक्त मन्त्र महाभाष्य पस्पशाह्निक[2] में भी वर्णित है ।

वि पूर्वक कस् धातु 'खिलना' अर्थ में प्रसिद्ध है, अतः एक ही उदाहरण देना पर्याप्त होगा—

मालतीमाधव[3] में देखिए—

विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकम् ।

सूर्य के उदय होने पर श्वेत कमल **खिलता** है ।

व्यय्[4] (व्यय) गतौ (उ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

महाभारत में[5] नीलकण्ठटीका में 'व्यय् गतौ' का प्रयोग दिखाया गया है—

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसः ।

यय—गमय, यच्छेत्यर्थः, व्यय् गतौ इत्यस्य लोटि रूपम् । वलोप आर्षः ।

भ्रेष्[6] (भ्रेषृ) गतौ (उ०)— पाणिनीय ।

चलने क्षीरतरंगिणी, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम ।

चले कविकल्पद्रुम ।

'भ्रेष् गतौ' से तात्पर्य भ्रष्ट होना है । उदाहरणतः ऋक् संहिता में[7] देखिए—

नू चित्स **भ्रेषते** जनो न रेषन्मनो यो अस्य पौरमाविवासात् ।

---

१. ४।१० पृ०

२. शब्दानुशासन के प्रयोजन (सक्तुमिव)

३. १।२५

४. पा०धा० १।६१०, क्षीर० १।६२०, धा०प्र० १।८८५, चा०धा० १।६०५, कात०धा० १।५७१, शाक०धा० १८६६, है०धा० १।६१८, क०क०द्रु० धा० २६०

५. ५।१३।२७

६. पा०धा० १।६१३, काश०धा० १।६८०, कात०शा० ६।५८६, शाक०धा० १।६२१, है०धा० १।६२५, क०क०द्रु०धा० ३२०

७. ७।२०।६

जो व्यक्ति शत्रुओं के बाधक इन्द्र की यज्ञों से सेवा करता है, वह स्थान से **भ्रष्ट नहीं होता।**

ऐतरेय ब्राह्मण में[1] 'स्खलन' अर्थ में ही भ्रेषम् शब्द का प्रयोग देखिए—

तद्यथैकपात् पुरुषो यन्नैकतश्चक्रो वा रथो वर्तमानः।

भ्रेषं न्येत्येवमेव स यज्ञो **भ्रेषं** न्येति। यज्ञस्य भ्रेषमनु यजमानो **भ्रेषं** न्येति।

अर्थ इस प्रकार है—जिस प्रकार एक पैर अथवा एक पहिया होने से मनुष्य और रथ **गिर जाते** हैं, उसी प्रकार यज्ञ में त्रुटि होने से मनुष्य **भ्रष्ट हो जाता है।**

इस प्रकार गति से तात्पर्य यहां स्खलन, गिरना, पदभ्रष्ट होना है।

सृ[2] गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

ऋक् संहिता में[3] 'जल-गति' अर्थ में 'सृ' धातु प्रयुक्त हुई है—

वधीद्वृत्रं वज्रेण मन्दसानः सरन्नापो जवसा हतवृष्णीः।

सोम से प्रसन्न होते हुए इन्द्र ने वज्र से वृत्र नामक असुर का वध किया, तदनन्तर जल वेग से **बहने लगे।**

ऋक् संहिता[4] में ही सामान्य गमन अर्थ में भी 'सृ' धातु का प्रयोग हुआ है—

सरज्जारो न योषणां वरो न।

जिस प्रकार दुष्ट असती स्त्री को प्राप्त करने के लिए **जाता** है; उसी प्रकार जिस प्रकार वर कन्या को प्राप्त करने **जाता है।**

महाभारत शान्तिपर्व[5] में गमन अर्थ में 'सृ' धातु का प्रयोग हुआ है—

स्थानानि स्वान्येव **सरन्ति** जीवाः।

---

१. ५।३३
२. पा०धा० १।६५६, चा०धा० १।२८३, जै०धा० १।४६७, काश०धा० १।३४६, कात०धा० १।२७४, शाक०धा० १।४३२, हैं०धा० २।२५, क०क०द्रु०धा० ७०७
३. ४।१७।३
४. ६।१०१।१४
५. (सुखथांकर) २७१।५२

जीव अपने स्थान पर जाते हैं।

भागवत पुराण[1] में देखिए—

क्षत्तोपसृत्याच्युतभावशुद्धः पप्रच्छ।

मैत्रेय के पास आकर अपना भाव शुद्ध करके।

कर्पूरमंजरी[2] में देखिए—

पश्चाच्च तस्याः सरति तिर्यङ्भिरीक्षितेषु।

स्रु[3] गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र।

स्रू　　　　काशकृत्स्न, शाकटायन, हैम।

द्रुवत् (स्रुतौ गतौ) कविकल्पद्रुम।

ऋक् संहिता[4] में 'जल-गमन' अर्थ में 'स्रु' धातु प्रयुक्त हुई है—

या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति।

जो जल अन्तरिक्षस्थ हैं और जो नदी आदि में हैं वे जल जाते हैं। स्रवन्ति गच्छन्ति।

शतपथ ब्राह्मण में[5] देखिए—

यदेभ्यो लोकेभ्योऽन्नं स्रवति तदस्रीवयोऽधातः।

जो अन्न इन लोकों से कहता है, वह अस्रवीय है।

छान्दोग्य उपनिषद् में[6] देखिए—

अस्य सोम्य महतो वृक्षस्य यो मूलेऽभ्याहन्याज्जीवन्स्रवेथाः। हे सौम्य, यदि कोई इस महान् वृक्ष के मूल में आघात करे तो यह जीवित रहते हुए ही केवल रस-स्राव करेगा।

रामायण में[7] युद्धकाण्ड में देखिये—

---

१. ३।५।१

२. २।६

३. पा०धा० १।६६०, क्षीर० १।६७३, धा०प्र० १।६४५, चा०धा० १।२८७ जै०धा० १।४६७, काश०धा० १।३५५, कात०धा० १।२७६, शाक०धा० १।३६६, है०धा० १।१५, क०क०द्रु०धा० ६२

४. ७।४६।२

५. ८।३।३।५

६. ६।११।१

७. ४५।६

तयोः क्षतजमार्गेण सुस्राव रुधिरं बहु।

उन दोनों के घाव वाले अंगों से खून बहने लगा।

मृच्छकटिक में[1] देखिए—

मेघाः स्रवन्ति बलदेवपटप्रकाशाः।

बलदेव के वस्त्र के समान कान्ति वाले ये मेघ बरस रहे हैं।

भट्टिकाव्य में[2] देखिए—

अलोठिष्ठ च भूपृष्ठे शोणितं चाऽप्यसुस्रुवत्।

सुग्रीव भूमि पर गिर पड़े, उनका रुधिर बहने लगा।

इस प्रकार स्रु धातु बहना अर्थ में प्रचलित है।

द्रु[3] गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम।

स्रुतौ गतौ — कविकल्पद्रुम।

चन्नवीर टीकाकार[4] द्रु गतौ की व्याख्या पिघलना अर्थ में करते हैं।

द्रवति—विलीनो भवति (पिघलता है)।

ऋक् संहिता में[5] बहने अर्थ में 'द्रु' धातु का प्रयोग देखिए—

ता अद्रवन्नार्ष्टिषेणेन सृष्टा देवापिना···।

ऋष्टिषेण के पुत्र देवापि द्वारा सृष्ट वे जल बहने लगे।

ऋक्-संहिता में[6] ही शीघ्र जाने के अर्थ में 'द्रु' धातु का प्रयोग देखिए—

मध्वा संपृक्ताः सारथेन धेनवस्तूयमेहि द्रवा पिब।

हे इन्द्र, तुम हमारे पास आओ और जहां मधुमक्षिका के मधु के समान रसयुक्त एवं प्रीतिजनक सोम से हवन किया जा रहा है उस देश को शीघ्र आओ।

---

१. ५।४५

२. १५।५६

३. माध०धा० १।६६४, क्षीर० १।६७५, धा०प्र० १।६५०, चा०धा० १।२८७, जै०धा० १।४९७, काश०धा० १।३५५, कात०धा० १।२७९, शाक०धा० १।३९५, है०धा० १:१३, क०क०द्रु०धा० ५९

४. काश०धा० १।३५५

५. १०।९८।६

६. ८।४।८

शतपथ ब्राह्मण में[1] स्रवण अर्थ में द्रु धातु प्रयुक्त हुई है···

'सोऽस्य विष्वङ्ङेव प्राणेभ्यो **दुद्राव** । मुखाद्धैवास्य न **दुद्राव** तस्मात्प्रायश्चित्तिरास ।'

इन्द्र के नासिका आदि छः अंगों से सोम **बहा**, इन्द्र के मुख से सोम का **स्रवण** नहीं हुआ अतः इन्द्र प्रायश्चित्त करने के योग्य हुआ ।

रामायण में[2] पलायन अर्थ में द्रु धातु का प्रयोग हुआ है—

सम्भ्रान्तमनसः **दुद्रुवु**र्भयपीडिताः ।

उनके मन में बड़ी घबराहट हुई और ये सब भय से पीड़ित हो इधर-उधर भागने लगे ।

उत्तररामचरित[3] में 'द्रव्य के पिघलने' अर्थ में द्रु धातु का प्रयोग देखिए—

'**द्रवति** च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः' ।

चन्द्र के उदित होने पर चन्द्रकान्त मणि **पिघलता** है ।

इस प्रकार द्रु धातु पलायन, स्रवण अर्थों में प्रयुक्त हुई मिलती है। स्रवण, पिघलना गति से ही सम्बद्ध है । स्रवण, बहाव किसी तरल पदार्थ का ही देखा जाता है; जैसे पानी, दूध । पानी का बहाव पानी की गति है । मोमबत्ती और चन्द्रकान्तमणि का पिघलना मोमबत्ती तथा चन्द्रकान्त मणि की गति ही है । सामान्य गमन अर्थ में द्रु धातु प्रसिद्ध नहीं है ।

जु[4] (जुङ्) गतौ (आ०)—काशकृत्स्न, हैम, कविकल्पद्रुम ।

जुङ् इति नन्दी क्षीरतरंगिणी ।

'जु' धातु शीघ्र गमन अर्थ में प्रयुक्त हुई है ।

ऋक्-संहिता[5] में देखिए—

विपाट्छुतद्री पयसा **जवेते** ।

जल से युक्त विपाट्, शुतद्री दोनों नदियां समुद्र के प्रति **शीघ्र जाती हैं** ।

सा०भा० **जवेते—शीघ्रं गच्छतः** ।

तैत्तिरीय संहिता[6] में देखिए—

---

१. ५।५।४।८

२. युद्ध का० ७६।६

३. ६।१२

४. क्षीर० १।६८२, काश०धा० १।५५२, है०धा० १।५६६, क०क०द्रु०धा० ६२

५. ३।३३।१

६. ६।१।७।२

मनसा **जवते** ।

शतपथ ब्राह्मण[1] में देखिए—

यदिदमन्तरिक्षमेत ँ ह्याकाशमनु **जवते** ।

उस अन्तरिक्ष या आकाश में ही यह वायु **चलता** है ।

संयुत्त-निकाय[2] में जवति शीघ्र गति अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

जु[3] गतौ (प०)

रहसि कविकल्पद्रुम ।

ऋक् संहिता[4] में प्रेरित करने वाली अर्थ में 'जवनी' शब्द का प्रयोग देखिए—

शतक्रतुं **जवनी** सूनृतारुहत ।

सा० भा०—बहुविध कर्म करने वाले इन्द्र को वृत्र के वध के प्रति प्रेरित करने वाली वाणी इन्द्र को उत्साहित करने वाली हुई ।

श्वेताश्वतर उपनिषद्[5] में देखिए—

अपाणिपादो **जवनो** गृहीता पश्यत्यचक्षुः;

विना हाथ पैर के होते हुए भी शीघ्र जाता है ।

नारदपारिव्राजक उपनिषद्[6] में पूर्वोक्त मन्त्र ही उद्धृत है ।

निघण्टु[7] में जवतिः—गतिकर्मा कहा गया है ।

च्यु[8] (च्युङ्) गतौ (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

टीकाकार चन्नवीर[9] च्यु गतौ धातु की व्याख्या 'तैरना' अर्थ में करते हैं—

---

१. १०।३।५।२
२. १।३३
३. क०क०द्रु०धा० ५८
४. १।५१।२
५. ३।१६
६. ६।१४
७. २।१४
८. पा०धा० १।६७३, क्षीर० १।६८२, धा०प्र० १।६६०, चा०धा० १।४७८, जै०धा० १।४६१, काश०धा० १।५५२, कात०धा० १।४५६, शाक०धा० १।२६१, है०धा० १।५६४, क०क०द्रु०धा० ५८
९. काश०धा० १।५५२

च्यवते—तरति ।

ऋक् संहिता में[1] प्रेरित करना अर्थ में च्यु धातु प्रयुक्त हुई है—

'मरुतो यद्ध वो बलं जनां अचुच्यवीतन निरीरचुच्यवीतनम्' ।

हे मरुत्, तुम बलशाली हो, इसलिए सब मनुष्यों को अपने-अपने व्यापार में **प्रेरित करो** । बादलों को भी **प्रेरित करो** ।

प्राप्त होना अर्थ में ऋक् संहिता में[2] ही 'च्यु' धातु देखिए—

'अश्वावतीर्गोमतीर्विश्वसुविदो भूरि **च्यवन्त** वस्तवे' ।

बहुत अश्वों से युक्त, गायों से युक्त, सारे धन की स्वामिनी उषा देवता प्रजा के निवास के लिये हमें **प्राप्त हो** ।

शतपथ ब्राह्मण में[3] अधिकार से वंचित करना अर्थ में णिजन्त च्यु धातु का प्रयोग देखिए—

'ते ये ह तथा कुर्वन्ति । एत ँ् ह ते पितरं प्रजापति ँ् सम्पदश्**च्यावयन्ति** त इष्ट्वा पापीया ँ् सो भवन्ति···।

जो ऐसा करते हैं, वे प्रजापति पिता को उस मात्रा से **वंचित कर देते हैं** और यज्ञ करके पाप कमाते हैं ।

महाभारत में आश्वमेधिक पर्व में[4] नष्ट होना अर्थ में च्यु धातु प्रयुक्त हुई है—

कथं शरीरं **च्यवते** कथं चैवोपपद्यते ?

(काश्यप ने महात्मा से पूछा)—यह शरीर किस प्रकार **गिर जाता है, नष्ट हो जाता** है ? फिर दूसरा शरीर किस प्रकार प्राप्त होता है ?

मनुस्मृति में[5] पथ से विचलित होना अर्थ में च्यु धातु का प्रयोग मिलता है—

'अस्माद्धर्मान्न **च्यवेत** क्षत्रियो घ्नन्रणे रिपून्' ।

क्षत्रिय या कोई भी राजा इस धर्म से कभी भी **विचलित न हो** ।

मनुस्मृति में[6] ही एक अन्य स्थल पर च्यु धातु नष्ट होना अर्थ में प्रयुक्त हुई है—

---

१. १।१३८।१२
२. १।१८४।२
३. १०।२।३।८
४. १७।२
५. १२।६६
६. १२।६६

जो शास्त्र वेद-मूलक नहीं हैं, बल्कि पुरुष-कल्पित हैं वे बनते और बिगड़ते रहते हैं।

रघुवंश में[1] 'च्युतम्' कृदन्त शब्द पृथक् अर्थ में प्रयुक्त हुआ मिलता है—

स्वतश्च्युतं वह्निमिवाद्भिरम्बुदः।

जैसे बादल जल की वृष्टि से अपने से पृथक् अग्नि को बुझाने के लिए समर्थ नहीं होता।

अभिज्ञान शाकुन्तल में[2] गिरे हुए अर्थ में 'च्युतम्' कृदन्त शब्द का प्रयोग हुआ है—

अर्कस्योपरि शिथिलं च्युतमिव नवमालिकाकुसुमम्।

शिथिल होकर आक के पेड़ के ऊपर गिरे हुए चमेली के फूल के समान···।

इस प्रकार च्यु धातु प्रेरित करना, नष्ट होना, पृथक् होना, विचलित होना अर्थ में प्रचलित है।

चन्नवीर ने तैरना अर्थ में[3] च्यु धातु की व्याख्या की है। कन्नड़ भाषा में[4] 'च्यवन' शब्द 'बहाव' एवं 'च्युति' शब्द 'बह निकलने' का वाचक है, अतः हमारा विचार है कि चन्नवीर चूंकि कन्नड़ प्रदेशीय टीकाकार हैं, अतः कन्नड़ प्रदेश में प्रचलित अर्थ में उन्होंने 'च्यु' धातु की व्याख्या की है।

प्रुङ् गतौ[5] (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

टीकाकार चन्नवीर[6] प्रुङ् गतौ की व्याख्या अधिक होने के अर्थ में करते हैं—

प्रवते—अधिकं भवति।

प्रवकः, प्रवमाणः—आधिक्यम्।

---

१. ३।५८

२. २।८

३. काश०धा० १।५५२

४. क०हि०कोष पृ० २६६

५. पा०धा० १।६७३, क्षीर० १।६८१, धा०प्र० १।६६४, चा०धा० १।४७८, जै०धा० १।४६१, कात०धा० १।४५६, शाक०धा० १।२६२, है०धा० १।८६७, क०क०द्रु०धा० ५०

६. काश०धा० १।५५२

ऋक् संहिता में[1] 'प्रवतां' शब्द का प्रयोग जलों के गमन अर्थ में हुआ है—

'राजेव युध्वा नयसि त्वमित्सिचो यदासामग्रं **प्रवतामि**नक्षसि' ।

मार्कण्डेय पुराण में[2] प्रवणम् शब्द का प्रयोग देखिए—

यत्तातो मामभिद्रष्टुं करोति **प्रवणं** मनः ;

पिता मेरे को देखने के लिए मन को अभिमुख करता है ।

प्रोथ शब्द अश्वनासिका का वाचक है और 'प्रु गतौ' धातु से व्युत्पन्न है । नथुनों में गति स्पष्ट ही है । सांस लेने में उनका सिकुड़ना, फैलना नथुनों की गति ही है । शिशुपालवध में[3] प्रोथ शब्द का प्रयोग देखिए—

रिसयिषति भूयः शष्पमग्रे विकीर्णं

पटुतरचपलौष्ठः पुस्फुरत्**प्रोथ**मश्वः ।

ओठों को अत्यन्त चलाता हुआ एवं **नथुनों को** स्फुरित करता हुआ सामने बिखेरी हुई घास को खाने की इच्छा करता है ।

प्लु (प्लुङ्) गतौ[4] (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम ।

सर्पणे — कविकल्पद्रुम ।

प्लु धातु तैरना अर्थ में प्रसिद्ध है । ऋक्-संहिता में[5] तैरना अर्थ में ही प्लु धातु का प्रयोग देखिये—

'अदो यद्दारु **प्लवते** सिन्धोःपारे अपुरुषम्' ।

सा०भा०—पुरुष से रहित लकड़ी से बना देवता का शरीर समुद्र के किनारे जल पर **तैरता है** ।

प्लवते—जलस्योपरि वर्तते ।

अथर्वसंहिता में[6] तैरने अर्थ में ही प्लु धातु का प्रयोग देखिये—

१. १०।७५।४

२. २३।८६

३. ११।११

४. पा०धा० १।६७३, क्षीर० १।६८३, धा०प्र० १।६६५, चा०धा० १।४७८, जै०धा० १।४६१,, काश०धा० १।५५२, कात०धा० १।४५६, शाक०धा० १।६६३, है०धा० १।५६८, क०क०द्रु०धा० ६०

५. १०।१५५।३

६. ४।५।१४

मध्ये ह्रदस्य **प्लवस्व** विगृह्य चतुरः पदः ।

सा०भा०—सरोवर में अपने पैरों को फैलाकर **तैर** ।

शतपथ ब्राह्मण में[1] एक स्थल पर णिजन्त शब्द का प्रयोग तैराने अर्थ में देखिये—

'या एता मैत्रावरुणमवसे वज्रो वाऽआज्य रेतः सोमो नैतद्वज्रेणाज्येन रेतः सोम हिनसानीति तस्माद्वाऽ**अपप्लावयति**' ।

जो मैत्रावरुण ग्रह में है और घी वज्र है तथा सोम वीर्य है, ऐसा न हो कि वज्ररूपी घृत से सोमरूपी वीर्य नष्ट हो जाय, इसलिये उसको उस पर **तैराता है** ।

कात्यायन श्रौतसूत्र में[2] भी तैराने के अर्थ में ही 'प्लु' धातु से व्युत्पन्न णिजन्त तिङन्त का प्रयोग देखिये—

समुद्रे त इत्यृजीषकुम्भं **प्लावयति** ।

रामायण के उत्तरकाण्ड में[3] 'उड़ने' के अर्थ में प्लु धातु प्रयुक्त हुई है—

ग्रहीतुकामो बालार्कं **प्लवतेऽम्बरमध्यम्** ।

(हनूमान्) बालसूर्य को पकड़ने की इच्छा से आकाश में **उड़ते चले जा रहे थे** ।

रघुवंश में[4] 'पसीने से भीगने' अर्थ में प्लु धातु का प्रयोग हुआ है—

गाढाङ्गदैर्बाहुनिरप्सु बालाः क्लेशोत्तरं रागवशात्**प्लवन्ते** ।

भट्टिकाव्य में[5] 'घूमने' के अर्थ में 'प्लु' धातु का प्रयोग देखिये—

यथामुखीनः सीतायाः **पुप्लुवे** बहु लोभयन् ।

(मारीच मृग का रूप धारण कर) सीता के सामने उन्हें प्रलोभित कर **घूमने लगा** ।

भट्टिकाव्य में[6] ही 'सामान्य गमन' अर्थ में 'प्लु' धातु का प्रयोग देखिये—

ववृधे शुशुभे चैषां मदो हृष्टैश्च **पुप्लुवे** ।

इनका (हाथियों का) पद बढ़ा और शोभित भी हुआ; हृष्ट होकर वेग **से चलने लगे** ।

---

१. ३।९।३।२६
२. १०।९।११
३. ११।३०
४. १६।६०
५. ५।४८
६. १४।१३

इस प्रकार प्लु धातु सामान्य गमन, उड़ना और तैरना अर्थ में प्रयुक्त हुई मिली है। किन्तु प्लु' धातु 'तैरना' अर्थ में अधिक प्रसिद्ध है, 'तैरना' अर्थ में ही इसके अधिक प्रयोग मिलते हैं।

स्कन्द[1] (स्कन्दिर्) गतौ (प०)—पाणिनीय, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

अन्यत्र गमन अर्थ में ऋक् संहिता में[2] 'स्कन्द्' धातु का प्रयोग देखिये—

यस्ते द्रप्सः स्कन्दति,

हे सोम, तुम्हारा रस अधिषवण धर्म से अन्यत्र जाता है। यहां सोम का जाना, बहना स्रवण ही है।

शतपथ ब्राह्मण में[3] 'गिरने' अर्थ में 'स्कन्द्' धातु का प्रयोग हुआ है—

तथेति देवा अब्रुवन् यद्बहिष्परिधि स्कन्दस्यति तद्युष्मासु।

देवों ने उत्तर दिया—अच्छा जो परिधियों के बाहर गिर जाए, वह तुम्हारा।

मनुस्मृति[4] में देखिये—

एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित्।

विष्णु-पुराण[5] में 'स्कन्द्' धातु का प्रयोग देखिये—

दिवास्वप्ने च स्कन्दन्ते ये नराः ब्रह्मचारिणः।

जिन ब्रह्मचारियों का दिन में तथा सोते समय (बुरी भावना से) वीर्यपात हो जाता है···।

भट्टि-काव्य[6] में 'पास जाने, पहुंचने' के अर्थ में 'स्कन्द्' धातु प्रयुक्त हुई है—

युद्धोन्मत्ताद्विना शत्रून् समास्कन्त्स्यति को रणे।

---

१. पा०धा० १।६६६, क्षीर० १।७०७, धा०प्र० १।६८७, चा०धा० १।२६२, जै०धा० १।४६३, काश०धा० १।३५६, कात०धा० १।२८१, शाक०धा० १।४७५, है०धा० १।३१६, क०क०द्रु०धा० २१०

२. १०।१७।१२

३. १।३।३।१६

४. २।१८०

५. २।६।२७

६. १६।१०

युद्ध में युद्धोन्मत्त राक्षस के बिना शत्रुओं के पास कौन अभियान करेगा।

सृप् (सृप्लु)[१] गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

ऋक्संहिता[२] में देखिये—

उपसर्प कातरं भूमिमेताम्,

मातृभूमि के पास जाओ।

उपसर्प—उपगच्छ।

अथर्वसंहिता में[३] देखिए—

वीध्रे सूर्यमिव सर्पन्तं मा पिशाचं तिरस्करः।

वीध्र नामक अन्तरिक्ष में सूर्य के समान इधर-उधर घूमते हुए पिशाच को अन्तर्हित न कर।

शतपथ ब्राह्मण में[४] देखिए—

इमे वै लोकाः सर्पा यद्धि किं च सर्पत्येष्वेव तल्लोकेषु सर्पति तद्य-त्सर्पानामुपतिष्ठत।

ये लोक सर्प हैं, क्योंकि जो कुछ चलता है इन्हीं के भीतर चलता है।

निघण्टु में[५] सृप्लृ धातु को गत्यर्थक ही कहा गया है—

सर्पतिः गतिकर्मा।

विष्णु-पुराण में[६] देखिए—

काष्ठां गतौ दक्षिणतः क्षिप्तेरिव सर्पति।

(सूर्य) दक्षिण दिशा में प्रवेश कर छोड़े हुए बाण के समान तीव्र वेग से चलते हैं।

कुमारसम्भव में[७] देखिए—

---

१. पा०धा० १।७०२, क्षीर० १।७१०, धा०प्र० १।६९१, चा०धा० १।२९५, जै०धा०   , काश०धा० १।३५५, कात०धा० १।२७९, शाक०धा० १।६६०, हैं०धा० १।३४१, क०क०द्रु०धा० २३७

२. १०।१८।१०

३. ४।२०।७

४. ७।४।१।२७

५. २।१४

६. २।८।११

७. २२।७

चमूषु सर्पन्मरुदाहृतोऽहरन्नवीनसूर्यस्य च कान्तिवैभवम् ।

'नागानन्द' में[1] देखिए—

सर्पद्भिः सप्त सर्पिष्कणमिव कवलीकर्त्तुमीशे समुद्रान् ।

श्यै[2] (श्यैङ्) गतौ (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

श्यै गतौ धात्वर्थ से तात्पर्य घनीभूत पदार्थों का द्रवित होना और द्रवीभूत पदार्थों का घनीभूत ठोस होना है—

द्रवमूर्तिस्पर्शयोः श्यः ।[3]

शतपथ ब्राह्मण[4] में 'पाला पड़ना' अर्थ में श्यै धातु का प्रयोग देखिए—

शिशिरौ स यदेतयोर्बलिष्ठं श्यायति ।

यह दोनों शिशिर ऋतु के महीने हैं, क्योंकि इनमें पाला बहुत पड़ता है ।

शिव[5] गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

मराठी भाषा[6] में असुजणे क्रिया शिव गतौ धातु से व्युत्पन्न है । असुजणे क्रिया का अर्थ to abate, to subside है, अधःपतन, क्षीण होना है ।

अदादिगण

हन्[7] (हन गतौ)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

---

१. १४।२१

२. पा०धा० १।६७८, क्षीर० १।६८७, धा०प्र० १।९७१, चा०धा० १।४८२, जै०धा०, काश०धा० १।५५२, कात०धा० १।२६०, हैं०धा० क०क०द्रु० धा० ७८; अ० ६।१।२४

३. ४।३।१।१९

४.

५. पा०धा० १।७३६, क्षीर० १।७४१, धा०प्र० १।१०१८, चा०धा० १।६३८, जै०धा०, काश०धा० १।७०७, कात०धा० १।६१६, शाक०धा० १।८८७, है०धा०, क०क०द्रु०धा० ४९

६. म०व्यु०कोष

७. पा०धा० २।२, क्षीर० २।२, धा०प्र० २।२, जै०धा० ३।४९८, काश० धा० २।२, कात०धा० २।६२०, शाक०धा० २।९७०, है०धा० २।४२, क०क०द्रु०धा० २२४

महाभारत में उद्योगपर्व में[1] 'हन्' धातु का 'गति' अर्थ में प्रयोग हुआ है—

को ह्यनन्तरमात्मानं ब्राह्मणो हन्तुमर्हति ।

नीलकण्ठ टीका—हन्तुं गन्तुं हन्तेर्गत्यर्थत्वमत्र ज्ञेयम् ।

ज्ञातुमित्यर्थः कोऽर्हति न कोऽपीत्यर्थः ।

यशस्तिलकचम्पू में[2] सामान्य गमन अर्थ में ही हन् धातु का प्रयोग हुआ है—

हंसि, कुतो न हंसि रहितुं निराबाधावकाशं देशम् ।

राजहंसी, मधुर शब्द उच्चारण करने के लिये तू बाधाशून्य स्थान पर किस कारण नहीं जाती ?

द्रा—कुत्सायां गतौ[3] (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन ।

पलायने चान्द्र, कविकल्पद्रुम ।

ऋक् संहिता[4] में पास जाना, पकड़ लेना, आश्रय लेना अर्थों में द्रा धातु प्रयुक्त हुई है--

'सनायुवो नमसा नव्यो अर्कैर्वसूयवो मतयो दस्म दद्रुः ।'

सा०भा०—दर्शनीय, तू स्तुति करने योग्य है । अग्निहोत्र आदि कर्म करने वाले, धन के इच्छुक विद्वान् तुम्हारे पास जायें, अर्थात् तुम्हारा दृढ़ता से आश्रय लें ।

दद्रुः—बहुना प्रयासेन जग्मुः ।

भगाने के अर्थ में अथर्वसंहिता में[5] द्रा धातु का प्रयोग देखिए—

अथो इट इव हायनोप द्राह्यवीरहा ।

जैसे गया हुआ वर्ष फिर लौटकर नहीं आता है, इसी प्रकार हमारे वीर्य से उत्पन्न हुए पुत्र आदि को नष्ट न करता हुआ चला जा (फिर न आ) ।

अथर्व-संहिता में ही[6] अन्य प्रयोग देखिए—

---

१. ५।४२।३५

२. २।२०२

३. पा०धा० २।५७, क्षीर० २।४७, धा०प्र० २।४५, चा०धा० २।१७, जै० धा० २।४६७, काश०धा० २।२०, कात०धा० २।६३६, शाक०धा० २।६७८, हैं०धा० २।८, क०क०द्रु०धा० ४३

४. १।६२।११

५. ६।१४।३

६. ६।१२९।२

माप द्रान्त्वरातयः ।

अदानशील शत्रु हमारे पास से भाग कर कुत्सित गति को प्राप्त करें ।

शतपथ ब्राह्मण में[1] भी 'कुत्सित गति को प्राप्त कराना' अर्थ में 'दिद्रापयिष्यति' का प्रयोग हुआ है—

अथोत्तराणि जपति । द्रापेऽअन्यसस्पतऽइत्येष वै द्रापिरेष वै तं द्रापयति यं **दिद्रापयिषति—**

दिद्रापयिषति—कुत्सितं कर्तुमिच्छति । यहाँ द्रापि शब्द रुद्र का वाचक है—

'द्रापयति कुत्सितां गतिं प्रापयति पापिनम्' जो पापी को कुत्सित गति प्राप्त कराता है, अर्थात् नष्ट कराता है; अतः यहां रुद्र को द्रापि कहा गया है।

इस प्रकार 'द्रा-कुत्सायां गतौ' से तात्पर्य अधम गति को प्राप्त करना, नष्ट होना, पलायन है ।

मराठी भाषा में[2] भी 'उद्रणें' शब्द छुटकारा पाना, पलायन, अर्थ में प्रयुक्त होता है । उद्रणें शब्द द्रा कुत्सायां गतौ धातु से व्युत्पन्न है ।

वा गतौ[3] (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

वा धातु की गति वायु-सम्बद्ध है । उदाहरणार्थ—

ऋक्संहिता में[4] देखिए—

द्वाविमौ वातौ वात का सिन्धोरा परावतः ।

आगे वाली और पीछे वाली दोनों प्रकार की वायु समुद्र तक अथवा समुद्र से भी दूर देश है, वहां तक जाती हैं ।

रामायण में युद्ध-काण्ड में[5] देखिए—

वाता हि परुषं वान्ति ।

प्रचण्ड आंधी चल रही है ।

---

१. ६।६।१।२४

२. म०व्यु० कोष, पृ० ९४

३. पा०धा० २।५३, क्षीर० २।४३, धा०प्र० २।४१, चा०धा० २।१२, जै० धा० २।६७४, काश०धा० २।१७, कात०धा० २।६३३, शाक०धा० २।४६८ है०धा० २।५, क०क०द्रु०धा० ४५

४. १०।३७।२

५. ४।१३

महाभारत के कर्णपर्व[1] में देखिए—
ववुश्च वाताः ।
भागवतपुराण में[2] देखिए—
वाता न वान्ति ।
भट्टिकाव्य में[3] देखिए—
औक्षन् शोणितमम्भोदा वायवोऽवान् सुदुःसहाः,
मेघों ने रुधिर वृष्टि की । प्रचण्ड हवाएं चलने लगीं ।
अमरुशतक में[4] देखिए—
हेमना वान्ति वाताः ।
हेमन्त पवन बहते हैं ।

जुहोत्यादिगण

हा[5] (ओहाङ्) गतौ (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

संहिता में ही 'हा गतौ' धातु के प्रयोग उपलब्ध हैं—
ऋक् संहिता[6] में देखिए—
इमे विदस्य ज्रयसो नु देवी इन्द्रस्यौजसो भियसा जिहाते ।
द्योतमान द्यावापृथिवी, वेगवान् इन्द्र के बल के भय से जल्दी चलते हैं ।
जिहाते—गच्छतः ।
ऋक्-संहिता में ही[7] एक अन्य प्रयोग देखिए—
परावरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ।
पापदेवता अत्यन्त दूर चले जायें ।

---

१. ६८।४८
२. ४।५।८
३. १७।९
४. १।११९
५. पा०धा० ३।११, क्षीर० ३।७, धा०प्र० ३।७, चा०धा० ३।२१, जै०धा० १।४९७, काश०धा० २।८५, कात०धा० २।७०३, शाक०धा० ३।१०१९, है०धा० २।७८, क०क०द्रु०धा० ४६
६. ५।३२।९
७. १०।५९।१

जिहीताम्—गच्छतु ।

ऋ[1] गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

ऋक्संहिता में[2] 'ऋ' धातु का प्रयोग देखिए—

तम इर्यात रेणुं बृहदर्हरिष्वणिः ।

दिवादिगण

धूर्[3] (धूरी) गतौ (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

मराठी भाषा में[4] ढुलणे क्रिया गति, मस्तक झुकाना, अर्थ में प्रयुक्त होती है । ढुलणे क्रिया 'धूर् गतौ' धातु से व्युत्पन्न है ।

ज्ञानेश्वरी ग्रन्थ[5] में देखिए—

मदिरा मेघतां ढ्ले सन्निपाते विण बोले ।

पद्[6] (पद) गतौ (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

टीकाकार चन्नवीर[7] काशकृत्स्ननिर्दिष्ट पद् गतौ की व्याख्या 'भूषण धारण करना'[8] अर्थ में करते हैं—

पद् गतौ—भूषणे, पद्यते—भूषणं धारयति ।

---

१. पा०धा० ३।२६, क्षीर० ३।१७, धा०प्र० ३।१७, जै०धा० १।४६७, काश०धा० २।७२, शाक०धा० ३।१०१६, है०धा० २।६, क०क०द्रु० धा० ६६

२. १।५६।४

३. पा०धा० ४।४७, क्षीर० ४।४५, धा०प्र० ४।४७, चा०धा० ४।१००, जै०धा० ३।४६६, काश०धा० ४।११२७, है०धा० ३।१२८, क०क०द्रु० धा० २६७

४. म०व्यु० कोष पृ० ३५६

५. १४।२५२

६. पा०धा० ४।६३, क्षीर० ४।६१, धा०प्र० ४।६३, चा०धा० ४।१०७, जै० धा० ३।४६६, काश०धा० ३।१०५, कात०धा० ३।८१०, शाक०धा० ४।११३५ है०धा० ३।११४, क०क०द्रु०धा० २००

७. काश०धा० ३।१०५

८. ७।१०४।१६

पदकम्—कण्ठाभरणम् ।

वैदिक साहित्य में पद् धातु गिरना, मारना, मरना अर्थों में प्रयुक्त हुई मिली है, उदाहरणतः—गिरना अर्थ में ऋक् संहिता में देखिए—

'इन्द्रस्तं हन्तुं महता वधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट' ।

(राक्षसों को) इन्द्र वज्र से मारे और वह राक्षस निकृष्ट होता हुआ गिरे। पदीष्ट—पततु ।

यहां वज्र से मारे जाने पर राक्षस का नीचे गिरना अपने आप में एक गति है ।

मरने के अर्थ में ऋक्-संहिता में[1] पद् धातु का प्रयोग देखिए—

वजस्य यत्पतने पादि शुष्णः ।

वज्र के गिरने पर शुष्ण असुर मर गया ।

पादि—अगच्छत्, अम्रियतेत्यर्थः ।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में[2] गिराने के अर्थ में पद् धातु प्रयुक्त हुई है—

अद्या तमिन्द्र वज्रेण मातृव्यं पादयामसि ।

उस शत्रु को इन्द्र वज्र से छेद कर गिराते हैं ।

भट्टि-काव्य में[3] समीप आने के अर्थ में पद् धातु का प्रयोग आङ् उपसर्ग-युक्त हुआ है—

एष रावणिरापादि वानराणां भयङ्करः ।

वानरों को भय उत्पन्न करने वाला यह रावण समीप आया है ।

इन सब प्रयोगों को देखते हुए यह स्पष्ट है कि पद् धातु वैदिक साहित्य में हिंसा, गिराना, गिरना अर्थ में प्रचलित रही है । गिरना अपने आप में एक गति है । पद् धातु सामान्य-गमन अर्थ में भी प्रचलित रही होगी, पैर-वाचक पाद शब्द इस ओर संकेत करता है । पाद शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—

'पद्यते गम्यते अनेन' ।[4] पद् धातु से करण में घञ् प्रत्यय से पाद शब्द की सिद्धि होती है । पांव से चला जाता है, गमन किया जाता है, अतः पाद कहलाते हैं ।

---

१. ६।२०।५

२. २।४।२।४

३. १५।८६

बंगला भाषा[1] में भी पद शब्द 'गति-प्राप्ति' का वाचक है।

चन्नवीर टीकाकार ने भूषण धारण करना अर्थ में पद धातु का प्रयोग माना है, यह व्याख्या भी उचित जान पड़ती है, क्योंकि पद्म शब्द कमल का वाचक है।[2] 'पद्म' शब्द 'पद गतौ' धातु से उणादि सूत्र अर्त्तिस्तुसुहुस्त्रिति से मन् प्रत्यय से बना है। कमल पुष्प शृंगार-साधन है, इसी अभिप्राय से चन्नवीर टीकाकार ने 'पद्यते—भूषणं धारयति' व्याख्या की होगी।

स्वादिगण

हि[3] गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन हैम, कविकल्पद्रुम।

'प्रेरित करना' अर्थ में[4] हि धातु का प्रयोग देखिए—

हिन्वन्त्यश्वम्।

अश्व को प्रेरित करते हैं।

भागवत पुराण[5] में 'हि' धातु का प्रयोग देखिए—

सुरेश, कस्मान्न हिनोषि वज्रं पुरःस्थिते वैरिणि मय्यमोघम्,

हे देवराज, सम्मुख खड़े मुझ शत्रु पर अमोघ वज्र क्यों नहीं चलाते हो ?

भागवत पुराण[6] में ही एक अन्य स्थल पर 'शरीर छोड़ना' अर्थ में 'हि' धातु का प्रयोग देखिए—

स देवदेवो भगवान् प्रतीक्षतां कलेबरं यावदिदं हिनोम्यहम्,

जब तक मैं यह शरीर न छोड़ूं, तब तक देव प्रतीक्षा करे।

तुदादिगण

ऋष्[7] (ऋषी) गतौ (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

---

१. बं०श०कोष २।१२६३

२.

३. पा०धा० ५।१२, क्षीर० ५।१३, धा०प्र० ५।११, चा०धा० ५।११, जै०धा० काश०धा० ४।५, कात०धा० ४।८३६, शाक०धा० ५।११७४, क०क०द्रु०धा० ५०

४. ३।५३।२४

५. ६।११।१६

६. १।६।२४

७. पा०धा० ६।८, क्षीर० ६।८, धा०प्र० ६।७, चा०धा० ६।१६, शाक०धा० ७।१३२१, है०धा० ५।१०४, क०क०द्रु०धा० ३०७

ऋक्-संहिता[1] में देखिए—

सुत सोमो **अर्षति** विष्णवे ।

निचोड़ा हुआ सोम इन्द्र के लिए **जाता है** ।

ऋक्-संहिता[2] में ही एक अन्य प्रयोग देखिए—

समेनपह्नुता इमा गिरो **अर्षन्ति** ।

अकुटिल हमारी स्तुतियां सोम के साथ **जाती हैं** ।

ईशावास्योपनिषद्[3] में देखिए—

नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत् ।

शब्दार्थक धातुएँ

आठों धातुपाठों में मिलाकर २०४ शब्दार्थक धातुएं हैं। इन २०४ शब्दार्थक धातुओं में व्यक्त वाक्, अव्यक्त वाक्, भाषण, परिभाषण एवं भषण अर्थ में पढ़ी गई धातुओं की संख्या भी सम्मिलित है। इन २०४ धातुओं में २१ धातुएं ऐसी हैं, जो शब्द अर्थ के साथ-साथ अन्य अर्थों में भी निर्दिष्ट हैं। चूंकि शब्दार्थक धातुओं का प्रकरण है, अतः उनके शब्द अर्थ की व्याख्या इसी अध्याय में की गई है।

धातुपाठों में पठित शब्दार्थक धातुओं की परिमाण-तालिका इस प्रकार है—

धातुपाठ	धातु संख्या	शब्दार्थक धातु सं०	प्रतिशत
पाणिनीय	१९०५	१५१	७.९२
चान्द्र	१५७५	१०७	६.७९
जैनेन्द्र	१४७८	१२१	८.१८
काशकृत्स्न	२४११	२०४	८.४६
कातन्त्र	१८५८	१२१	६.५१
शाकटायन	१८५५	१२३	६.६६
हैम	१९८०	१२१	६.११
कविकल्पद्रुम	२३५८	१२३	५.२१

२०४ धातुओं में से ९ धातुएँ 'व्यक्तायां वाचि' अर्थ में पढ़ी गई हैं और

---

१. ९।३४।२

२. ९।३४।६

३. ४

८ धातुओं के अर्थ स्पष्ट हैं; अतः उनके विशिष्ट अर्थ के विवेचन की आवश्यकता नहीं रह जाती। इस प्रकार शेष १८७ धातुओं में से ६२ धातुओं के विशिष्ट अर्थ के सम्बन्ध में संस्कृत एवं अन्य भाषाओं से संकेत मिले हैं। अतः उन्हीं धातुओं को यहाँ लिया जा रहा है। धातु-सूची इस प्रकार है—

भ्वादिगण

१	कास्	२	कर्द्
३	पर्द्	४	शृध्
५	नर्द्	६	नद्
७	गुञ्ज्	८	कूज्
९	ह्रेष्	१०	ह्लेष्
११	बृंह्	१२	ह्लाद्
१३	स्वन्	१४	भण्
१५	क्वण्	१६	रस्
१७	रण्	१८	गै
१९	गर्ज्	२०	ध्वन्
२१	रास्	२२	नास्
२३	कण्	२४	हिक्क्
२५	गृज्	२६	द्रेक्
२७	ध्रेक्	२८	गज्
२९	रम्भ्	३०	रम्ब्
३१	अम्ब्	३२	स्यम्
३३	कल्	३४	कल्ल्
३५	पिट्	३६	व्रण्
३७	ध्मा	३८	बुक्क्
३९	रेष्	४०	घु
४१	ङु	४२	गर्द्
४३	भ्रण्	४४	के
४५	मण्	४६	मश्
४७	ह्रस्	४८	बण्
४९	भीम्	५०	रेभ्
५१	म्लेच्छ्		

अदादिगण

५२ क्षु ५३ रु
५४ शिञ्ज्

जुहोत्यादिगण

५५ मा

दिवादिगण

५६ वाश्

तुदादिगण

५७ घुर् ५८ जर्द्
५९ कुण् ६० कुङ्

क्र्यादिगण

६१ गॄ

चुरादिगण

६२ मार्ज्

इनमें से अधिकतर धातुएँ पशु पक्षियों एवं निर्जीव पदार्थों की ध्वनि और मनोभावों से सम्बद्ध हैं, जिससे भाषा के कई शब्दों के निर्माण पर प्रकाश पड़ता है।

पशु, पक्षियों की ध्वनि से मेल खाने वाली धातुओं में कु,कुर, पु, गुञ्ज्, गु, पुर, घुर, बुक्क्, भष् आदि धातुएँ हैं। पशु, पक्षियों की ध्वनियां ही धातुएँ हैं और उन जीवों की प्रतीक भी हैं। कुत्ता भों-भों करता है, भों-भों से मिलती-जुलती ही भेष्, बुक्क् धातुयें 'श्व-रव' को ही द्योतित करती हैं। सूअर 'घुर-घुर' शब्द करता है, उसी आधार पर बनी हुई 'घुर' धातु 'सूअर के शब्द' अर्थ में ही प्रचलित है। पक्षियों के 'कू-कू कलरव' के आधार पर ही बनी हुई कु, कूज् धातुएँ कौए का कां कां करना, कोयल के कूकने अर्थ की वाचक हैं। उल्लू 'घू घू' शब्द करता है, अतः 'घु' धातु 'उल्लू के शब्द' की प्रतीक हैं। भ्रमर 'गु, गु गुंजन' करता है, उसी के शब्द से गुञ्ज् धातु का विकास हुआ। कुर-कुर शब्द करने वाले कुरर पक्षी की ध्वनि का अनुकरण कर कुर् धातु बनी और 'कुर' धातु से उस पक्षी-विशेष की ध्वनि का ही बोध होता है। इस प्रकार मानव ने अपने आस-पास के जीवों की ध्वनि का अनुकरण कर कई शब्द बनाये, इस अनुकरण को ही अंग्रेजी में Onomotopoeic theory कहते हैं।

पशु-पक्षियों की ध्वनि का अनुकरण ध्वन्यात्मक अनुकरण है, इसके अतिरिक्त निर्जीव पदार्थों की ध्वनि का अनुरणनात्मक अनुकरण है। प्रत्येक वस्तु

की अपनी विशिष्ट ध्वनि होती है। नदी 'नद नद' शब्द कर बहती है, उसी आधार पर 'नद्' धातु आज नदी के 'नद नद शब्द' करने अर्थ में प्रयुक्त हुई मिली है। नूपुरों से 'झन-झन' 'रण-रण' शब्द होता है, उसी 'झन-झन' ध्वनि के अनुकरण से झण् धातु का विकास हुआ।

इसी प्रकार मनोभावों से भी कई धातुएँ विकसित हुईं। प्रसन्नता, दुःख आदि के भावावेश में मुख से 'आह, उफ़' आदि शब्द निकल जाया करते हैं। 'उ' धातु इन्हीं भावों से विकसित है।

इस प्रकार मानव ने अपने आस-पास के जीवों, वस्तुओं की ध्वनि का अनुकरण कर भाषा का विकास किया। अनुकरण-सिद्धान्त के प्रवर्तक जी० एच्० हार्डर[1] कहते हैं—'आदिकाल में मनुष्य जड़ तथा चेतन से प्राकृतिक ध्वनियों का अनुकरण करता होगा और बाद में यही ध्वनियाँ उन पदार्थों तथा जीवों का प्रतीक बन गई होंगी। तदनन्तर इन्हीं ध्वनि-संकेतों से अन्य शब्द बन गये होंगे; जैसे भौं-भौं से भूंकना, पी-पी से पिपियाना आदि। अतः भाषा का आरम्भ अनुकरणात्मक शब्दों से हुआ। यही कारण है कि जानवरों तथा निर्जीव पदार्थों के वाचक शब्द उनकी स्वाभाविक ध्वनियों से मेल खाते हैं और भिन्न भाषाओं में एक ही अथवा समान रूपों में मिलते हैं, उदाहरणार्थ म्याऊं चीनी, मिश्री तथा भारतीय भाषाओं में एक ही रूप में प्राप्त होता है।'

कासृ[2] (कासृ) शब्दकुत्सायाम् (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम।

शब्दे — चान्द्र।

कु शब्दे — कविकल्पद्रुम।

क्षीरस्वामी[3] 'शब्दकुत्सायाम्' धात्वर्थ की व्याख्या इस प्रकार करते हैं—

शब्दस्य कुत्सा रोगित्वात्।

टीकाकार चन्नवीरकृत[4] व्याख्या इस प्रकार है—

---

१. भाषा और समाज, भाषा विज्ञान पर भाषण, पृ० ३५१

२. पा०धा० १।४०२, क्षीर० १।५११, धा०प्र० १।६२४, चा०धा० १।४५७, जै०धा० १।४६१, काश०धा० १।५३३, कात०धा० १।४३६, शाक०धा० १।२२४, है०धा० १।८४५, क०क०द्रु०धा० ३३१

३. क्षीर० १।४११

४. काश०धा० १।५३३

कासते-कासनं करोति (खांसता है)।

टीकाकार दुर्गादास भी[1] 'कास्‌रोगहेतुः कुत्सितशब्दः' कहते हैं।

कास्‌ धातु 'खाँसने' अर्थ में ही प्रयुक्त होती है, उदाहरणार्थ अथर्वसंहिता[2] में देखिए—

मुञ्च शीर्षक्त्या उत कास एवं परुष्परुराविवेशा यो अस्य।

सा०भा—हे सूर्य, सिर में व्याप्त होकर पीड़ा देने वाले शीर्षक्ति नामक शिरोरोग से इस पुरुष को छुड़ाइये। हृदय और कण्ठ के भीतर रहने वाला श्लेष्म रोगविशेष खांसी इस पुरुष के सब जोड़ों में घुस गया है।

सुश्रुतसंहिता में[3] देखिये—

श्वसिति क्षौति चात्यर्थमप्याधमति कासते।

भागवत-पुराण में[4] देखिए—

कासश्वासकृतायासः।

खाँसने और सांस लेने में भी उसे बड़ा कष्ट होता है।

प्राकृत ग्रन्थ प्रश्न-व्याकरण-सूत्र में[5] देखिए—

विहलमतिदुव्वला किलंता कांसता।

कांसता—रोगविशेषात्‌ कुत्सितशब्दं कुर्वाणाः।

इस प्रकार 'शब्दकुत्सायाम्‌' धात्वर्थ से यहाँ खाँसना अर्थ अभिप्रेत है।

कर्द्[6] (कर्द) कुत्सिते शब्दे (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम।

कुत्सितरवे 		कविकल्पद्रुम।

सायण[7] कुत्सित शब्द की व्याख्या इस प्रकार करते हैं—

---

१. श०क०द्रु०कोष २।१२१
२. १।१२।३
३. १।१२।२९
४. ३।३०।१६
५. ३।१२, पृ० ५४
६. पा०धा० १।५०, क्षीर० १।४९, धा०प्र० १।५८, चा०धा० १।१६, जै०धा० १।४९३ काश०धा० १।३९४, कात०धा० १।१९, शाक०धा० १।४६२, हैं०धा० १।३०६, क०क०द्रु०धा० १९४
७. मा०धा० १।५०

कुत्सितशब्द इह कोक्षः।

(उदर में होने वाला शब्द)।

कोक्षे कर्दति—केशवस्वामी[1]।

टीकाकार चन्नवीर[2] द्वारा की गई व्याख्या इस प्रकार है—

कुत्सिते शब्दे—निन्दिते शब्दे। कर्दते—फेनः संहतो भवति।

कर्दभः—पङ्कः। कर्दिः, कर्दनम् कर्दनीयम्—अपानवायुशब्दे।

चन्नवीरकृत व्याख्या के स्पष्ट है कि वे कर्द धातु से निष्पन्न कृदन्त शब्दों का ही 'कुत्सित शब्द' अर्थ में प्रयोग मानते हैं। तिङन्त रूप कर्दते की व्याख्या उन्होंने भिन्न अर्थ में की है।

कर्द शब्द का तात्पर्य कौए का शब्द,[3] आनन्द न देने वाला स्वर एवं उदरस्थ वायुनिष्कासन है।

मराठी भाषा[4] में 'खदरवदणे' शब्द मलनिष्कासन अर्थ का वाचक है और 'कर्द कुत्सिते शब्दे' धातु से व्युत्पन्न है।

पर्द्[5] (पर्द) कुत्सिते शब्दे (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन।

अपानोत्सर्गे कविकल्पद्रुम।

सायण[6] ने 'पर्द् कुत्सिते शब्दे' धात्वर्थ की व्याख्या 'गुदरव' अर्थ में की है—

'इह कुत्सितः शब्दो गुदरवः'।

क्षीरस्वामीकृत[7] व्याख्या देखिए—

पायुध्वनौ वर्ततेऽयम्। निश्शब्दमधोवातं मन्वाना अशब्द इत्याहुः।

---

१. वही
२. काश०धा० १।६४
३. श०क०द्रु० कोष २।४४
४. म०व्यु० कोष पृ० १६६
५. पा०धा० १।२४, क्षीर० १।२५, धा०प्र० १।२८, चा०धा० १।३२६, जै०धा० १।४८६, काश०धा० १।३६४, कात०धा० १।३१३, शाक०धा० १।२४, क०क०द्रु०धा० २००
६. माध०धा० १।२५
७. क्षीर० १।२५

व्याकरणचन्द्रोदय[1] में भी 'गुदा का शब्द' अर्थ में व्याख्या की गई है ।

इस प्रकार 'पर्द्' धातु 'मलनिस्मारक स्थान से निस्सृत वायु' अर्थ वाली ही है ।

शृध[2] (शृध्) शब्दकुत्सायाम् (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम ।

पर्दे कविकल्पद्रुम ।

क्षीरतरंगिणी में[3] कहा गया है—

शब्दकुत्सा पायुशब्दत्यात् ।

व्याकरण-चन्द्रोदय में[4] भी 'गुदरव' अर्थ में ही 'शृध् शब्दकुत्सायाम्' धात्वर्थ की व्याख्या की गई है ।

टीकाकार चन्नवीर ने[5] भी 'अपानवायुशब्द' अर्थ में ही शृध् धातु की व्याख्या की है—

शर्धते—अपानमिति

शर्धकः, शर्धमानः शुद्धः—अपानशब्दकर्तरि ।

मनुस्मृति में[6] शृध् धातु 'गुदरव' अर्थ में प्रयुक्त हुई है—

अवशर्धयतो गुदम् ।

कुल्लूकभट्ट—शर्धनं कुत्सितो गुदशब्दः ।

इस प्रकार 'कुत्सित शब्द'—इस सामान्य अर्थ में निर्दिष्ट कास्, कर्द्, पर्द्, शृध् चारों धातुएँ विशिष्ट अर्थ की द्योतक हैं । कास् धातु के स्थान पर 'खाँसने' अर्थ में पर्द्, शृध् धातुओं का प्रयोग नहीं कर सकते ।

नर्द् (नर्द) शब्दे[7] (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र,

---

१. ३।४५ पृ०

२. पा०धा० १।४६३, क्षीर० १।५०६, धा०प्र० १।७६३, चा०धा० १।५७०, जै०धा० १।४६३, काश०धा० १।५७८, कात०धा० १।४८६, शाक०धा० १।२६६, है०धा० १।६५८, क०क०द्रु०धा० २१७

३. १।५०६

४. ३।३२

५. काश०धा० १।५७८

६. ८।२८२

७. पा०धा० १।४८, क्षीर० १।४७, धा०प्र० १।५५, चा०धा० १।१७, जै०धा० १।४६ड, काश०धा० १।१६, कात०धा० १।१७, काश०धा० १।४५६ जै०धा० १।३०३, क०क०द्रु०धा० २००

जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम,
कविकल्पद्रुम ।

नर्द् धातु 'गर्जन' अर्थ में प्रयुक्त होती है, उदाहरणतः षड्विंश ब्राह्मण[1] में देखिए—

निनर्दन्निव गायति,

गजरने के समान गाता है ।

महाभारत के शल्यवध पर्व में[2] देखिए—

तौ वृषाविव **नर्दन्तौ**,

वे बैलों के समान **गरजते हुए** ।

रामायण के युद्धकाण्ड' में[3] देखिये—

ननर्द युधि सुग्रीवः स्वरेण महता महान् ।

उस समय सुग्रीव ने युद्ध में उच्च स्वर से **गर्जना** की ।

बुद्धचरित में[4] देखिए—

हर्षेण कश्चिद्वृष**वन्ननर्द** ।

कोई हर्ष से सांड के सदृश **गरजता था** ।

भट्टि काव्य में[5] देखिए—

अनर्दिषुः कपिव्याघ्राः

वानरों ने **जोर से शब्द किया** ।

बंगला भाषा में[6] नर्द शब्द को 'वृष-ध्वनि' कहा गया है ।

नद् (णद) अव्यक्ते शब्दे[7] (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप,
चान्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन,
हैम ।

क्लिष्टोक्तौ कविकल्पद्रुम ।

---

१. २।१।२३
२. ६।१२।८
३. ६६।६
४. १३।२६
५. १५।३५
६. बं०श० कोष० १।११८१
७. पा०धा० १।४८, क्षीर० १।४७, धा०प्र० १।५६, चा०धा० १।१५, ज०धा० १।४६३, काश०धा० १।१६, कात०धा० १।१५, शाक०धा० १।४५६, है०धा० १।२६६, क०क०द्रु०धा० १६८

नद् धातु साहित्य में 'मेघ-गर्जन, नदी का शब्द करना, वाद्यों का शब्द', अर्थों में प्रयुक्त हुई मिली है।

ऋक्-संहिता में[1] 'मेघ-गर्जन' अर्थ में नद् धातु का प्रयोग देखिए—

सिंहा इव नानदति प्रचेतसः,

प्रकृष्ट ज्ञान वाले मेघ सिंहों के समान शब्द करते हैं।

अथर्व-संहिता में[2] 'नदी का शब्द करना' अर्थ में प्रयोग देखिए—

यददः संप्रवतीरहायनदता हते।

हे जलो, इस ताडन करने योग्य मेघ को ताडित करने पर तुमने इधर-उधर को चलकर शब्द किया था; (उसी से तुम्हारा नाम नदी पड़ा)।

छान्दोग्य उपनिषद् में[3] देखिए—

नदयुरिवाग्नेरित ज्वलत उपशृणोति।

बैल शब्द और अग्नि शब्द की तरह सुनता है।

शां० भा० –नदयुरिव ऋषभकूजितमिव।

निरुक्त में[4] देखिये—

नद्यः कस्मात् ? नदना इमा भवन्ति शब्दवत्यः।

क्योंकि ये शब्द वाली होती हैं, अतः नदी नाम पड़ा।

रामायण के युद्धकाण्ड में[5] देखिये—

नेदुः प्रहृष्टा युधि यातुधानाः,

राक्षस हर्ष के साथ सिंहनाद करने लगे।

महाभारत के विराट् पर्व[6] में देखिये—

कुञ्जराणां नदताम्,

शब्द क ने वाले हाथियों का।

भागवत पुराण[7] में 'नदत्' शब्द 'पक्षि-शब्द' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—

बोली बोलने वाले पक्षियों तथा भौंरों के कलरव से गुंजायमान सरोवर में।

---

१. १।६४।८
२. ३।१३।१
३. ३।१३।३
४. २।७
५. ५९।४१
६. ४।५६।१
७. ४।२५।२७

कुमारसम्भव में[1] वाद्य शब्द अर्थ में नदत्सु शब्द का प्रयोग देखिये—

नदत्सु सूर्येषु ।

नगाड़ों के बजने पर ।

भट्टिकाव्य में[2] 'पक्षी के शब्द' अर्थ में नदत् शब्द का प्रयोग हुआ है—

उपारुरोदेव नदत्पतङ्गः कुमुद्वतीं तीरतरुदिनादौ ।

जिस पर बैठकर पक्षी शब्द करते हैं, ऐसा तीरवृक्ष कुमुदिनी के प्रति मानों रोया ।

बंगला भाषा[3] में घण्टे की ध्वनि को नद शब्द से व्यक्त किया गया है । ध्वनि-वाचक नाद शब्द नद् धातु से ही व्युत्पन्न है ।

मराठी भाषा में[4] नद शब्द आवाज करना अर्थ में प्रयुक्त होता है और नदी का भी वाचक है ।

कन्नड़ भाषा में[5] नद शब्द शब्द, शोर अर्थ में प्रयुक्त होता है ।

गुञ्ज्[6] (गुजि) अव्यक्ते शब्दे (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, कातन्त्र, शाकटायन, हैम ।

शब्दे — काशकृत्स्न ।

कूजने — कविकल्पद्रुम ।

काशकृत्स्न-निर्दिष्ट गुञ्ज् शब्दे धात्वर्थ की व्याख्या टीकाकार चन्नवीर ने[7] बड़ी विचित्र की है—

गुञ्जति—आकर्षति ।

गुञ्ज् धातु साहित्य में भ्रमर-गुञ्जन अर्थ में प्रयुक्त हुई है ।

भट्टिकाव्य में[8] देखिये—

---

१. ९।५०
२. २।४
३. बं०श० कोष १।११७४
४. म०व्यु० कोष, पृ० ४३८
५. क०हि० कोष पृ० ३२६
६. पा०धा० १।१२२, क्षीर० १।२३, धा०प्र०, १।२००, चा०धा० १।७६, जै०धा० १।४९३, शाक०धा० १।७९, कात०धा० १।७४, शाक०धा० १।५५३, है०धा० १।१६४, क०क०द्रु०धा० ११९
७. काश०धा० १।७९
८. २।१९

न षट्पदोऽसौ न **जुगुञ्ज यः** ।

वह भौंरा नहीं, जो **अव्यक्त मधुर ध्वनि न करे** ।

नवसाहसाङ्कचरित में[1] देखिये—

आम जुगुञ्जत्कलहंसपंक्तिः ।

मधुर **गुंजार** करती हुई कलहंसों की पंक्ति ।

गीतगोविन्द में[2] देखिये—

गुञ्जन्मधुव्रतमण्डली ।

शब्दायमान भ्रमर-समूह ।

प्रसन्नराघव में[3] देखिये—

यथोश्चक्रे गुञ्जन्मधुपमवतंसं रघुपतिः ।

रघुपति ने **गुंजन करने वाले** भ्रमरों से युक्त...

भामिनीविलास में[4] देखिये—

मञ्जु गुञ्जन्तु भृङ्गाः ।

ये भौंरे मनोहर **गुंजार करें** ।

बंगला भाषा[5] में गुञ्ज शब्द 'भ्रमरों के शब्द' के लिये ही प्रयुक्त होता है ।

कन्नड़ भाषा में[6] गुंजत् शब्द गूंजना, गुंजार करना और गुनगुनाना अर्थ में प्रयुक्त होता है ।

कूज्[7] (कूज) अव्यक्ते शब्दे (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम ।

हिक्कने — कविकल्पद्रुम ।

---

१. १।१८

२. २।१

३. ६।२६

४. १।४

५. बं०श०कोष १।७६८

६. क०हिं० कोष पृ० २३१

७. पा०धा० १।१३६, क्षीर० १।१३७, धा०प्र० १।२२०, चा०धा० १।७४, जै०धा० १।४६४, शाक०धा० १।७४, कात०धा० १।७४, काश०धा० १।५५, हैं०धा० १।१५१, क०क०द्रु०धा० ११७

टीकाकार चन्नवीर ने[1] कोयल की ध्वनि को कूज् धातु से व्यक्त किया है—

कूजति—शब्दयति, कूजकः—पिकः

अथर्व-संहिता में[2] भोंकने के अर्थ में कूज् धातु प्रयुक्त हुई है—

कुक्कुराविव **कूजन्तौ** ।

सा०भा०—**भोंकते हुए** कुत्तों की तरह (भगाते हैं) ।

षड्विंश-ब्राह्मण में[3] देखिये—

अथ यदास्य पृथिवी तटति स्फुटति **कूजति**···।

सुश्रुत-संहिता में[4] भ्रमर शब्द अर्थ में कूज् धातु प्रयुक्त हुई—

भृङ्गराजस्तु **कूजति** ।

रामायण के युद्धकाण्ड में[5] 'आर्तनाद' अर्थ में कूजन शब्द का प्रयोग देखिये—

कूजन् पृथिव्यां निपपात वीरः ।

सुग्रीव **आर्तनाद करते हुए** पृथिकी पर गिर पड़े ।

रामायण के युद्धकाण्ड में[6] ही पक्षियों के कलरव अर्थ में कूज् धातु देखिये—

तस्य सानुषु **कूजन्ति** नानाद्विजगणास्तथा ।

उस पर्वत के शिखरों पर नाना प्रकार के पक्षी **कलरव करते थे** ।

भागवत पुराण में[7] 'बांसुरी बजाने' के अर्थ में कूज् धातु का प्रयोग देखिये—

मधुपतिरवगाह्य चारयन् गाः सहपशुपालबलश्चुकूज वेणुम्' ।

उस वृन्दावन में पहुंचकर श्रीकृष्ण ने बलराम तथा अन्य ग्वाल बालों के साथ गौएं चराते हुए **वंशी बजाई** ।

रघुवंश[8] में कोयल के कूकने अर्थ में कूज् धातु प्रयुक्त हुई है—

---

१. काश०धा० १।७४
२. १।१००।२
३. ६।७
४. पा०धा०स० पृ० ९५
५. ३९।४१
६. ६७।१६४
७. १०।२१।२
८. २।५९

पुंस्कोकिलो मन्मधुरं चुकूज ।

पुरुष कोकिल ने मधुर स्वर में कूकना प्रारम्भ किया ।

ऋतुसंहार में[1] भ्रमर-गुंजन अर्थ में कूज् धातु प्रयुक्त हुई है—

कूजद्द्विरेफोऽप्ययमम्बुजस्य ।

कमल पर गुनगुनाता हुआ भ्रमर…।

नवसाहसाङ्कचरित में[2] आर्तनाद अर्थ में कूज् धातु प्रयुक्त हुई है—

पतितं चुकूज दहने न कस्य वा मृदुमालतीमुकुलमाल्यमाधय ।

कोमल मालती की कलियों की माला को आग में दहकते हुए देखकर किसकी मनोव्यथा चीत्कार न कर उठेगी ।

कुत्तों के भौंकने अर्थ में बुक्क और भष् धातु प्रयुक्त की जाती हैं ; कुत्तों के भौंकने अर्थ में अथर्वसंहिता में ही कूज् धातु का प्रयोग देखा गया है । पक्षियों के कलरव अर्थ में ही अधिकतर कूज् धातु का प्रयोग देखा जाता है ।

बंगला भाषा में[3] शब्द, कोलाहल, पक्षी-रव अर्थ में कूजन शब्द का प्रयोग होता है ।

मराठी भाषा[4] का कुंजण शब्द कूज् धातु से व्युत्पन्न है; कुंजण शब्द का अर्थ भ्रमरशब्द और शब्द है ।

कन्नड़ भाषा में[5] 'कूज' शब्द चिल्लाहट, कूक, गुंजन, गड़बड़ाहट अर्थों में प्रयुक्त होता है ।

हेष्[6] (हेषृ) अव्यक्ते शब्दे (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम ।

शब्दे — चान्द्र ।

---

१. ६।१६
२. १०।५२
३. बं०श०कोष १।६६३
४. म०व्यु०कोष पृ० १७१
५. क०हि०कोष पृ० १९३
६. पा०धा० १।४०१, क्षीर० १।४१०, धा०प्र० १।६२३, चा०धा० १।४५७, काश०धा० १।५३१, कात०धा० १।४३८, शाक०धा० १।२२२, है०धा० १।८४१, क०क०द्रु०धा० ३२९

स्वनेऽश्वानाम् — कविकल्पद्रुम ।

ह्रेष् धातु घोड़ों के हिनहिनाने के अर्थ में ही प्रयुक्त की जाती है ।

ऋक् संहिता में[1] देखिए—

प्र या वाजं न हेषन्तं पेरुमस्यंर्जुनि ।

तुम हिनहिनाते हुए घोड़ों के समान ।

रामायण के युद्धकाण्ड में[2] देखिए—

हयानां ह्रेषमाणानां शृणु सूर्य-ध्वनिं तथा;

हिनहिनाते हुए गोड़ों तथा बाजों की आवाजें भी सुनो ।

महाभारत के शल्यवध पर्व में[3] देखिए—

अश्वाविव ह्रेषन्तः ।

अश्वों के समान हिनहिनाते हुए ।

दूतवाक्य में[4] देखिए—

ह्रेषन्ते मन्दुरास्तद्यास्तुरगपरघटा ;

घोड़साल में उत्तम घोड़े हिनहिना रहे हैं ।

बुद्धचरित में[5] देखिए—

यदि ह्यह्रेषिष्यत बोधयन् जनम्;

यदि हिनहिनाकर लोगों को जगाता हुआ ।

बुद्धचरित[6] में ही एक अन्य प्रयोग देखिए—

संयताननो हनुस्वनं नाकृत नाप्यह्रेषत ।

संयत मुख होकर न जबड़ों से शब्द किया और न हिनहिनाया ।

शिशुपालबध में[7] हिनहिनाने अर्थ में ही प्रयोग देखिए—

जयतुरगा जिहेषिरे ।

विजयी घोड़े हिनहिनाने लगे ।

इस प्रकार हिनहिनाना अर्थ ही ह्रेष् धातु से अभिप्रेत है । स्वनेऽश्वानाम्

---

१. क०क० ५।८४।२

२. ३३।२७

३, ५४।३६

४. १।१५

५. ८।४१

६. ८।४५

७. १७।३१

अर्थ में ह्रेष् धातु का पाठ उचित ही है, किन्तु ऐसे व्यक्त धात्वर्थ कविकल्पद्रुम धातुपाठ में बहुत कम हैं।

बंगला भाषा में[1] ह्रेष शब्द अश्व-रव अर्थ में प्रयुक्त होता है। मराठी भाषा में[2] भी हेषा शब्द हिनहिनाने अर्थ का ही वाचक है—

'ह्रेषा नाम तु हिंसणें'[3]।

हिंसणें क्रिया हिनहिनाने अर्थ की ही वाचक है—

द्वारीं धुलोत गजसंघ हिंसोत तेजी

ह्रेष्[4] (ह्रेषृ) अव्यक्ते शब्दे (आ०) पाणिनीय।

स्वनेऽश्वानाम् कविकल्पद्रुम।

ह्रेष् धातु हिनहिनाने अर्थ में ही प्रयुक्त हुई मिली है, उदाहरणार्थ रामायण के युद्धकाण्ड[5] में देखिए—

हयानां ह्रेषितैरपि

महाभारत के विराट् पर्व में[6] देखिए—

सदा ह्रेषन्ति वाजिनः।

घोड़े सदा हिनहिनाते हैं।

बृह्[7] (बृहि) शब्दे (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, चान्द्र, शाकटायन,

बृह् धातु हाथियों के चिंघाड़ने अर्थ में प्रसिद्ध है, उदाहरणार्थ—

रामायण के युद्धकाण्ड[8] में देखिए—

गजानां बृंहितैःसार्धं हयानां ह्रेषितैरपि।

हाथियों के चिंघाड़ने, घोड़ों के हिनहिनाने से।

महाभारत के विराट् पर्व[9] में देखिए—

---

१. बं०श०कोष २।२३९१
२. म०व्यु०कोष पृ० ७७७
३. म०व्यु०कोष पृ० ७७४
४. पा०धा० १।४०१, क०क०द्रु०धा० ३२९
५. ४२।४०
६. ४७।२४
७. पा०धा० १।४७४, क्षीर० १।४८६, चा०धा० १।२५६, शाक०धा० १।८८
८. ४२।४०
९. ४७।२४

गजानां बृंहितैः । हाथियों की चिंघाड़ों से । महाभारत के शल्यवध पर्व[1] में देखिए—

बृंहन्ताविव कुञ्जरौ ।

किरातार्जुनीय में[2] देखिए—

आतेनुश्चकितचकोरनीलकण्ठान्कच्छान्तानमरमहेभबृंहितानि ।

देवताओं के विशाल हाथियों की चिंघाड़ों ने कच्छ में निवास करने वाले चकोर और मयूरादि को भी आश्चर्यचकित कर दिया ।

शिशुपालवध[3] में देखिए—

मन्द्रैर्गजानां रथमण्डलस्वनैर्निजुह्नुवे तादृशमेव बृंहितम् ।

रथ-समूहों की गम्भीर ध्वनियों के साथ वैसा ही गम्भीर हाथियों का गरजना छिप गया ।

बंगला भाषा[4] में बृंह शब्द अर्थ का वाचक है ।

कन्नड़ भाषा[5] में बृहित शब्द गर्जता हुआ अर्थ में प्रयुक्त होता है ।

ह्लाद्[6] (ह्लाद) अव्यक्ते शब्दे (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, काशकृत्स्न, कातन्त्र, ।

शब्दे — चान्द्र, जैनेन्द्र, शाकटायन, हैम, ।

स्वने — कविकल्पद्रुम ।

शतपथ ब्राह्मण[7] में बिजली की गरज अर्थ में ह्लादुनयः शब्द का प्रयोग हुआ है—

वियदर्चिरशनिरङ्गारा ह्लादुनयो विस्फुलिङ्गा ।

बिजली लौ है, चमक अंगारा है, गरज चिनगारियां हैं ।

निरुक्त[8] में देखिए—

---

१. ५४।३६

२. ७।३९

३. १२।१५

४. बं०श०कोष २।१६०४

५. क०हि०कोष पृ० ३६५

६. पा०धा० १।२२, क्षीर० १।२२, धा०प्र० १।२५, चा०धा० १।३२४, काश०धा० १।३६२, कात०धा० १।३११, शाक०धा० १।२१, है०धा० क०क०द्रु०धा० २१०

७. १४।६।१।१३

८. १।३

ह्रदो ह्रादते: **शब्दकर्मण:** ।

हरिवंश पुराण[1] में देखिए—

चञ्चद्विद्युद्गणाविद्धा घोरा **निर्ह्रादकारिण:** ।

किरातार्जुनीय[2] में **भेरी-शब्द** अर्थ में ह्रादम् शब्द का प्रयोग देखिए—

संघर्षयोगादिव मूर्च्छितानि, ह्रादं निगृह्णन्ति न दुन्दुभीनाम् ।

(हिनहिनाहट और चिंघाड़ें) जो अन्योन्य स्पर्द्धा के कारण वृद्धि को प्राप्त हो जाते हैं; भेरी के **निर्घोष को** तिरस्कृत नहीं कर रहे हैं ।

भट्टिकाव्य[3] में **पटह** में ह्राद् धातु का प्रयोग हुआ है—

जह्रादे पटहैर्भृशम् ।

पटहों ने अतिशय **शब्द किया** ।

बंगला भाषा[4] में अव्यक्त शब्द, वाद्यादि घोष अर्थ में ह्राद शब्द का प्रयोग होता है ।

प्राकृत भाषा में हरइ शब्द, शब्द अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—सेतुबन्ध[5] में देखिए—

तिमीण साअरमज्झे—णीहरह रआ ।

(तिमीनां सागरमध्ये—निर्ह्रदति रव:)

टीका—निर्ह्रदति—प्रतिशब्दं जनयति । यथा संवर्त: प्रलयस्तत्कालीनमेघानां रवो निह्रादीभवतीत्यर्थ: ।

स्वन्[6] (स्वन) शब्दे (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

स्वन् धातु गूँजना, शब्द करना, झंकार अर्थों में प्रयुक्त हुई मिली है ।

---

१. ४२।१४

२. १६।८

३. १४।४

४. बंश० कोष २।२३६१

५. ५।७१

६. पा०धा० १।५५७, क्षीर० १/५५६, धा०प्र० १।८२६, चा०धा० १।५५६, जै०धा० १।४६२, काश०धा० १।६३२, कात०धा० १।५४१, शाक०धा० १।३५३, है०धा० १।३८७, क०क०द्रु०धा० २२४

ऋक् संहिता में[1] रथ का शब्द करना अर्थ में स्वन् धातु का प्रयोग देखिए—

आ यो बना तातृषाणो न याति वार्ण पधा रथ्येव **स्वानीत्** ।

जिस प्रकार रथ युद्धमार्ग से जाता हुआ शब्द करता है, उसी प्रकार अग्नि जल्दी-जल्दी वृक्षसमूहों को जलाती हुई प्रकाशित करती है ।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में[2] देखिए—

स्वनेभ्यः पर्णकम् ।

भा०—स्वनेभ्यः सशब्दजलाभिमानिभ्यः पर्णकं सविषं पर्णं जलस्योपरि स्थापयित्वा मत्स्यग्राहिणम् ।

रामायण के युद्धकाण्ड में[3] दिशाओं का गूंजना अर्थ में स्वन् धातु का प्रयोग हुआ है—

यस्य लाङ्गूलशब्देन **स्वनन्ति** प्रदिशो दश ।

जिसकी पूँछ के पटकने की आवाज से दसों दिशाएँ **गूँज उठती** हैं।

महाभारत के विराट् पर्व[4] में शङ्ख के शब्द अर्थ में स्वनन्तम् शब्द का प्रयोग देखिए—

स्वनन्तम् महाशङ्खम् ।

भागवत पुराण में[5] **चिल्लाना** अर्थ में स्वनयन् शब्द का प्रयोग हुआ है—

स्वनयन् क्वचिन्मूर्च्छितः—।

आर्तस्वर से **चिल्लाता** रहता और मूर्च्छित हो गया ।

अभिज्ञान शाकुन्तल में[6] गुंजन अर्थ में प्रयोग देखिए—

रहस्याख्यायीव **स्वनसि** मृदु कर्णान्तिकचरः ।

गुप्त बात को कहने वाले के समान कान के पास विचरण करते हुए मधुर स्वर से **गुंजार** कर रहे हो ।

बुद्ध-चरित में[7] वृक्ष-शब्द अर्थ में स्वन् धातु प्रयुक्त हुई है—

---

१. २. ४. ६.
२. ३।४।१२।१
३. २६।१६
४. ४६।८
५. ५।२६।१६
६. १।२०
७. १२।१२१

न सस्वनुर्वनतरवो निलाहताः कृतासने भगवति निश्चितात्मनि ।

जब निश्चयपूर्वक भगवान् ने आसन बांधा तब वायु के चलने पर भी वन के वृक्षों से शब्द नहीं हुआ ।

शिशुपालवध में[1] झनझन शब्द अर्थ में स्वनितम् शब्द का प्रयोग देखिए—

स्रस्तभुजयुगलवलयस्वनितं प्रति क्षुतमिवोपशुश्राव।

शिथिल दोनों भुजाओं से गिरे हुए कंकण की झंकार को मानों छींक के समान सुना ।

वि उपसर्गपूर्वक स्वन् धातु भोजन करते समय होने वाले शब्द अर्थ की वाचक है ।

पाणिनि ने अष्टाध्यायी[2] में इसके लिए सूत्र दिया है—

वेश्च स्वनो भोजने ।

भण्[3] (भण) शब्दार्थः (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र।
शब्दे जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

भण् धातु शब्द अर्थ में पढ़ी गई है जबकि भण् धातु स्पष्ट वाक् अर्थ में प्रयुक्त होती है, अतः भण् व्यक्तायां वाचि धात्वर्थनिर्देश होना चाहिए था । ऋक्-संहिता में मूर्धन्य णकार के स्थान पर दन्त्य नकार प्रयुक्त हुआ है ।

ऋक्-संहिता में[4] देखिए—

एत वि पृच्छ, किमिदं भणन्ति ।

ये नदियाँ क्या बोल रही हैं ? हे ऋषि, तुम नदियों से पूछो ।

ऋक्-संहिता में[5] ही एक अन्य प्रयोग देखिए—

ये स्तुतिपाठ वृत्र का वध कर ब्रह्महत्यारूपी पाप को प्राप्त किए हुए इन्द्र को क्या कहते हैं ।

---

१. १५।६१

२. ८।३।६९

३. पा०धा० १।६७, क्षीर० १।३०८, धा०प्र० १।४४७, चा०धा० १।१४७, जै०धा० १।४६५, काश०धा० १।२०६, कात०धा० १।१४६, शाक० धा० १।६६७, है०धा० १।२६४, क०क०द्रु०धा० १७६

४. ४।१८।६

५. ४।१८।७

बृहज्जाबाल उपनिषद् में भण्[1] धातु का प्रयोग देखिए—

विभूतिरुद्राक्षयोर्माहात्म्यं बभाण।

तेजोबिन्दु उपनिषद् में[2] देखिए—

देहोऽहमिति या बुद्धिः सा चाविद्येति भण्यते।

विक्रमोर्वशीय में[3] देखिए—

पेलवः—ततस्तया इति भणितव्ये पुरूरवसीति तस्या निर्गता वाणी।

पेलव—तब उर्वशी को कहना तो चाहिए था पुरुषोत्तम के प्रति, परन्तु उसके मुख से निकल गया पुरूरवा के प्रति।

भट्टिकाव्य में[4] देखिए—

अभाणीत् माल्यवान् युक्तम्।

माल्यवान् ने उचित कहा था।

नैषधीयचरित[5] में देखिए—

दैत्यनीतेः पथि सार्थवाहः काव्यः स काव्येन सभामभाणीत्।

दैत्यों की नीति के पथ-प्रदर्शक उस शुक्राचार्य ने कविता से सेना का वर्णन किया।

बंगला भाषा में[6] भी भण् शब्द व्यक्त शब्द अर्थ में प्रयुक्त होता है।

मराठी भाषा[7] भणणें क्रिया स्पष्ट वाक् अर्थ में प्रयुक्त होती है, भण् शब्दे धातु से व्युत्पन्न है।

क्वण्[8] (क्वण) शब्दार्थः (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र शब्दे जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

---

१. १।१

२. ५।६४

३. ३।१ गद्य

४. १४।१६

५. १०।५९

६. ब०श०कोष २।१६५४

७. म०व्यु०कोष पृ० ५६१

८. पा०धा० १।२९७, क्षीर० १।३१२, धा०प्र० १।४५०, चा०धा० १।१४७, जै०धा० १।४६५, काश०धा० १।२०६, कात०धा० १।१४६, शाक०धा० १।७००, है०धा० १।२७१, क०क०द्रु०धा० १७२

यास्क ने निरुक्त में[1] धीमे से बोलना अर्थ में क्वण् धातु प्रयुक्त की है—
अवभृथोऽपि निचुम्पुण उच्यते, नीचैरस्मिन् **क्वणन्ति** ।

भागवत पुराण में[2] देखिए—

वेणुं **क्वणन्तम्** ।

मुरली **बजाते हुए** ।

यज्ञादि शुभ कर्म भी निचुम्पुण कहलाते हैं, क्योंकि यज्ञादि कर्म में धीरे **शब्द करते** हैं अतः निचुङ्कुण ही निचुम्पुण हो गया ।

मेघदूत में[3] झङ्कार अर्थ में क्वणित शब्द का प्रयोग हुआ है—

पादन्यासैः **क्वणित**रशनास्तत्र ।

वहाँ पैरों की गति के साथ जिनकी मेखलाएँ **बजती हैं** ।

कुमारसम्भव में[4] गान अर्थ में क्वणत् शब्द का प्रयोग देखिए—

गङ्गाप्रवाहोक्षितदेवदारु—किंचित्**क्वण**त्किन्नरमध्युवास ।

जहाँ के देवदारु वृक्षों को गंगा की धारा सींचती थी और गन्धर्व दिन रात **गाते** थे ।

ऋतुसंहार में[5] झङ्कार अर्थ में क्वण् धातु का प्रयोग देखिए—

क्वणितकनककाञ्चीं मत्तहंसस्वनेषु ।

मत्तहंसों की ध्वनि में उनकी सुनहली करधनी की **रुनझुन** ।

भट्टिकाव्य में[6] **गुंजन** अर्थ में क्वण् धातु प्रयुक्त हुई है—

परिक्षिप्ताः **क्वणद्**भिरलिगायकैः ।

शब्द करने वाले भ्रमररूप गवैयों से घिरे हुए···।

हितोपदेश में[7] **बजाने** के अर्थ में **क्वणन्** शब्द प्रयुक्त हुआ है ।

इति घोषयतीव डिण्डिमः करिणो हस्तिपकाहतः **क्वणन्** ।

हाथी की पीठ पर रखे नगाड़े को महावत बजाता है, तो मानों नगाड़ा कहता है—।

---

१. ५।३
२. १०।१५।४२
३. पूर्वमेघ ३७
४. १।५४
५. ३।२४
६. ६।८५
७. २।८६

उपसर्गपूर्वक क्वण् धातु वीणा-शब्द अर्थ की वाचक है ।

अष्टाध्यायी[1] में इसके लिए सूत्र है—

क्वणो वीणायां च ।

कन्नड़ भाषा में[2] शब्द, झंकार, ध्वनि अर्थों में क्वण शब्द प्रयुक्त होता है ।

बंगला भाषा में[3] क्वण शब्द अव्यक्त ध्वनि, शब्द, वीणा के बाद का वाचक है ।

रस्[4] (रस) शब्दे (प०)—पाणिनीय, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

शब्दार्थ: क्षीरतरंगिणी ।

रस् धातु गर्जन करना, ज़ोर से शब्द करना, नूपुरध्वनि अर्थों में प्रयुक्त हुई है—

शतपथ ब्राह्मण[5] में देखिए—

अथ यदरसदिव स रासभोऽभवद् ।

जो रेंका, वह रासभ हो गया ।

निरुक्त[6] में देखिए—

रसा नदी रसतेर्शब्दकर्मण: ।

रामायण के उत्तरकाण्ड[7] में देखिए—

ररास राक्षसो हर्षात् सतडित्तोयदो यथा ।

वह राक्षस विद्युत् सहित जलधर के समान बड़े हर्ष से गर्जना करने लगा ।

हरिवंश पुराण[8] में देखिए—

---

१. ३।३।६५

२. क०हि०कोष पृ० २१३

३. बं०श०कोष १।७००

४. पा०धा० १।४५७, क्षीर० १।४६९, धा०प्र० १।७१३, चा०धा० १।२४०, जै०धा० १।४९६, काश०धा० १।३०२, कात०धा० १।२३२, शाक०धा० १।८६६, है०धा० १।५५२, क०क०द्रु०धा० ३३४

५. ६।१।१।११

६. ११।३

७. ७।७।२८

८. ४२।१५

दीप्ततोयाशनीपातैः···रराम ।

तपे हुए पानी एवं बिजली के गिरने से (उसने) **शब्द किया ।**

रघुवंश[1] में देखिए—

करीव वन्यः परुषं **रराम ।**

जंगली गजराज के समान गरजा ।

कुमारसम्भव[2] में देखिए—

रराम विरसं व्योम श्येनप्रतिरवच्छलात् ।

विह्वल होकर बाज़पक्षियों की भयानक आवाज में रुदन करने लगे ।

शिशुपालवध[3] में गर्जन अर्थ में ही रमन् कृदन्त शब्द का प्रयोग देखिए—

रमन्नरोदीद्भृशमम्बुवर्षव्याजेन यस्या बहिरम्बुवाहः ।

रमन्=गर्जन्; मेघ शब्द करता हुआ पानी बरसाने के कपट से बहुत रोता था ।

वेणीसंहार[4] में वाद्य-शब्द के अर्थ में प्रयोग देखिए—

राजन्योपनिमन्त्रणाय **रमति** स्फीतं दुन्दुभिः ।

यश की दुन्दुभि राजा को निमन्त्रित करने के लिए जोर से **बज रही है ।**

गीतगोविन्द में[5] नूपुर-ध्वनि के अर्थ में रम् धातु का प्रयोग देखिए—

रमतु रसनाऽपि ।

प्राकृत ग्रन्थ गाथा-सप्तशती[6] में शब्द-करना अर्थ में रमह शब्द का प्रयोग हुआ है—

उपहतो उक्सेतुं **रमहं** व मेहो महिं उअह ।

पृथ्वी को प्रयत्न से मानों ऊपर खींचने में असमर्थ होकर **आवाज़ कर रहा है ।**

---

१. १६।१८
२. १६।१२
३. ३।४१
४. १।२५
५. १०।१९।६
६. ५।३६

रण्[1] (रण) शब्दार्थः (प०)—	पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र ।
शब्दे	जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम ।
रुति	कविकल्पद्रुम ।

संहिताओं में स्तुति करना अर्थ में रण् धातु प्रयुक्त हुई है ।

उदाहरणार्थ—ऋक्-संहिता में[2] देखिए—

यस्मिन्विश्वा अधि श्रियो **रणन्ति सप्त संसदः** ।

जिस इन्द्र में सबसे अधिक कान्ति विद्यमान है; सप्त-संख्यक होता जिसकी **स्तुति करते हैं** ।

सा०मा०—**रणन्ति—शब्दयन्ति, स्तुवन्ति** ।

शिशुपालवध[3] में नूपुर की झंकार अर्थ में रणद्भिः शब्द का प्रयोग हुआ है—

रणद्भिराघट्टनया नभस्वतः ।

रणद्भिः—ध्वनद्भिः ।

वायु के आघात से पृथक् **ध्वनि करती** (वीणा को) ।

कर्पूरमंजरी में[4] भी **झंकार** अर्थ में ही प्रयोग देखिए—

रणन्मणिनूपुरं न कस्य मनमोहनं हिन्दोलनम् ।

मणि-नूपुरों की **झंकार** से युक्त यह झूलना किसके मन को अच्छा नहीं लगता ।

इस प्रकार वैदिक समय में रण् धातु 'स्तुति करना' अर्थ में प्रचलित थी, और बाद में 'झंकार' अर्थ में प्रचलित हो गई ।

कन्नड़ भाषा[5] में रण शब्द शोर, कोलाहल अर्थ का वाचक है ।

बंगला भाषा[6] में रण शब्द शब्द और वीणा-ध्वनि का वाचक है ।

---

१. पा०धा० १।२६७, क्षीर० १।३०२, धा०प्र० १।४४५, चा०धा० १।२४७, जै०धा० १।४६५, काश०धा० १।२०६, कात०धा० १।२३२, शाक०धा० १।६६३, है०धा० १।२६०, क०क०द्रु०धा० १७७

२. ८।९२।२०

३. १।१०

४. २।३२

५. क०हि०कोष पृ० ३८७

६. बं०श०कोष २।१८८७

गै[1] शब्दे (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम।

गाने कविकल्पद्रुम।

गैं धातु **गान, स्तुति करना** अर्थों में प्रयुक्त होती है।

उदाहरणार्थ ऋक् संहिता[2] में देखिए—

गायन्ति त्वा गायत्रिणः।

हे इन्द्र, उद्गाता तुम्हारी **स्तुति करते** हैं।

शतपथ ब्राह्मण[3] में देखिए—

यो **गायति** तस्मिन्नेवैता निमिश्लत।

जो **गाता बजाता है**, उस पर ये (स्त्रियां) मोहित हो जाती हैं।

ताण्ड्य ब्राह्मण[4] में देखिए—

एष वै सोमस्योद्गीथो यत्पथते सोमोद्गीतमेव साम **गायति**।

छान्दोग्य उपनिषद्[5] में देखिए—

अप्राणन्ननपानन् साम **गायति**।

बालचरित में देखिए—

गन्धर्वाप्सरसो **गायन्ति**।

गन्धर्व और अप्सरायें **गाती हैं**।

राजतरंगिणी[7] में देखिए—

गायद् भृङ्गनिवारका विस्तीर्णकर्णा गजाः।

कलगान करने वाले, भौंरों को भगा देने वाले मस्त गजराज को विस्तीर्णकर्ण कहते हैं।

प्राकृत ग्रन्थ गाथा सप्तशती[8] में देखिए—

---

१. पा०धा० १।६४२, क्षीर० १।६५२, धा०प्र० १।६२१, चा०धा० १।२६६, जै०धा० १।४९७, काश०धा० १।३३१, कात०धा० १।२५६, शाक०धा० १।४१४, है०धा० १३६, क०क०द्रु०धा० ७६

२. १।१०।१

३. ३।२।४।६

४. ६।६।१।१८

५. १।३

६. ५।१८

७. ३।१९४

८. ६.१४६

आलोअन्त दिसाओ ससन्त जम्भन्त गन्त रोद्यन्त ।

बटोही कभी दिशाओं को देखता, कभी सांस लेता, कभी जंभाई लेता, कभी गाता और कभी रोता ।

बंगला भाषा[1] गान शब्द गै धातु से व्युत्पन्न है ।

कन्नड़ भाषा[2] में भी गायन शब्द गीत अर्थ में प्रयुक्त होता है । गायन शब्द गै शब्दे धातु से व्युत्पन्न है ।

गर्ज्[3] (गर्ज) शब्दे (प०) पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम ।

ऊर्जाशब्दे कविकल्पद्रुम ।

गर्ज् धातु गरजना, ज़ोर ज़ोर से शब्द करना अर्थ में प्रसिद्ध है, उदाहरणार्थ—

श्रीरामपूर्वतापिनि उपनिषद्[4] में देखिए—

अगर्जत् अनुजः ।

छोटा भाई **गरजा** ।

रामायण के युद्धकाण्ड'[5] में देखिए—

गजं स्वरं **गर्जति** वै महात्मा, महोदरो नाम स एष वीरः ।

ज़ोर ज़ोर से जो **गर्जना कर रहा है**, वह महामनस्वी वीर महोदर नाम से प्रसिद्ध है ।

विष्णु पुराण[6] में देखिए—

सामस्वर ध्वनिः श्रीमा **जगर्ज** परिघर्घरम् ।

सामस्वररूपी ध्वनि वाले धरणीधर ने घर्घर शब्द से **गर्जना** की ।

मृच्छकटिक[7] में देखिए—

---

१. बं०श०कोष० १।७८८

२. क०हि०कोष पृ० २२८

३. पा०धा० १।१३८, क्षीर० १।१३६, धा०प्र० १।२२३, चा०धा० १।३६, जै०धा० १।४६३, काश०धा० १।७६, कात०धा० १।७६, शाक०धा० १।५७८, है०धा० १।१६३, क०क०द्रु०धा० ११६

४. ५।६

५. ५६।१७

६. १।४।२५

७. ५।२३

गर्ज वा वर्ष वा शुक्र ।

यदि बादल गरजता है तो **गरजे** ।

भट्टिकाव्य[1] में देखिए—

गर्जन् हरिः साऽम्भसि शैलकुञ्जे ।

सिंह जलयुक्त पर्वत-निकुंज में **गर्जन करता हुआ** ।

दाठावंस[2] प्राकृत ग्रन्थ में देखिए—

तस्मिं स्वणे वसुमती सह भूधरेहि **गज्जिति** ।

उसी क्षण पर्वतों-सहित पृथ्वी ने भयानक **शब्द किया** ।

बंगला भाषा[3] में गज शब्द मेघ के शब्द अर्थ में प्रयुक्त होता है । बंकिमचन्द्र ग्रन्थावली[4] में गर्ज शब्द का प्रयोग भी हुआ है ।

कन्नड़ भाषा[5] में गर्जिसु क्रिया गर्जन करना, भयंकर ध्वनि करना अर्थ में प्रयुक्त होती है ।

ध्वन्[6] (ध्वन) शब्दे (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम ।

रवे कविकल्पद्रुम ।

कन्नड़ टीकाकार चन्नवीर[7] ने ध्वनति—आर्तशब्दं करोति व्याख्या की है ।

काठक संहिता[8] में ध्वन् धातु का प्रयोग देखिए—

वायव्यो वा एष पुरासीत् । सा वाक्सृष्टा न व्यावर्तताध्वनदेव ।

किरातार्जुनीय[9] में प्रतिध्वनि के अर्थ में ध्वन् धातु प्रयुक्त हुई है—

---

१. २।९

२. ५।२६

३. बं०श० कोष १।७७१

४. वही

५. क०हि० कोष पृ० २२४

६. पा०धा० १।५४०, क्षीर० १।५६५, धा०प्र० १।८३०, चा०धा० १।४७ जै०धा० १।४९२, काश०धा० १।२०६, कात०धा० १।५३०, शाक०धा० १।३३८, है०धा० १।३७९, क०क०द्रु०धा० २२१

७. काश०धा० १।२०६

८. २७।३

९. १५।३४

दध्वान ध्वनयन्नाशाः स्फुटन्निव धराधरः ।

इन्द्रनील पर्वत ने मानों विदीर्ण होते हुए दिशाओं को प्रतिध्वनित करते हुए शब्द किया ।

गीतगोविन्द[1] में भ्रमर के शब्द अर्थ में ध्वन् धातु का प्रयोग हुआ है—

ध्वनितमधुपसमूहे क्वणमपि दधाति ।

भ्रमरों के शब्द करने पर कान ढक लेता है ।

भमिनी-विलास[2] में मेघ-गर्जन अर्थ में ध्वन् धातु का प्रयोग देखिए—

धीरं धीरं ध्वनति नवनीलो जलधरः ।

नवीन और श्यामल मेघ गम्भीर ध्वनि कर रहा है ।

महाभाष्य पस्पशाह्निक में शब्द को ध्वनि कहा गया है—

शब्दं कुरु, मा शब्दं कार्षीः, शब्दकायं माणवक इति ध्वनिं कुर्वन्नेवमुच्यते । तस्माद् ध्वनिः शब्दः ।

ध्वनि करते हुए लड़के को कहा जाता है—अधिक शब्द मत करो, यह लड़का शब्दकारी है, अतः ध्वनि शब्द है ।

बंगला भाषा[3] में ध्वन शब्द शब्द अर्थ का वाचक है ।

रास्[4] (रासृ) शब्दे (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

संस्कृत भाषा[5] में रासभ गदहे का वाचक है ।

प० चारुदेव[1] शास्त्री ने गर्दभ के शब्द अर्थ में ही रास् धातु का प्रयोग माना है । संस्कृत-साहित्य में इसके प्रयोग अनुपलब्ध हैं ।

कन्नड़ भाषा[2] में रास शब्द शोर, कोलाहल अर्थ का वाचक है ।

---

१. ५।४
२. १।६०
३. बं०श० कोष १।११६८
४. पा०धा० १।४०४, क्षीर० १।४१३, धा०प्र० १।६२७, चा०धा० १।४५७, काश०धा० १।५३७, कात०धा० १।४४१, शाक०धा० १।२२५, है०धा० १।८४६, क०क०द्रु०धा० ३४०
५. २।६।७७
६. व्या०च० पृ० ३।६२
७. क०हि० कोष पृ० ३८८

नास्[1] (णासृ) शब्दे (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम।

ध्याने कविकल्पद्रुम।

नास् धातु गर्दभ के शब्द अर्थ में प्रयुक्त होती है।[2]

कण्[3] (कण) शब्दे (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम।

आर्तस्वरे कविकल्पद्रुम।

टीकाकार चन्नवीर[4] कर्तयति अर्थ में कणति तिङन्त रूप की व्याख्या करते हैं—

निरुक्त[5] में कम बोलने के अर्थ में कण् धातु की व्याख्या की गई है—

कणतिः शब्दाणूभावे भाषतेऽनुकणीति।

कण् धातु बहुत मन्द बोलने अर्थ में प्रयुक्त होती है; जैसे—अनुकणति—बहुत धीरे बोलता है।

प्राकृत ग्रन्थ पउमचरिअ में[6] शब्द अर्थ में कणकणन्ति क्रिया का प्रयोग हुआ है—

खणखणखणन्ति खग्गा, गाढं **कणकणकणन्ति सत्तीओ**।

उनके शरीर पर गिरती हुई तलवारें खन-खन करती हैं, शक्तियां **कण-कण करती हैं**।

---

१. पा०धा० १।४०४, क्षीर० १।४१३, धा०प्र० १।६२६, चा०धा० १।४५७, जै०धा० १।४६१, काश०धा० १।५३५, कात०धा० १।४४१, शाक०धा० १।२२६, है०धा० १।८५०, क०क०द्रु०धा० ३३४

२. व्या०च० ३।६२ पृ०

३. पा० धा० १।२६७, क्षीर० १।३०२, धा०प्र० १।४४६, चा०धा० १।१४७, जै०धा० १।४६५, काश० धा० १।२०६, कात०धा० १।१४६, शाक०धा० १।७०१, है०धा० १।२७०, क०क०द्रु०धा० १७१

४. १।२०६

५. ६।३०

६. २६।५३

इस प्रकार कण् धातु धीरे-धीरे बोलना और अव्यक्त शब्द अर्थ में प्रयुक्त होती है।

हिक्क् (हिक्क)[1] अव्यक्ते शब्दे (उ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, कातन्त्र, शाकटायन, हैम।

शब्दे — चान्द्र।

कूजे — कविकल्पद्रुम।

हिक्क् धातु हिचकी अर्थ में प्रयुक्त होती है। श्वासनली के उपरिभाग के अवरुद्ध होने पर हिचकी आती है।

चरक-संहिता में[2] देखिए—

प्राणोदकान्नवाहीनि स्रोतांसि सकफोऽनिलः हिक्काकरोति संरुध्य तासां लिङ्गं पृथक् शृणु।

कफ के साथ वायु कुपित होकर प्राणवाही, उदकवाही अन्नवाही स्रोतों में रुकावट उत्पन्न कर हिक्का रोग को उत्पन्न करती है।

सुश्रुत संहिता में[3] देखिए—

हिक्काश्वासपिपासार्तं मूढं विभ्रान्तलोचनम्।

महाभारत के शान्तिपर्व[4] में देखिए—

हिक्कका प्रोच्यते ज्वरः।

बंगला[5] भाषा में हिक्किका शब्द हिचकी के लिए प्रयुक्त होता है और हिक्क शब्द कूजन अर्थ में प्रयुक्त होता है।

मराठी भाषा में[6] हिचकी अर्थ में ही हिक्क शब्द का प्रयोग होता है।

---

१. पा०धा० १।५६४, क्षीर० १।६०४, धा०प्र० १।८६४, चा०धा० १।५८८ काश०पा० १।५६६, शाक०धा० १।८६८, है०धा० १।८८६

२. चिकित्सा-स्थान ८।१७

३. १।३३।१७

४. १२।१२०६३ पा०धा०स० पृ० ५५४

५. बं०श० कोष २।२३६१-६२

६. म०श० कोष ७।३२०२ पृ०

गृज्[1] (गृज) शब्दार्थः (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र ।

शब्दे — जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, शाकटायन, हैम ।

ध्वनौ — कविकल्पद्रुम ।

मराठी भाषा[2] में गुरगुज शब्द गृज् धातु से व्युत्पन्न है; गुरगुज वाद्य-विशेष है। इस प्रकार गृज् शब्दे से तात्पर्य वाद्य-शब्द है।

द्रेक् ध्रेक्[3] (द्रेकृ ध्रेकृ) शब्दे (आ०)—पाणिनीय, धातुप्रदीप, काशकृत्स्न, कातन्त्र ।

शब्दोत्साहे — क्षीरतरंगिणी, जैनेन्द्र, शाकटायन, हैम ।

मराठी भाषा[4] में 'ढेक (ध्रेक्) र शब्द द्रेक् क् शब्दे धातु से व्युत्पन्न है और बन्दूक के शब्द का वाचक है ।

गज्[5] (गज) शब्दार्थः (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप चान्द्र, कातन्त्र ।

शब्दे — जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, शाकटायन, हैम ।

स्वने — कविकल्पद्रुम ।

मराठी भाषा[6] में गज शब्द विशिष्ट ध्वनि का वाचक है और गजर शब्द वाद्य-विशेष का वाचक है ।

कन्नड़ भाषा[7] में गज शब्द शोर, कोलाहल अर्थ का वाचक है ।

१. पा०धा० १।१५५, क्षीर० १।१५६, धा०प्र० १।२४५, चा०धा० १।८० जै०धा० १।४६२, काश०धा० १।७६, कात०धा० १।७६, शाक०धा० १।५७५, है०धा० १।१६५, क०क०द्रु०धा० ११६
२. म०व्यु० कोष पृ० २३६
३. पा०धा० १।६७, क्षीर० १।६५, धा०प्र० १।७६-७७, जै०धा० १।४८६ काश०धा० १।४०५, कात०धा० १।३२८, शाक०धा० १।३४, है०धा० १।६१४-१५, क०क०द्रु०धा० ८३
४. म०व्यु० कोष पृ० ३५६
५. पा०धा० १।१५५, क्षीर० १।१५६, धा०प्र० १।८४३, चा०धा० १।८०, जै०धा० १।४६२, काश०धा० १।७६, कात०धा० १।७६, शाक०धा० १।५७४, है०धा० १।१७१, क०क०द्रु०धा० ११६
६. म०व्यु० कोष०, पृ०
७. क०हि० कोष पृ० २२०

बंगला भाषा[1] में गज शब्द का प्रयोग हाथी के लिए किया जाता है।

रम्भ्[2] (रभि) शब्दे (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

भागवत पुराण[3] में रम्भ् धातु रंभाना अर्थ में प्रयुक्त हुई मिली है—

रम्भमाणः खरतरं, पदा च विलिखन् महीम्।

(बैल) बड़े जोर से रंभाता, खुरों से पृथ्वी खोदता हुआ।

इस प्रकार रम्भ शब्दे धात्वर्थ से तात्पर्य रंभाना है।

रम्ब[4] (रबि) शब्दे (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, कातन्त्र, हैम, कविकल्पद्रुम।

व्याकरण-चन्द्रोदय[5] में रंभाना अर्थ में रम्म् धातु निर्दिष्ट है। संस्कृत साहित्य में इसके प्रयोग अनुपलब्ध हैं।

अम्ब[6] (अबि) शब्दे (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

बंगला भाषा[8] में अम्ब धातु गाय के शब्द अर्थ में प्रयुक्त होती है।

---

१. ब०श०कोष

२. पा०धा० १।२६४, क्षीर० १।२७१, चा०धा० १।३६१, जै०धा० १।४६०, काश०धा० १।४७०, कात०धा० १।३६१, शाक०धा० १।१३८, है०धा० १।७७८, क०क०द्रु०धा० २४७

३. १०।३६।२

४. पा०धा० १।२५७, क्षीर० १।२६४, धा०प्र० १।३७८, कात०धा० १।३८४, है०धा० १।७६४, क०क०द्रु०धा० २४२

५. ३।५६ पृ०

६. पा०धा० १।२५७, क्षीर० १।२६४, धा०प्र० १।३८०, चा०धा० १।४०२, जै०धा० १।४६०, काश०धा० १।२०५, कात०धा० १।३८४, शाक०धा० १।१४०, है०धा० १।७६५, क०क०द्रु०धा० २३६

७. बं०श०कोष १।१७१

स्यम्[1] (स्यमु) शब्दे (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम।

ध्वनने कविकल्पद्रुम।

मराठी भाषा[2] में झमझम शब्द स्यम् शब्दे धातु से व्युत्पन्न है। झमझम मराठी भाषा में जंजीरों के शब्द को कहते हैं।

कल् (कल) शब्दे (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, शाकटायन, हैम।

रुतौ कविकल्पद्रुम।

कोलाहल:=कलकल:[4]

मराठी भाषा[5] में कल्ला शब्द कल् शब्दे धातु से व्युत्पन्न है। कल्ला शब्द शोर और जोर से गरजना अर्थ का वाचक है।

कल्ल्[6] (कल्ल) अव्यक्ते शब्दे (आ०)—पाणिनीय, धातुप्रदीप, चान्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र।

अशब्दे क्षीरतरंगिणी, हैम।

कूजने शब्दे कविकल्पद्रुम।

मराठी भाषा[7] में कल शब्द कल्ल् शब्दे धातु से व्युत्पन्न है। कल शब्द कोलाहल का वाचक है।

---

१. पा०धा० १।६३२, क्षीर० १।५६५, धा०प्र० १।८२८, काश०धा० १।६३२, कात०धा० १।५४१, शाक०धा० १।३५२, है०धा० १।३८७, क०क०द्रु० धा० २५६

२. म०व्यु०कोष पृ० ३२५

३. पा०धा० १।३२५, क्षीर० १।३३०, धा०प्र० १।१५३, शाक०धा० १।१६१, है०धा० १।८१४, क०क०द्रु०धा० २७०

४. अ० कोष १।६।२५

५. म०व्यु०कोष पृ० १४६

६. पा०धा० १।३२६, क्षीर० १।३३३, धा०प्र० १।४०७, चा०धा० १।४३७ काश०धा० १।५०२, कात०धा० १।४२०, है०धा० १।८१५, क०क०द्रु० धा० २७१

७. म०व्यु०कोष पृ० १४३

पिट्[1] (पिट) शब्दे (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम ।

ध्वनौ कविकल्पद्रुम ।

टीकाकार चन्नवीर[2] ने गान अर्थ में पिट् धातु की व्याख्या की है—

पेटति—गायति ।

मराठी भाषा[3] में पिटणें क्रिया मारना और खटखटाना अर्थ की वाचक है । पिटणें पिट शब्दे धातु से व्युत्पन्न है ।

ध्रण्[4] (ध्रण) शब्दे (प०)—धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, हैम ।

ध्वाने कविकल्पद्रुम ।

मराठी भाषा[5] में ढलणें क्रिया ध्रण शब्दे धातु से व्युत्पन्न है । ढलणें क्रिया का अर्थ शब्द करना है ।

ज्ञानेश्वरी ग्रन्थ[6] में ढले शब्द का प्रयोग देखिए—

म्हणोनि संवादाचा सुवायो ढले ।

ध्मा[7] शब्दे (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम ।

ध्वनौ कविकल्पद्रुम ।

---

१. पा०धा० १।२०८, क्षीर० १।२६०, धा०प्र० १।३०९, जै०धा० १।४९४, काश०धा० १।१०५, कात०धा० १।९५, शाक०धा० १।५९९, है०धा० १।१८३, क०क०द्रु०धा० १४०

२. काश०धा० १।१०५

३. म०व्यु०कोष पृ० ५००

४. धा०प्र० १।४५८, चा०धा० १।१४७, जै०धा० १।४९५, है०धा० १।२६९, क०क०द्रु०धा० १७५

५. म०व्यु०कोष पृ० ३५५

६. ६।२८

७. पा०धा० १।६४९, क्षीर० १।६५९, धा०प्र० १।९३१, चा०धा० १।२७६, जै०धा० १।४९७, काश०धा० १।३४१, कात०धा० १।२३६, शाक०धा० १।४०२, है०धा० १।४, क०क०द्रु०धा ४३

टीकाकार चन्नवीर[1] ने ध्मा धातु की व्याख्या फूंक मारकर शब्द करना अर्थ में की है—

ध्मः ध्मा: धमीतम्—औष्ठौ संयुज्य शब्दने ।

शतपथ ब्राह्मण[2] में 'शंख बजाने' के अर्थ में ध्मायमानस्य शब्द का प्रयोग देखिए—

स यथा शङ्खस्य ध्मायमानस्य ।

शंख के बजाये जाने पर ।

भट्टिकाव्य[3] में देखिए—

कम्बूंश्चाऽप्यधमन् शुभान् ।

सुन्दर स्वर वाले शंखों को बजाया ।

शंख फूंक मारकर ही बजाया जाता है ।

मराठी भाषा[4] में धमकणें क्रिया ध्मा शब्दे धातु से व्युत्पन्न है । धमकणें क्रिया का अर्थ मारना, प्रहार करना है ।

बुक्क्[5] (बुक्क) भाषणे (प०)	—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, कातन्त्र, शाकटायन, हैम ।
भषणे	चान्द्र, धातुप्रदीप ।
भाषणे भषणे च	काशकृत्स्न ।
श्वादिशब्दे	कविकल्पद्रुम ।

मराठी भाषा[6] में 'भुकणे' शब्द 'बुक्क् शब्दे' धातु से व्युत्पन्न है । भुकणें भौंकना को कहते हैं ।

गाथासप्तशती[7] में भुक्कइ शब्द भौंकना अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—

भुक्कइ घर सामिए एन्ते ।

---

१. काश०धा० १।३४१

२. १४।५।४।६

३. १७।७

४. म०व्यु०कोष पृ० ४२५

५. पा०धा० १।१८७, क्षीर० १।८७, धा०प्र० १।११८, चा०धा० १।३४, काश०धा० १।३५, कात०धा० १।३५, शाक०धा० १।४८०, है०धा० १।५४, क०क०द्रु०धा० ८४

६. म०व्यु०कोष पृ० ५६६

७. ७।६२

वह कुत्ता घर के मालिक पर भौंकता था ।

कविकल्पद्रुम धातुपाठ में श्वादि-शब्दे धात्वर्थनिर्देश उचित ही है ।

रेष्[1] (रेष) अव्यक्ते शब्दे (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम ।

ह्लेषायाम् कविकल्पद्रुम ।

रेष् धातु भेड़िये के शब्द अर्थ में प्रयुक्त होती है ।[2]

घु[3] (घुङ्) शब्दे (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम ।

ध्वनौ कविकल्पद्रुम ।

घु-घु ध्वनि करने वाले उल्लू के शब्द में घु धातु प्रयुक्त होती है ।

मराठी भाषा[4] में घुंघातणे शब्द उल्लू के शब्द अर्थ में प्रयुक्त होता है । घुंघातणें क्रिया घु धातु से व्युत्पन्न है ।

ङु[5] (ङुङ्) शब्दे (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन हैम ।

ध्वनौ कविकल्पद्रुम ।

मराठी भाषा[6] में गुगणें क्रिया ङु शब्दे धातु से व्युत्पन्न है । गुगणें क्रिया का अर्थ 'गुंजार करना' है । संस्कृत साहित्य में इसके प्रयोग अनुपलब्ध हैं ।

---

१. पा०धा० १।५३२, क्षीर० १।४१०, धा०प्र० १।६२२, चा०धा० १।४५६, जै०धा० १।४९१, काश०धा० १।५३२, कात०धा० १।४३८, शाक०धा० १।२२२, है०धा०, १।८४०, क०क०द्रु०धा० ३२३

२. व्या०च० ३।६२

३. पा०धा० १।६७२, क्षीर० १।६८१, धा०प्र० १६५६, चा०धा० १४७७, जै०धा० १।४९१, काश०धा० १।५५१, कात०धा० १।४५८, शाक०धा० १।२२२, है०धा० १।५९२, क०क०द्रु०धा० ५८

४. म०व्यु०कोष पृ० २५५

५. पा०धा० १।६७२, क्षीर० १।६८१, धा०प्र० १।६५८, चा०धा० १।४७७, जे०धा० १।४९१, काश०धा० १।५५१, कात०धा० १४५८, शाक०धा० २।२५७, है०धा० १।५९३, क०क०द्रु०धा० ५८

६. म०व्यु०कोषपृ० २३४

गर्द्[1] (गर्द) शब्दे (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम।

रवे कविकल्पद्रुम।

गर्दभः गदहे का वाचक है, अतः गर्द् धातु से गदहे का शब्द अथवा गदहे के समान शब्द करना है। उदाहरणार्थ ऋक्-संहिता[2] में गर्दभ शब्द का प्रयोग देखिए—

समिन्द्र **गर्दभं** मृण।

सा०भा०—हे इन्द्र, गर्दभ-समान शत्रु को मारो। जिस प्रकार गदहा कठोर शब्द करता है उसी प्रकार शत्रु भी।

ताण्ड्य ब्राह्मण[3] में अग्नि-शब्द अर्थ में गर्द् धातु का प्रयोग देखिए—

अन्नं वित्वाऽगर्द्दत्।

अन्न पाकर अग्नि ने **शब्द किया**।

झण्[4] (झण) शब्दे (प०)—काशकृत्स्न।

नूपुर की घण्टियों के अव्यक्त झनझन शब्द में झण् धातु प्रयुक्त होती है, उदाहरणार्थ उत्तररामचरित में[5] देखिए—

कनककिङ्किणी**झणझणा**यितस्यन्दनैः।

सोने की घण्टियों से **झणझनाते** हुए रथों वाली (सेनाओं से घिरा हुआ है)।

कर्पूरमंजरी में[6] देखिए—

रणन्मणिनूपुरं **झणझणायमा**नहारच्छटम्।

मणि नूपुरों की झंकार से युक्त, हारावली के **झन झन शब्द** से पूर्ण (यह झूलना)।

---

१. पा०धा० १।४८, क्षीर० १।४७, धा०प्र० १।५६, काश०धा० १।१६, कात०धा० १।१७, शाक०धा० १।४५६, है०धा० १।३०४, क०क०द्रु०धा० १६६

२. १।२८।५

३. १४।३।१६

४. काश०धा० १।२०६

५. ५।५

६. २।३१

कै[1] शब्दे (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

टीकाकार चन्नवीर[2] ने प्रशंसा अर्थ में कै शब्दे धात्वर्थ की व्याख्या की है—

कायति—प्रशंसयति ।

ऋक् संहिता[3] में स्तुति करना अर्थ में कै धातु प्रयुक्त हुई है—

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वाममवस्युरा चके ।

हे वरुण, मेरा आह्वान सुनो, हमको सुख दो, रक्षा का इच्छुक मैं अभिमुख होकर तुम्हारी स्तुति करता हूं ।

चके—शब्दयामि, स्तौमि ।

प्राकृत भाषा में काय शब्द काक का वाचक है, उदाहरणतः—

हेमचन्द्र के काव्यानुशासन[4] में देखिए—

कार्यं खाइइ (काकः खादति)।

मण्[5] (मण) शब्दार्थः (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र ।

शब्दे जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, हैम ।

कूजे कविकल्पद्रुम ।

शिशुपालवध[6] में मणितम् शब्द का प्रयोग 'कण्ठ-रव' अर्थ में हुआ है—

सीत्कृतानि **मणितं** करुणोक्तिः—

मणितम्—रतिकाले स्त्रीणां कण्ठकूजितविशेषः ।

---

१. पा०धा० १।६४२, क्षीर० १।६५२, धा०प्र० १।६२०, चा०धा० १।२६६ जे०धा० १।४६७, काश०धा० १।३३१, कात०धा० १।२५६, शाक०धा० १।४१२, हैं०धा० १।३६, क०क०द्रु० धा० ७६

२. १।२५।१६

३. ३।१।११.६

४.

५. पा०धा० १।२६७, क्षीर० १।३०२, धा०प्र० १।४४८, चा०धा० १।१४७, जै०धा० १।४६५, काश०धा० १।२०६, कात०धा० १।४६, शाक०धा० १।६६५, हैं०धा० ८।२६६, क०क०द्रु०धा० १७७

६. १०।७५

रमणी के सीत्कार, रतिकाल में स्त्री द्वारा किया गया कण्ठशब्द, करुण वचन।

बंगला भाषा[1] में 'मण' शब्द 'शब्द' अर्थ का वाचक है।

मश्[2] (मश) शब्दे (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम।

ध्वनौ कविकल्पद्रुम।

बंगला भाषा[3] में 'मश' शब्द 'शब्द' अर्थ का वाचक है।

ह्लस्[4] (ह्लस) शब्दे (प०)—पाणिनीय, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

शब्दार्थः क्षीरतरंगिणी।

रवे कविकल्पद्रुम।

बंगला भाषा[5] में 'ह्लस' शब्द 'शब्द' अर्थ में प्रयुक्त होता है।

वण्[6] (वण) शब्दार्थः (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र।

शब्दे जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम।

रुति कविकल्पद्रुम।

मार्कण्डेय पुराण में[7] वाणी शब्द, वचन अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—

---

१. बं०ह०कोष २।१७१२

२. पा०धा० १।४६४, क्षीर० १।४७६, धा०प्र० १।७२५, चा०धा० १।२४७, जै०धा० १।४६६, काश०धा० १।३०७, कात०धा० १।२४७, शाक०धा० १।८६७, है०धा० १।४६२, क०क०द्रु०धा० ३०३

३. बं०श०कोष २।१७४१

४. पा०धा० १।४५७, क्षीर० १।४६६, धा०प्र० १।७११, जै०धा० १।४६६, काश०धा० १।३०२, कात०धा० १।२३२, शाक०धा० १।८६५, है०धा० १।५४०, क०क०द्रु०धा० ३०३

५. बं०श०कोष २।२३६०

६. पा०धा० १।२६७, क्षीर० १।३०२, धा०प्रा० १।४४६, चा०धा० १।१४७, जै०धा० १।४६५, काश०धा० १।२०६, कात०धा० १।१४६, शाक०धा० १।६६४, है०धा० १।२६१, क०क०द्रु०धा० १७७

७. ३८।४

सत्यपूतां वेदेद्वाणीम् ।

रघुवंश में[1] 'वाणिनीमाम्' शब्द का प्रयोग हुआ है—

यस्मिन्महीं शासति वाणिनीनां निद्रां विहारर्धपये गतानाम् ।

वाणिनीनाम् पद मतवाली रमणियों के लिए आया है, जिन्हें वाणी गाना बजाना प्रिय होता है ।

बंगला भाषा में[2] 'वण' शब्द 'शब्द' अर्थ में प्रयुक्त होता है ।

मीम्[3] (मीमृ) शब्दे (प०)—क्षीरतरंगिणी, हैम, कविकल्पद्रुम ।

'गाय का शब्द करना' अर्थ में ही मीम् धातु प्रयुक्त हुई है । उदाहरणार्थ ऋक् संहिता[4] में देखिए—

वाश्रेव विद्युन्मिमाति ।

शब्दयुक्त धेनु के समान विद्युत् **शब्द करती है** ।

यहाँ विद्युत् की तुलना धेनु के साथ की गई है । तुलना होने के कारण मीम् धातु का प्रयोग विद्युत् के साथ हुआ है।

ऋक् संहिता[5] में ही अन्य प्रयोग देखिए—

गौरमीमेदनु वत्सं निषन्तम्···।

गाय बंद किये हुए नेत्रों वाले वत्स को प्राप्त कर **शब्द करती है** ।

अमीमेत्—**शब्दं करोति** ।

रेभ्[6] (रेभृ) शब्दे (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

रेभ् धातु वैदिक काल में 'स्तुति' अर्थ में प्रयुक्त हुई है—

ऋक् संहिता[7] में देखिए—

---

१. ६।७५

२. बं०श०कोष २।१४४७

३. क्षीर० १।३१, क०क०द्रु०धा० २५४

४. १।३८।८

५. १।१६४।२८

६. पा०धा० १।२६२, क्षीर० १।२७१, धा०प्र० १।३८९, चा०धा० १।४०९ जै०धा० १।४९०, कात०धा० १।३९१, शाक०धा० १।१३७, है०धा० १।७७५, क०क०द्रु०धा० २४७

७. ७।७६।७

एषा रिभ्यते वसिष्ठैः ।

सा०भा०—यह उषा वसिष्ठगोत्रोत्पन्न लोगों द्वारा स्तुति की जाती है ।

रिभ्यते—स्तूयते ।

ऋक् सहिता[1] में ही एक अन्य प्रयोग देखिये—

स जामित्वाय रेभति ।

जानता हुआ ऋषि कूप से निकालने के लिये उन रश्मियों की स्तुति करता है ।

निघण्टु[2] में देखिए—

रेभति अर्चतिकर्मा ।

महाभारत के विराट् पर्व[3] में 'गाय के शब्द' अर्थ में 'रेभमाणाः' शब्द का प्रयोग हुआ है—

रेभमाणाः गावः ।

नीलकण्ठ टीका—रेभमाणाः—हम्बारवं कुर्वाणाः ।

इस प्रकार रेभ् धातु 'स्तुति एवं गाय के शब्द' अर्थ में प्रयुक्त होती है ।

म्लेच्छ्[4] (म्लेच्छ) अव्यक्तायां वाचि (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी,
(म्लेछ) धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, शाकटायन, हैम ।

व्यक्तायां वाचि — काशकृत्स्न, कातन्त्र ।

देश्योक्त्याम् — कविकल्पद्रुम ।

दुर्गादास टीका[5] ने 'देश्योक्ति' की व्याख्या 'अपशब्द' अर्थ में की है—

'देश्या ग्राम्या उक्तिर्देश्योक्तिरसंस्कृतकथनमित्यर्थः ।

म्लेच्छयति म्लेच्छति मूढः ।

चन्नवीर टीकाकार[6] ने इसकी 'अस्पष्ट बोलना' अर्थ में व्याख्या की है—

---

१. १।१०५।६

२. ३।१४

३. ४।५३।२५

४. पा०धा० १।१२४, क्षीर० १।१२५, धा०प्र० १।२०२, चा०धा० १।५३, जै०धा० १।४६४, काश०धा० १।५२, कात०धा० १।५४१, शाक०धा० १।५४१, है०धा० १।११६, क०क०द्रु०धा० ११३

५. श०क०द्रु०कोष ३।७६१

६. काश०धा० १।५२

म्लेच्छति—अस्पष्टं भाषते ।

म्लेच्छ् धातु के प्रयोग भी 'अस्पष्ट कथन, अपशब्द' अर्थ में ही मिलते हैं ।

शतपथ ब्राह्मण[1] में देखिये—

न ब्राह्मणो **म्लेच्छेत्**;

ब्राह्मण म्लेच्छ भाषा न वोले (म्लेच्छ—अर्थहीन) ।

महाभारत सभापर्व में[2] देखिए—

ना।र्या **म्लेछन्ति** भाषाभिः ।

महाभाष्य[3] में देखिए—

ब्राह्मणेन न **म्लेच्छितवै** ।

म्लेच्छ नीच जाति मानी गई है । प्रायश्चित्ततत्व[4] में कहा गया है—

गोमांसखादको यश्च विरुद्धं बहु भाषते ;

सर्व्वाचारविहीनश्च म्लेच्छ इत्यभिधीयते ।

गोमांस खाना हिन्दु-धर्म नहीं है । म्लेच्छों को धर्म से रहित माना गया है ।

महाभारत में[5] म्लेच्छों को पशुधर्म्मा माना गया है—

गुरुदारप्रसक्तेषु तिर्यग्योनिगतेषु च ;

पशुधर्म्मिषु पापेषु म्लेच्छेषु त्वं भविष्यसि ।

मनुसंहिता में[6] भी म्लेच्छों को मन्त्रणाकाल में भगाने का उपदेश किया है—

जडमूकान्वधिरांस्तैर्य्यग्योनान् वयोऽतिगान्;

स्त्रीम्लेच्छव्याश्रितव्यङ्गान् मन्त्रकालेऽपसारयेत् ।

इस प्रकार इन सब उदाहरणों से स्पष्ट है कि म्लेच्छ जाति को हीन दृष्टि से देखा जाता था । म्लेच्छ जाति की भाषा को भी आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता होगा, यह स्पष्ट ही है । म्लेच्छ धातु का अव्यक्त-कथन में

---

१. ३।२।१।२४

२. २।२०।४०

३. पस्पशाह्निक

४. श०क०द्रु०कोष ३।७८९१

५. आदिपर्व १।८४।१५

६. ७।१४९, श०क०द्रु०कोष ७९४

प्रयुक्त होने में यह संभावना हो सकती है कि जो भी व्यक्ति भाषा में असाधु शब्दों का प्रयोग करता होगा अर्थात् जो व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध नहीं है। ऐसे शब्दों का प्रयोग करने वाले व्यक्ति की तुलना म्लेच्छ लोगों से की जाती होगी, जैसे आज किसी को रावण कह दिया जाये तो उससे रावण के निकृष्ट आदि गुण उसमें लक्षित होने लगते हैं, उसी प्रकार म्लेच्छों की हीन, बुरा बताने के लिए सामान्यतः अपशब्दों का प्रयोग करने वाले को म्लेच्छ कह दिया जाता है; इसी से म्लेच्छ धातु अव्यक्त कथन में प्रचलित हो गई।

व्यक्त कथन में प्रचलित होने में कारण यह है—म्लेच्छ जाति अपने सम्बन्धियों को 'म्लेच्छ शब्दों का प्रयोग करो' ऐसा उपदेश देते होगी; जैसे आज यहाँ लंका के राजा रावण को बुरी दृष्टि से देखा जाता है और 'रावण जैसे मत बनो' यही उपदेश किया जाता है किन्तु लंका में लंका का राजा होने के कारण रावण को पूजा जाता है, रावण जैसे बनो, यही उपदेश दिया जाता है।

इस प्रकार देशभेद के कारण अर्थभेद हो जाता है। म्लेच्छ लोगों के लिए उनके द्वारा बोले गए शब्द ही साधु हैं, व्यक्त कथन हैं। वाक्यपदीय[1] में भी कहा गया है—

पारम्पर्यादपभ्रंशा त्रिगुणेष्वभिधातृषु,
प्रसिद्धिमागता येषु तेषां साधुरवाचकः।

अदादिगण

क्षु[2] (टुक्षु) शब्दे (प०) पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र,
क्षतौ कविकल्पद्रुम।

क्षु धातु 'छींकना' अर्थ में प्रयुक्त होती है; उदाहरणतः सुश्रुत संहिता[3] में देखिए—

श्वसिति क्षौति।

आश्वलायन श्रौतसूत्र[4] में देखिए—

---

१. ब्रह्मकाण्ड १।१५४
२. पा०धा० २।३१, क्षीर० २।८८, धा०प्र० २।२७, चा०धा० २।१०, जै०धा० ३।४९८, काश०धा० २।१०, कात०धा० २।६२६, शाक०धा० २।९६५, है०धा० २।२६, क०क०द्रु०धा० ५७
३. १।१२।२९
४. ३।८६

क्षुत्वा जृम्भित्वा।

मनुस्मृति[1] में देखिए—

क्षुवतीं जृम्भमाणां वा न चासीनां यथासुखम्।

भागवत पुराण[2] में देखिए—

क्षुवतस्तु मनोज्ञर्ज्ञे।

शिशुपालवध[3] में देखिए—

अपयाति सरोषया निरस्ते कृतकं चुक्षुवे मृगाक्ष्या।

क्रुद्धा मृगनयनी ने तिरस्कृत पति को बाहर जाते देखकर बनावटी ढंग से जब छींक दिया।

भट्टिकाव्य में[4] देखिए—

चुक्षाव चाशुभम्।

अशुभ रूप से छींका।

बंगला भाषा में[5] 'क्षु' शब्द 'छींकना' अर्थ में प्रयुक्त होता है।

मराठी भाषा[6] में 'खवरवणें' शब्द 'क्षु शब्दे' धातु से व्युत्पन्न है। 'खवरवणें' क्रिया का अर्थ 'खाँसना' है।

रु[7] शब्दे (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

टीकाकार चन्नवीर[8] भर्त्सना अर्थ में 'रु शब्दे' धात्वर्थ की व्याख्या करते हैं— रौति—भर्त्सयति।

---

१. ४।४३

२. १।६।४

३. ९।८३

४. १४।७५

५. बं०श०कोष १।७०६

६. म०व्यु०कोष पृ० १९९

७. पा०धा० २।२९, क्षीर० २।२६, धा०प्र० १।२५, चा०धा० २।१०, जै०धा० ३।४९८, काश०धा० २।१०, कात०धा० २।६२६, शाक०धा० २।९६४, है०धा० २।२७, क०क०द्रु०धा० ६१

८. काश०धा० २।१०

ऋक् संहिता में[१] जोर से गर्जना अर्थ में रु धातु प्रयुक्त हुई है--

वावृधान उप द्यवि वृषा वज्र्यरोरवीत् । वृत्रहा सोमपातमः ।

वज्रयुक्त अत एव मेघ नामक असुर का हन्ता, अत्यधिक सोम पीने वाले, वर्षा करने वाले इन्द्र ने बहुत जोर से शब्द किया ।

यहाँ इन्द्र का शब्द करना बादलों का गरजना है ।

ऋक् संहिता में[२] ही एक अन्य प्रयोग देखिए—

क्रन्ददश्वो नयमानो रुवद्गौरन्तर्दूतः ।

अग्नि इन्द्र के लिये हवि रूपी भार को ले जाती हुई अश्व के समान चिल्लाती है और बैल के समान शब्द करती है ।

शतपथ ब्राह्मण में[3] देखिए—

अथर्षभमाह्वयितवे ब्रूयात्, स यदि रुयात्स वषट्कारः ।

अब वह यजमान से कहे—बैल को बुलवा । यदि बैल डकारे तो यह वषट्कार है ।

ऐतरेय ब्राह्मण[४] में देखिए—

वनिष्ठुमस्य मा राविष्टोरूकं मन्यमाना,

भाष्य—उरूकं वपां मन्यमाना वनिष्ठुं मा यूयं राविष्ट, लाविष्ट मा च्छिन्त ।

रामायण के उत्तरकाण्ड में[५] विलाप करने के अर्थ में रु धातु प्रयुक्त हुई है—

यस्माल्लोकत्रयं चैतद् रावितं शृधमागतम् ।

भयभीत होकर तीनों लोकों के प्राणी रो रहे थे ।

भागवत पुराण[६] में इसी अर्थ में रु धातु देखिए—

कं धास्यति कुमारोऽयं स्तन्यं रोरूयते भृशम् ।

रोदीरितीन्द्रो देशिनीमदात् ।

जब यह बालक दूध पीने के लिए बहुत रोने लगा तो ऋषियों ने कहा—यह किसका दूध पियेगा ?

---

१. ८।६।४०

२. १।१७३।३

३. २।५।३।१८

४. २।७

५. ७।१६।३७

६. ६।६।३१

मनुस्मृति[1] में सियार, गर्दभ और ऊँट के शब्द अर्थ में रु धातु से निष्पन्न कृदन्त शब्द का प्रयोग देखिए—

श्वसोष्ट्रे च रुवति पङ्क्तौ च न पठेद्द्विजः ।

भट्टिकाव्य[2] में 'विलाप' अर्थ में प्रयोग देखिए—

अस्त्राक्षुरस्त्रं करुणं रुवन्तः;

करुण स्वर से विलाप करते हुए ।

बंगला भाषा[3] में ज़ोर-ज़ोर से शब्द करना, क्रन्दन अर्थ में रु शब्द का प्रयोग होना है ।

मराठी भाषा[4] में आरवणे क्रिया 'ककुद् शब्द' अर्थ में प्रयुक्त होती है । 'आराव' शब्द 'शब्द' अर्थ का वाचक है और 'ओरोली' क्रिया ज़ोर से बुलाना अर्थ में प्रयुक्त होती है । आरवणें, ओरोली क्रियाएँ एवं आराव शब्द 'रु शब्दे' धातु से व्युत्पन्न हैं ।

शिञ्ज्[5] (शिजि) अव्यक्ते शब्दे (आ०)—	पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम ।
शब्दे	चान्द्र ।
अस्फुटध्वनौ	कविकल्पद्रुम ।

टीकाकार चन्नवीर[6] अव्यक्ते शब्दे धात्वर्थ की व्याख्या 'अनुकरणध्वनौ' अर्थ में करते हैं ।

ऋक्-संहिता[7] में बछड़े का शब्द करना अर्थ में शिञ्ज् धातु प्रयुक्त हुई है—

अयं स शिङ्क्ते ।

वह बछड़ा अव्यक्त ध्वनि कर रहा है ।

---

१. ४।११५
२. ३।१७
३. बं०श०कोष २।१९२१
४. म०व्यु०कोष पृ० ७३-७४
५. पा०धा० २।२०, क्षीर० २।२२०, धा०प्र० २।१७, चा०धा० २।४७, जै०धा० २।४९८, काश०धा० २।२०, कात०धा० २।६६७, शाक०धा० २।९९८, है०धा० २।५५, क०क०द्रु०धा० १३०
६. काश०धा० २।२०
७. १।१६४।२९

शिङ्क्ते—अव्यक्तं ध्वनिं करोति ।

रामायण[1] में देखिये—

ह्यसिञ्चितनिर्घोषे ।

अश्वानां दुःखेन शब्दवतां पर्याकुलप्राणिभूषणानां निर्घोषो यस्मिन् ।

भागवतपुराण[2] में भौरों की गुञ्जार अर्थ में शिञ्जत् शब्द का प्रयोग देखिए—

स्रग्भिर्विचित्रमाल्याभिर्मञ्जुशिञ्जत्षडङ्घ्रिभिः ।

रंग बिरंगी मालाएँ स्थान स्थान पर टंगीं हुई थीं, जिन पर भौंरे गुञ्जार कर रहे थे ।

विक्रमोर्वशीय में[3] 'नूपुर-रव' अर्थ में शिञ्जितम् शब्द का प्रयोग हुआ है—

कूजितं राजहंसानां नेदं नूपुरशिञ्जितम् ।

राजहँसों की आवाज है, नूपुर-रव नहीं है ।

शिशुपालवध में[4] देखिये—

वलयैश्च शिशिञ्जे ।

जुहोत्यादिगण

मा (माङ्)[5] शब्दे (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, काशकृत्स्न, कातन्त्र, हैम, कविकल्पद्रुम ।

शब्द अर्थ में 'मा' धातु का प्रयोग केवल ऋक्-संहिता में[6] उपलब्ध है—

गावो **मिमन्ति** धेनवः;

प्रसन्न करने वाली गायें दोहन करने के लिए **शब्द करती हैं** ।

---

१. २।४०।१६

२. ३।२३।१५

३. ४।३०

४. १०।६२

५. पा०धा० ३।६, क्षीर० ३।६, धा०प्र० ३।६, काश०धा० २।८४, कात० धा० २।७०२, है०धा० १।७६, क०क०द्रु०धा० ४४

६. ३।१।५

वाश् (वाशृ) शब्दे[1] (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।
वासे काशकृत्स्न, कातन्त्र।

वाश् धातु 'पशु पक्षियों के शब्द' अर्थ में अधिक प्रयुक्त हुई है। उदाहरणार्थ—

ऋक्-संहिता में[2] देखिए—

धेनवो **वावशाना**:।

ऋक्-संहिता[3] में मेघों का **शब्द करना** अर्थ में वाश् धातु का प्रयोग हुआ है—

प्र वो मरुतस्तविष—वाशति श्रित:

तीनों स्थानों पर फैला हुआ मेघ **शब्द करता** है।

शतपथ ब्राह्मण[4] में देखिए—

तदाहु:। यस्याग्निहोत्री दोह्यमाना वाश्येत किं तत्र कर्म का प्रायश्चित्तिरिति।

पूछते हैं यदि किसी की अग्निहोत्री गाय दुहते समय **रंभा जाए** तो क्या कर्म है, क्या प्रायश्चित्त है?

निरुक्त[5] में शब्द करने के अर्थ में ही वाश् धातु का प्रयोग माना है—

वाशीति वाङ्नाम वाश्यत इति सत्या:;

वाणी का नाम वाश है, क्योंकि इससे **शब्द करता है, बोलता है**।

कात्यायन श्रौत-सूत्र[6] में देखिए—

वाश्येत चेत्तृणान्यालुप्य ग्रासयेत्सूयवसाद् भगवति।

रामायण में उत्तरकाण्ड में[7] कौओं का **कांव-कांव करना** अर्थ में वाश् धातु का प्रयोग हुआ है—

---

१. पा०धा० ४।५५, क्षीर० ४।५२, धा०प्र० ४।५७, चा०धा० ४।१०६, जै०धा० १।४८६, काश०धा० ३।१०४, कात०धा० ३।८०२, शाक०धा० ४।११३४, है०धा० ३।३६, क०क०द्रु०धा० ३०४
२. १।७३।३
३. ५।५४।२
४. १२।४।१।१२
५. ४।२
६. २५।१।१६
७. ६।५७.२

काका **वाश्यन्ति** ।

रघुवंश में[1] देखिए—

भास्करश्च दिशमध्युवास यां तां श्रिताः प्रतिमयं **ववाशिरे** ।

सूर्य जिस दिशा में थे, उसी दिशा में स्थित सियारिनें **रुदन करने लगीं** ।

शिशुपालवध[2] में वाश् धातु 'सियारिन का शब्द करना' अर्थ में प्रयुक्त हुई है—

ज्वालाव्याजादुश्मन्ती तदन्तस्तैजस्तारं दीप्तजिह्वा **ववाशे** ।

ज्वाला को छल से वमन करती हुई उस जलती हुई जीभ वाली सियारिन उच्च स्वर से **चिल्लाने लगी** ।

भट्टिकाव्य में[3] **शृगाल** के **शब्द** के अर्थ में वाश् धातु प्रयुक्त हुई है—

शिवाः सम्यग् **ववाशिरे** ।

बंगला भाषा में[4] **पशु, पक्षी** के **रव** में ही 'वाश' शब्द का प्रयोग होता है ।

तुदादिगण

घुर्[5] (घुर) शब्दे (प०) पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम ।

ध्वनौ कविकल्पद्रुम ।

घुर धातु 'घर-घर शब्द होना,' गुर्राना' अर्थ में प्रयुक्त होती है, उदाहरणार्थ—

भागवत पुराण[6] में देखिए—

कासश्वासकृतायासः कण्ठे **घुरघुरायते** ।

खांसी और श्वास के मारे गले से **घर-घर** शब्द होने लगा ।

काव्य प्रकाश[7] में गुर्राना अर्थ में घुर् धातु का प्रयोग हुआ है—

---

१. ११।६१

२. १८।७५

३. १४।१४

४. ब० श० कोष २।१५१४

५. पा०धा० ६।५४, क्षीर० ६।५४, धा०प्र० ६।६४, जै०धा० ६।५००, काश० धा० ५।६७, कात०धा० ५।६१४, शाक०धा० ७।१३४१, है०धा० ५।८०, क०क०द्रु० धा० २६४

६. ३।३०।१६

७. ७।२२५

क: कः कुत्र न घुर्घरायितघुरोघोरो घुरेत्सूकरः ।

कौन-कौन सा घुर्घुर शब्द करने वाली नाक के कारण भयंकर सूअर कहाँ नहीं गुर्राता ?

गाथा-सप्तशती[1] में 'घुर-घुर शब्द' के लिए घोरन्ति तिङन्त रूप प्रयुक्त हुआ है ।

घुर् धातु में सूअर के घुर-घुर शब्द का कफ के अटकने पर घर-घर शब्द का अनुकरण स्पष्ट ही है । घुर शब्द से 'घोर' शब्द विकसित हुआ । प्राकृत ग्रंथ गाथा-सप्तशती में 'घोरंति' तिङन्त का प्रयोग हुआ है । सूअर का घुर-घुर शब्द करना भयजनक होता है, अतः घोर शब्द के साथ भय भी जुड़ गया और इस प्रकार घुर् धातु भय और शब्द अर्थ में निर्दिष्ट है । कफ के अटकने पर घुर-घुर शब्द भयजनक नहीं, सूअरों का आपस में घुर्राना भयजनक नहीं, स्यात् इसी अभिप्राय से पाणिनि आदि वैयाकरणों ने 'भीमार्थशब्दयोः' भीमार्थ और शब्द भिन्न-भिन्न अर्थ पढ़े हैं, किन्तु भीम अर्थ यहाँ ध्वनि से ही सम्बद्ध है ।

जर्ज्[2] (जर्ज) परिभाषणे (प०) पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न ।

जर्ज् झर्झ् इत्येके धातुप्रदीप ।
वाचि कविकल्पद्रुम ।

मराठी भाषा में[3] 'जाजरणें' क्रिया 'जर्ज परिभाषणे' धातु से व्युत्पन्न है । 'जाजरणें' क्रिया का अर्थ क्रुद्ध होना, गुस्से में डाँटना है ।

कुण्[4] (कुण) शब्दे (प०) पाणिनीय, क्षीरतरंगिनी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

'कोण' शब्द 'कुण शब्दे' धातु से व्युत्पन्न है—'कुणतीति कोणः' कुण-कुण

१.

२. पा०धा० ६।२०, क्षीर० ६।२१, धा०प्र० ६।१८, जै०धा० ६।५००, काश०धा० ५।२४, है०धा० ५।३६, क०क०द्रु०धा० १२०

३. म०व्यु०कोष पृ० ३०६

४. पा०धा० ६।४५, क्षीर० ६।४६, धा०प्र० ६।५४, चा०धा० ६।४६, जै०धा० ६।५००, कात०धा० ५।४६, काश०धा० ५।८६५, शाक०धा० ७।१३३२, है०धा० ५।५२, क०क०द्रु०धा० १७२

शब्द जो करता है वह कोण है। कोण भेरी, मृदङ्ग, वीणा बजाने का साधन है, जिससे बजाये जाने पर वीणा आदि से कुण कुण शब्द होता है।

रामायण में[1] 'कोण' शब्द का प्रयोग 'शब्द' अर्थ में हुआ है—

भेरीमृदङ्गवीणानां कोणसङ्घटितः पुनः।

सुरसुन्दरीचरित्र प्राकृत ग्रंथ में[2] कुणकुणंत शब्द का प्रयोग सर्दी में दांतों के कटकटाने अर्थ में हुआ है।

बुन्देलखण्डीय भाषा[3] में 'कुनकुनाना' शब्द का अर्थ बच्चों का निद्रा से उठने पर अव्यक्त शब्द करना एवं कुत्तों के बच्चों का सर्दी से आर्त्त स्वर करना है।

कुर[4] (कुर) शब्दे (प०) पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

भविसत्तकहा[5] में 'काकरव' अर्थ में कुरुलहि शब्द का प्रयोग हुआ है।

प्रश्नव्याकरण सूत्र[6] में उत्क्रोशाश्च कुरराः' कहा गया है।

अमरकोष[7] में कहा गया है—

उत्क्रोशकुररौ समौ।

'पक्षी-विशेष का शब्द' ही 'कुर शब्दे' धात्वर्थ से अभिप्रेत है।

क्र्यादिगण

गॄ[8]-शब्दे (प०) पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

---

१. २।७१।२६

२. २।१०३

३. पा०धा०स० पृ० ८६

४. पा०धा० ६।५०, क्षीर० ६।५१, धा०प्र० ६।६०, चा०धा० ६।५०, जै०धा० ६।५००, काश०धा० ५।६३, कात०धा० ५।६१०, शाक०धा० ७।१३३७, है०धा० ५।७७, क०क०द्रु०धा० २३२

५. २।५।२३

६. पाइ०म० पृ० ३२१

७. १।३

८. पा०धा० ९।२६, क्षीर० ९।२७, धा०प्र० ९।२७, चा०धा० ८।२१, जै०धा० ९।५०२, काश०धा० ८।२२, कात०धा० ८।१०१, शाक०धा० ६।१२१७, है०धा० ८।३१, क०क०द्रु०धा०

गृ धातु स्तुति करना अर्थ में प्रयुक्त हुई है।

उदाहरणार्थ— ऋक्-संहिता में[1] देखिए—

गृणंति विप्र ते धियः।

ऋत्विज तुम्हारे कर्मों को कहते हैं (करते हैं)।

अथर्वसंहिता[2] में देखिए—

त्वां विष्णुर्वृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः।

विशाल विष्णु, सूर्य, वरुण और यम आपकी प्रशंसा करते हैं।

शतपथ ब्राह्मण में[3] देखिए—

गृणाति ह वा यस्तद्धोता यच्छ ँ् सति। तस्मा एतद् गृणते। प्रत्यावाध्वर्युरागृणाति—।

जब होता शास्त्र पढ़ता है तो गाता है और जब वह गाता है तो अध्वर्यु उसके प्रत्युत्तर में गाता है।

वैतान श्रौतसूत्र[4] में देखिए—

एकाहेषु तं ते गृणीमसि।

इन्द्र के लोक कृत्स्नु पद की स्तुति करते हैं।

निरुक्त में[5] देखिए—

पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति। नि मे देवा नि मे असुरा।

आधे देवों की स्तुति करता है।

निघण्टु में[6] देखिए—

रेभति रौति; गृणाति—अर्चतिकर्माणः।

गीता में[7] देखिए—

केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति।

कई एक भयभीत होकर हाथ जोड़े हुए (आपके नाम, गुणों का) उच्चारण करते हैं।

---

१. १।१४।२
२. २०।१०६।३
३. ४।३।२।१
४. ३९।२
५. ३।४
६. ३।१४
७. ११।२१

चुरादिगण

मार्ज् [1] (मार्ज) शब्दार्थः (प०) पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, कातन्त्र, शाकटायन, हैम।

ध्वनौ कविकल्पद्रुम।

'बंगला भाषा' [2] में 'पाज' शब्द 'शब्द' अर्थ में प्रयुक्त होता है।

भाषार्थक (भासार्थक धातुएँ)

अब भाषार्थक (भासार्थक) धातुओं पर आते हैं। धात्वर्थनिर्देश एवं उनके विवरण में वैयाकरणों में अनैक्य होने के कारण चौरादिक भाषार्थक (भासार्थक) धातुएँ मुख्य रूप से व्याख्यातव्य हैं।

एक ही सूत्र में भाषार्थक (भासार्थक) धातुओं का पाठ है। धातुसूत्र इस प्रकार है—

पट पुट लुट तुजि मिजि मजि लघि त्रसि पिसि कुसि दशि कुशि घट घटि बृहि बर्ह वल्ह गुप धूप विच्छ चीव पुथ लोकृ लोवृ पाद कुप तर्क वृतु वृघु भाषार्थाः—पाणिनीय, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र धातुपाठ।

भासार्थाः—क्षीरतरंगिणी, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम धातुपाठ।

इस प्रकार कुछ वैयाकरण पट्, पुट् आदि धातुओं को 'भाषार्थक' मानते हैं। चान्द्र धातुपाठ में इन धातुओं का वर्ग लुप्त है, केवल लोक् धातु का पाठ किया गया है और वो भी पृथक् अर्थ में।

प्रत्येक धातुपाठ में चौरादिक भाषार्थक (भासार्थक) धातुओं की संख्या पृथक्-पृथक् है—

धातुपाठ	चौरादिक भाषार्थक (भासार्थक) धातु-संख्या
पाणिनीय	३०
चान्द्र	—
जैनेन्द्र	२८
काशकृत्स्न	३०

१. पा०धा० १०।९८, क्षीर०१०।९७, धा०प्र० १०।१०८, जै०धा० १०।५०३, कात०धा० ६।१११९, शाक धा० १०।१५०० है०धा० ९।२१, क०क० द्रु०धा० १२५

२. २।१७७९

कातन्त्र	२९
शाकटायन	२९
हैम	३७
कविकल्पद्रुम	३९
वृत्ति-ग्रन्थ	**धातु-संख्या**
क्षीरतरंगिणी	३४
धातुप्रदीप	३४

कई धातुएँ ऐसी हैं जिनका निर्देश पाणिनीय धातुपाठ में नहीं किया गया, किन्तु अन्य धातुपाठों में वे भाषार्थक और भासार्थक है।

पाणिनीय धातुपाठ में पठित किन्तु अन्य धातुपाठों में अपठित एवं अन्य धातुपाठों में पठित किन्तु पाणिनीय धातुपाठ में अपठित भाषार्थक (भासार्थक) धातुओं की सूची इस प्रकार है—

पाणिनीय धातुपाठ में अपठित—क्षीरतरंगिणी में पठित—रुट, लजि, लुजि, अजि, दसि, रघि, अहि, बहि, महि।

पाणिनीय धातुपाठ में अपठित, धातुप्रदीप में पठित—लट, लुजि, दसि, मुजि।

पाणिनीय धातुपाठ में अपठित, जैनेन्द्र धातुपाठ में पठित—तुप, मद, लस लृज्ि।

पाणिनीय धातुपाठ में पठित, जैनेन्द्र धातुपाठ में अपठित—मिजि, घट, वृधु।

काशकृत्स्न धातुपाठ में पठित, पाणिनीय धातुपाठ में अपठित—षुध, लुजि लोचृ।

पाणिनीय धातुपाठ में पठित, काशकृत्स्न धातुपाठ में में अपठित—मिजि, पृथु।

पाणिनीय धातुपाठ में पठित, कातन्त्र धातुपाठ में अपठित—मिजि, कुशि।

कातन्त्र धातुपाठ में पठित, पाणिनीय धातुपाठ में अपठित—लजि।

पाणिनीय धातुपाठ में अपठित, शाकटायन में पठित—चिव।

पाणिनीय धातुपाठ में अपठित, हैम धातुपाठ में पठित—अजु, लजु, रघु, महुण, अह, वहु।

पाणिनीय धातुपाठ में पठित, हैम धातुपाठ में अपठित—मिजि।

पाणिनीय धातुपाठ में अपठित, कविकल्पद्रुम धातुपाठ में पठित—तड, लज, लञ्ज, अजि, वहि, जुल, क्स, लडि।

डॉ० पलसुले[1] पट्, पुट्—भाषार्थाः, भासार्थाः।

धातुसूत्र में 'भाषार्थाः' (भासार्थाः) पद को धात्वर्थ नहीं मानते। उनके मत में—पट् पुट् आदि धातुएँ 'स्पष्टवाक्' और 'दीप्ति' इन दोनों अर्थों में से किसी भी अर्थ में प्रयुक्त नहीं होतीं। कगे और वनु धातुओं की तरह इनके अर्थ अनिश्चित हैं। अतः 'भाषार्थाः' पद से तात्पर्य है—भाषा से जानना चाहिए, भाषा में इनके प्रयोगों को देखकर अर्थ निश्चित कर सकते हैं।

हमारा विचार है कि भाषार्थाः, भासार्थाः पद अपने आप में धात्वर्थ हैं—

भाषा एव अर्थः येषां ते भाषार्थाः।

भास एव अर्थः येषां ते भासार्थाः।

संस्कृत, मराठी, बंगला भाषाओं के साहित्य का अध्ययन करने पर डॉ० पलसुले का मत निराधार प्रतीत होता है। संस्कृत, बंगला, मराठी भाषाओं में पट्, पुट् आदि धातुओं से व्युत्पन्न अनेक शब्द हैं, जिनसे सिद्ध हो जाता है कि पट् पुट् आदि धातुएँ भाषार्थक, भासार्थक दोनों हैं।

भाषार्थक, भासार्थक ३९ धातुओं में से १५ धातुओं के सम्बन्ध में प्रमाण मिले हैं और उन्हीं धातुओं को यहाँ लिया जा रहा है। धातु सूची इस प्रकार है—

१. पट्	२. पुट्
३. पिञ्ज्	४. दंश्
५. घट्	६. घण्ट्
७. लोक्	८. लोच
९. कुप्	१०. धूप्
११. तड्	१२. वल्ह्
१३. तर्क्	१४. नद्
१५. पुथ्	

पट्[2] (पट) भाषार्थः (प०)—पाणिनीय, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र।

---

१. द संस्कृत धातुपाठाज, अ क्रिटिकल स्टडी, पृ० १२६

२. पा०धा० १०।१९५, क्षीर० १०।१९७, धा०प्र० १०।२१२, जै०धा० १०।८०४, काश०धा० ९।१८८, कात०धा० ९।२१८, शाक०धा० १०।१३०२, है०धा० भ।२१२, क०क०द्रु०धा० १३९

भासार्थः क्षीरतरंगिणी, शाकटायन, हैम, कवि-कल्पद्रुम।

सामरहस्य उपनिषद्[1] में 'पट्ट' शब्द का प्रयोग हुआ है और 'दीप्ति' अर्थ में व्याख्या की गई है—

पट्टडोरिग्रथितसुवर्णपट्टिकः।

रुक्मिण्याद्या पट्टराज्ञस्तां लीलां श्रुत्वा उत्कण्ठिताः बभूवुः।

पट्ट—भासने—कोशेय।

सामान्यतः पट शब्द ध्वन्यात्मक माना जाता है। आर० एल० टरनर ने 'कम्पैरेटिव डिक्शनरी ऑफ़ इण्डोआर्यन लेंग्वेज'[2] में 'आकस्मिक ध्वनि' को 'पट' शब्द से व्यक्त किया है। 'बङ्ग शब्द कोष'[3] में भी पट ध्वन्यात्मक शब्द माना गया है। टायर आदि के फटने की ध्वनि, बेंत से मारने की ध्वनि, बारिश की आवाज आदि को पट-पट कहा जाता है।

भाषा का विकास अनुकरणात्मक शब्दों से माना जाता है। पट् धातु में निर्जीव पदार्थों की ध्वनि के अनुरणनात्मक अनुकरण स्पष्ट परिलक्षित हैं।

पुट्[4] (पुट) भाषार्थः (प०)—पाणिनीय, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र।

भासार्थः क्षीरतरंगिणी, शाकटायन, हैम, कवि-कल्पद्रुम।

मराठी भाषा[5] में 'पुटपुणें' शब्द 'अस्पष्ट बोलना', 'गड़बड़ करना' अर्थ में प्रयुक्त होता है। 'पुटपुणें' शब्द 'पुट् भाषार्थः' धातु से व्युत्पन्न है।

मराठी ग्रन्थ 'सामराजविरचित रुक्मिणीहरण'[6] में 'अस्पष्ट बोलना' अर्थ में 'पुट' शब्द का प्रयोग देखिए—

उगी वांखार क्षितिपतिसुते जे **पुटपुटी**।

---

१. २६७।१८, २४१।१०, द्र०—पा०धा०स०, पृ० ६४९

२. पृ० ४६७

३. २।१२५६

४. पा०धा० १०।१९ध, क्षीर० १०।१९७, धा०प्र० १०।२१३, जै०धा० १०।५०४, काश०धा० ६।१८८, कात०धा० ६।१२१८, शाक०धा० १०।१६०२, है०धा०६।२१३, क०क०द्रु०धा० १४०

५. म०श०कोष १२०९३-९४

६. ७।१।५६

'अस्पष्ट बोलना' अर्थ में ही एक अन्य उदाहरण—

आंगाचा संताप होऊन ती आपल्याशींच **पुट पुटली**[१]।

बंगला भाषा[२] में 'पुट' शब्द 'दीप्ति' का वाचक है।

पिञ्ज्[३] (पिजि) भाषार्थः (प०)—पाणिनीय, धातुप्रदीप, काशकृत्स्न, कातन्त्र।

भासार्थः क्षीरतरंगिणी, शाकटायन, हैम।

भाषट्टार्थे कविकल्पद्रुम।

यास्क ने 'निरुक्त'[४] में 'कपिञ्जलः' शब्द की व्युत्पत्ति 'पिञ्ज् भाषार्थः' धात्वर्थ से दिखाई है—

कपिञ्जलः—कमनीयं शब्दमपि **जयति**।

मधुर शब्द को **बोलता है**, अतः कपिञ्जल हुआ।

दंश्[५] (दशि) भाषार्थः (प०)—पाणिनीय, धातुप्रदीप, काशकृत्स्न, कातन्त्र।

भासार्थः क्षीरतरंगिणी, शाकटायन, हैम।

त्विषि कविकल्पद्रुम।

महाभारत में विराट् पर्व[६] में 'दंशिताः' शब्द 'प्रकाशमान' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—

वारणा यत्र सौवर्णाः पृष्ठे भासन्ति **दंशिताः**।

'नीलकण्ठ टीका' में '**दंशिताः भासमानाः**' कहा गया है।

अर्थ इस प्रकार है—जिसकी पीठ पर सोने के **प्रकाशमान** हाथी सुशोभित हो रहे हैं।

---

१. मोर ३३
२. बं०श०कोष २।१३३८
३. पा०धा० १०।१६५, क्षीर० १०।६७, धा०प्र० १०।२१२, जै०धा० १०।५०४, काश०धा० ६।१८८, कात०धा० ६।१२१८, शाक०धा० १०।१६०७, है०धा० ६।२०८, क०क०द्रु०धा० १२२
४. ३।१४
५. पा०धा० १०।१६५, क्षीर० १०।६७, धा०प्र० १०।२१७, काश०धा० ६।१८८, कात०धा० ६।१२१८, शाक०धा० १०।१६११, है०धा० ६।२२५, क०क०द्रु०धा० ३००
६. ४।४२।२

इस प्रकार 'दंश्' धातु 'भासार्थक' है, सिद्ध हो जाता है।

घट्[1] (घट) भाषार्थः (प०)—पाणिनीय, धातुप्रदीप, काशकृत्स्न, कातन्त्र।
भासार्थः हैम।
द्युतौ कविकल्पद्रुम।

'मराठी भाषा' में 'घट' शब्द ध्वन्यात्मक है। मोरोपंत के कर्णपर्व[3] में 'पानी पीने के समय गड़गड़ की आवाज' को 'घट' शब्द से व्यक्त किया गया है—

मग कंउ नाल चरचर तो सत्य करावया विरुद कापी
देउनि मिटकया मटमट घटघट त्या स्वासिता सृगुदका पी ॥

इस प्रकार शब्दानुकृति से 'घट् भाषार्थः' धातु विकसित हुई है।

घण्ट्[4] (घटि) भाषार्थः—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र।
द्युतौ कविकल्पद्रुम।

घण्टा शब्द 'घण्ट्' धातु से व्युत्पन्न है। घण्टा पूजा के समय में शब्द से शोभित होता है, शब्द करता है। घण्टयति—दीप्यते, पूजादिकाले वाद्येन शोभते, शब्दायते वा।[5] इस प्रकार घण्ट् धातु भाषार्थक, भासार्थक दोनों है।

लोक्[6] (लोकृ) भाषार्थः (प०)—पाणिनीय, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र।

---

१. पा०धा० १०।१६५, धा०प्र० १०।२१२, काश०धा० ६।१८८, काश०धा० ६।१२१८, है०धा०,६।२१५, क०क०द्रु०धा० १३६
२. म०व्यु०श०कोष पृ० ३।१०४४
३. ४५।१४
४. पा०धा० १०।१६५, क्षीर० १०।१६७, धा०प्र० १०।२३०, जै०धा० १०।५०४, काश०धा० ६।१८८, कात०धा० ६।१२१८, क०क०द्रु०धा० १३६
५. पा०धा०स० पृ० ६०६
६. पा०धा० १०।१६५, क्षीर० १०।१६७, धा०प्र० १०।२४०, जै०धा० १०।५०४, काश०धा० ६।१८८, कात०धा० ६।१२१७, शाक०धा० १०।१६२४, है०धा० ६।२००, क०क०द्रु०धा० ८५

भासार्थः क्षीरतरंगिणी, शाकटायन, हैम ।
दीप्तौ कविकल्पद्रुम ।

भागवत पुराण[1] में 'लोक' शब्द 'प्रकाश' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—
'इच्छामि कालेन न यस्य विप्लवस्तस्यात्मलोकावरणस्य मोक्षम्' ।

मैं तो आत्मप्रकाश को ढकने वाले अज्ञान से मुक्ति चाहता हूँ, जिसका कि काल भी अन्त नहीं कर सकता ।

बंगला भाषा[2] में भी 'लोक' शब्द 'दीप्ति' का वाचक है । बंगला 'लोक' शब्द 'लोक् भाषार्थः' धातु से व्युत्पन्न है ।

लोच्[3] (लोचृ) भाषार्थः (प०)—पाणिनीय, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र ।
भासार्थः क्षीरतरंगिणी, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

बङ्ग शब्द कोष[4] में 'लोच' शब्द को 'दीप्त्यर्थक' कहा गया है । 'लोच' शब्द 'लोच् भासार्थः' धातु से व्युत्पन्न है । 'लोचन' शब्द 'दीपक' का वाचक है ।

कुप[5] (कुप्) भाषार्थः (प०)—पाणिनीय, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र ।
भासार्थः क्षीरतरंगिणी, शाकटायन, हैम ।
द्युतौ कविकल्पद्रुम ।

---

१. ८।३।२५
२. बं०श०कोष २।१९७१
३. पा०धा० १०।१९५, क्षीर० १०।१९७, धा०प्र० १०।२४१, जै०धा० १०।५०४, काश०धा० ६।१८८, कात०धा० ६।१२१८, शाक०धा० १०।१६२५, है०धा० ६।२०४, क०क०द्रु०धा० १०८
४. २।१९७।४
५. पा०धा० १०।१९५, क्षीर० १०।१९७, धा०प्र० १०।२४२, काश०धा० ६।१८८, कात०धा० ६।१२१८, शाक०धा० १०।१६२७, है०धा० ६।२२३, क०क०द्रु०धा० २२५

बंगला भाषा[1] में 'कुप' शब्द 'दीप्ति' का वाचक है, 'कुप् भासार्थः' धातु से व्युत्पन्न है ।

धूप्[2] (धूप) भाषार्थः (प०) —पाणिनीय, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र ।
भासार्थः क्षीरतरंगिणी, शाकटायन, हैम ।
दीप्तौ कविकल्पद्रुम ।

वाजसनेयि-संहिता में[3] 'धूप्' धातु 'प्रकाशित करना' अर्थ में प्रयुक्त हुई है—

वसवस्त्वा **धूपयन्तु** गायत्रेण छन्दसाङ्गिरसस्त्वद्रुद्रास्त्वा **धूपयन्तु** ।
त्रैष्टुभेन त्रैष्टुभेन छन्दमाङ्गिरसस्त्वदादित्यास्त्वा धूपयन्तु ।

धूप में प्रकाश तेज होता है, अतः 'धूप्' धातु का 'भासार्थक' होना सिद्ध ही है ।

बंगला भाषा[4] में 'धूप' शब्द 'दीपन' का वाचक है ।

तड्[5] (तड) भासार्थः (प०)—क्षीरतरंगिणी ।
त्विषि कविकल्पद्रुम ।

तडित् शब्द 'बिजली, विद्युत्' का वाचक[6] है । चमकना, शब्द करना विद्युत् का स्वभाव है, अतः तड् धातु का भाषार्थक और भासार्थक होना सिद्ध ही है ।

मराठी भाषा[7] में 'तडतड' शब्द 'तोड़ना-फोड़ना' अर्थ में प्रयुक्त होता है । मराठी 'तडतड' शब्द 'तड् भासार्थः' धातु से व्युत्पन्न है ।

---

१. बं०श० कोष १।६४७
२. पा०धा० १०।१९५, क्षीर० १०।१९७, धा०प्र० १०।२३५, जै०धा० १०।५०४, काश०धा० ६।१८८, कात०धा० ६।१२१८, शाक०धा० १०।१६१८, है०धा० ६।२२२, क०क०द्रु०धा० २३३
३. ११।६०
४. बं०श०कोष १।११६३
५. क्षीर० १।०।१९७, क०क०द्रु०धा० १५६
६. अ०कोष १।३।९
७. म०व्यु० कोष १।३६१

वल्ह्[1] (वल्ह) भाषार्थः (प०)—पाणिनीय, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र।
भासार्थः क्षीरतरंगिणी, शाकटायन, हैम।
त्विषि कविकल्पद्रुम।

वल्ह् धातु भी भाषार्थक है, प्रवल्हिका शब्द 'वल्ह् भाषार्थः' धात्वर्थ की पुष्टि कर रहा है। प्रवह्लिका प्रहेली को कहते हैं—

प्रवह्लिका प्रहेलिका।[2]

पहेली चूंकि पूछी जाती है, अतः वल्ह् धातु का भाषार्थक होना सिद्ध है। 'पहेली' की परिभाषा इस प्रकार है—

व्यक्तीकृत्य कमप्यर्थं स्वरूपार्थस्य गोपनम्,
यत्र बाह्यार्थसम्बद्धं कथ्यते सा प्रहेलिका।[3]

आर०एल० टरनर ने 'कम्पैरेटिव डिक्शनरी ऑफ़ इण्डोआर्यन लेंग्वेज'[4] में प्रवह्लिका शब्द को 'वल्ह् भाषार्थः' धातु से व्युत्पन्न माना है।

तर्क्[5] (तर्क) (प०) भाषार्थः—पाणिनीय, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र।
भासार्थः क्षीरतरंगिणी, शाकटायन, हैम।
दीप्तौ कविकल्पद्रुम।

बंगला भाषा[6] में 'तर्क' शब्द 'दीप्ति' का वाचक है।

मराठी भाषा[7] में 'निश्चय करना' अर्थ में प्रयुक्त 'निष्टंकणें' शब्द 'तर्क् भाषार्थः' चौरादिक धातु से व्युत्पन्न है—

ज्ञानेश्वरी ग्रन्थ[8] में देखिए—

---

१. पा०धा० १०।१६५, क्षीर० १०।१६७, धा०प्र० १०।२३३, जै०धा० १०।५०४, काश०धा० ६।१८८, कात०धा० ६।१२१८, शाक०धा० १०।१६२२, है०धा० ६।२३३, क०क०द्रु०धा० ३५०
२. १।६।६
३. वही
४. पृ० ६६७
५. पा०धा० १०।१६५, क्षीर० १०।१६७, धा०प्र० १०।२४३, जै०धा० १०।५०४, काश०धा० ६।१८८, काश०धा० ६।१२१८, शाक०धा० १०।१६२८, है०धा० ६।२०१, क०क०द्रु०धा० ८३
६. बं०श०कोष २।१०२७
७. म०व्यु० कोष पृ० ४५७
८. १८।१२७८

तन्हि न जुझें एसें निष्टंकीसि जें मानसें ते प्रकृति बनारिसें करलियि।

इस प्रकार तर्क् धातु 'भाषार्थक, भासार्थक' दोनों है।

नद्[1] (नद) भाषार्थः (प०)—पाणिनीय, धातुप्रदीप, काशकृत्स्न, कातन्त्र।

भासार्थः क्षीरतरंगिणी, शाकटायन, हैम।

भासि कविकल्पद्रुम।

बंगला भाषा में[2] 'नद' शब्द 'दीप्ति' का वाचक है।

पुथ्[3] (पुथ) भाषार्थः (प०)—पाणिनीय, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र।

भाषार्थः क्षीतरंगिणी, शाकटायन, हैम।

त्विषि कविकल्पद्रुम।

कथासरित्सागर[4] में भाषार्थक पुथ् धातु का प्रयोग देखिए—

'यथा विवाहोत्सवतूर्यनादानपोथयन् दन्दुभयोऽन्तरिक्षे'।

आकाश में विवाहोत्सव में बजने वाले वाद्यों के शब्द गूंजने लगे।

इस प्रकार संस्कृत एवं अन्य भारतीय भाषाओं में उपलब्ध उदाहरणों से सिद्ध हो जाता है कि पट्, पुट् आदि धातुएँ भाषार्थक और भासार्थक दोनों हैं। भाषार्थः से तात्पर्य केवल स्पष्ट वाक् न लेकर 'स्पष्ट और अस्पष्ट' दोनों प्रकार की वाक् है। शंका उठती है—धातुपाठों में स्पष्ट वाक् के लिए 'व्यक्तायां वाचि', अव्यक्त वाक् के लिए 'अव्यक्तायां आचि' और नूपुर आदि निर्जीव वस्तुओं के शब्द के लिए 'शब्दे' धात्वर्थ का निर्देश किया गया है; अतः 'पट् पुट्—भाषार्थाः' धात्वर्थ से स्पष्ट वाक् ही लेना चाहिए। शंका का समाधान यह है कि भण् धातु 'स्पष्ट कथन' अर्थ में प्रयुक्त की जाती है, किन्तु

---

१. पा०धा० १०।१९५, क्षीर० १०।१९७, धा०प्र० १०।२४१, काश०धा० ९।१८८, कात०धा० ९।१२१८, शाक०धा १०।१६२६, है०धा० ९।२१९, क०क०द्रु०धा० १९८

२. बं०श०कोष १।२७४

३. पा०धा० १०।१९५, क्षीर० १०।१९७, धा०प्र० १०।२३८, जै०धा० १०।५०४, काश०धा० ९।१८८, कात०धा० ९।१२१८, शाक०धा० १०।१६२३, है०धा० ९।२१८, क०क०द्रु०धा० १८७

४. ६।८।२५७

धातुपाठों में 'भण् शब्दे' धात्वर्थ निर्देश किया गया है, अतः यहाँ 'भाषार्थाः' धात्वर्थ व्यक्त, अव्यक्त दोनों प्रकार के शब्दों का द्योतक है। भाषार्थाः, भासार्थाः पद अपने आप में धात्वर्थ है—

भाषा एव अर्थः येषां ते भाषार्थाः।

भास एव अर्थः येषां ते भासार्थाः।

हिंसार्थक धातुएं

हिंसार्थक धातुओं की परिमाण-तालिका इस प्रकार है—

धातुपाठ	धातु संख्या	हिंसार्थक धातु सं०	प्रतिशत
पाणिनीय	१९०५	१३६	७.१३
चान्द्र	१५७५	७४	४.६९
जैनेन्द्र	१४७८	१३३	७.६४
काशकृत्स्न	२४११	२१६	८.९५
कातन्त्र	१८५८	१११	५.९७
शाकटायन	१८५५	१२५	६.७३
हैम	१९८०	१२४	६.२४
कविकल्पद्रुम धातुपाठ	२३५८	४१	५.९७

हिंसार्थक ५२ धातुओं के विशिष्ट अर्थों के सम्बन्ध में संकेत मिले हैं। धातुसूची इस प्रकार है—

भ्वादिगण

१	खद्	२	तर्द्
३	तुज्	४	शठ्
५	तुभ्य्	६	सिम्भ्
७	शुम्भ्	८	दय्
९	भल्ल्	१०	सुर्व्
११	धुर्व्	१२	जूष्
१३	कष्	१४	खष्
१५	वष्	१६	मष्
१७	रुष्	१८	रिष्
१९	शस्	२०	नम्
२१	श्नथ्	२२	क्रथ्

२३	मेघ्	२४	मिय्
२५	मिध्	२६	इष्
२७	भर्व		

अदादिगण

२८	हन्

दिवादिगण

२९	पुथ्	३०	जूर्
३१	रथ्	३२	रिष्

स्वादिगण

३३	रि	३४	क्षि
३५	चिरि	३६	दाश्

तुदादिगण

३७	ऋफ्	३८	चृत्
३९	मृण्	४०	तृह्
४१	स्तृह्	४२	तृन्ह्
४३	रुश्	४४	रिश्

रुधादिगण

४५	हिंस्

तनादिगण

४६	क्षण्

क्र्यादिगण

४७	द्रु	४८	क्षि

चुरादिगण

४९	हिष्क्	५०	बर्ह्
५१	लूष्	५२	जस्

खद्[1] (खद) हिंसायाम् (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

---

१. पा०धा० १।४२, क्षीर० १।४१, धा०प्र० १।४६, जै०धा० १।४९३, काश०धा० १।१४, कात०धा० १।१२, शाक०धा० १।४५३, है०धा० १।२९६, क०क०द्रु०धा० १९५

शतपथ ब्राह्मण[1] में घी का घनीभूत होना, कठोर होना अर्थ में खदत् शब्द का प्रयोग हुआ है—

अन्यतरतऽआज्यं कुर्य्याद्यस्ताद्वोपरिष्टाद्वा तथा खदन्निःसरणवद्‌भवति तथा निःस्रवति ।

अब एक ओर घी रखे, चाहे नीचे चाहे ऊपर। इस प्रकार जो कठोर है वह नरम हो जाता है और बहने लगता है।

मराठी भाषा[2] में 'खडसणें' क्रिया भर्त्सना अर्थ में प्रयुक्त होती है। 'खडसणें' क्रिया 'खद् हिंसायाम्' धातु से व्युत्पन्न है।

तर्द्[3] (तर्द) हिंसायाम्' (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

तैत्तिरीय ब्राह्मण[4] में 'तर्द्' धातु का प्रयोग देखिए—

अहन्नहिमन्वपस्ततर्द ।

ततर्द—मेघस्थितं जलं मेघभेदेन पृथिव्यां व्यापितवान् ।

भट्टिकाव्य में[5] देखिए—

सुग्रीवः प्रयसं नेने बहून् रामस्ततर्द च ।

सुग्रीव ने प्रयस राक्षस को मारा और राम ने भी बहुत राक्षसों को मारा।

मराठी भाषा[6] में 'तडतड' शब्द निन्दा, भर्त्सना अर्थ का वाचक है और तर्द् हिंसायाम् धातु से व्युत्पन्न है।

इस प्रकार 'तर्द् हिंसायाम्' से तात्पर्य वध, भर्त्सना करना है।

---

१. १।७।४।१०
२. म०व्यु०कोष पृ० १६४
३. पा०धा० १।४६, क्षीर० १।४८ धा०प्र० १।५७, चा०धा० १।१७, जै०धा० १।४६३, काश०धा० १।२०, कात०धा० १।१८, शाक०धा० १।४६१, है०धा० १।३०५, क०क०द्रु०धा० १६६
४. २।५।४।२
५. १४।३३
६. म०व्यु०कोष पृ० ३६१

'तुज्[1] (तुज) हिंसायाम्' (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

ऋक् संहिता[2] में विनाश, वध अर्थ में तुजता और तुजन् शब्दों का प्रयोग देखिये—

वृत्रस्य चिद्विदथेन मर्म **तुजन्नीशानस्तुजता** कियेधाः ।

शत्रुओं की हिंसा करते हुए ऐश्वर्यवान् बलवान् इन्द्र ने वृत्र नामक असुर के मर्मस्थान की हिंसा करते हुए वज्र से प्रहार किया ।

तुजन्—शत्रून् हिंसन्, तुजता—हिंसता ।

ऋक्-संहिता[3] में ही एक अन्य प्रयोग देखिए—

तेतिक्ते तिग्मा **तुजसे** अनीका ।

पूर्व ही तीक्ष्ण शस्त्रों को उसका **वध करने के लिए** अधिक तीक्ष्ण करता है ।

तुजसे—वधाय ।

निरुक्त[4] में इसी अर्थ में तुज् धातु का प्रयोग देखिये—

क ईषते **तुज्यते** को···सन्तमिन्द्रम् ।

इन्द्र के आ जाने पर कौन भाग सकता है, कौन **मारा जा सकता** है ।

इस प्रकार तुज् धातु वध, विनाश अर्थ में प्रयुक्त होती है ।

शठ्[5] (शठ) हिंसायाम् (प०)—पाणिनीय, धातुप्रदीप, चान्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, हैम ।
वधे — कविकल्पद्रुम ।

शठ् धातु का हिंसा अर्थ 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' वाक्य में दिखाई देता है ।

---

१. पा०धा० १।१५३, क्षीर० १।१५४, धा०प्र० १।२४१, चा०धा० १।७६, जै०धा० १।४६३, काश०धा० १।७७, कात०धा० १।७७, शाक०धा० १।५७१, है०धा० १।१६१, क०क०द्रु०धा० १२०

२. १।६१।६

३. ४।२३।७

४. १४।२७

५. पा०धा० १।२३०, धा०प्र० १।३४२, चा०धा० १।२२०, काश०धा० १।१४१, कात०धा० १।११६, है०धा० १।२२२, क०क०द्रु०धा० १५२

शठ दुष्ट व्यक्ति को कहा जाता है। 'शाठ्यम्' पद बुरे व्यवहार का वाचक है।

'शठ् हिंसायाम्' धात्वर्थ से तात्पर्य छल, कपट करना है।

तुम्प्[1] (तुम्प) हिंसार्थः (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम।

वधे कविकल्पद्रुम।

व्याकरण चन्द्रोदय[2] में 'तुम्प् हिंसार्थः' धात्वर्थ को स्पष्ट किया गया है—

गौः प्रतुम्पति (गाय मारती है)।
तुम्पति खड्गी (गेंडा मारता है)।

सिम्भ्[3] (षिम्भु) हिंसार्थः (प०)—पाणिनीय, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

मराठी भाषा[4] में चिबणे क्रिया पद दबाना अर्थ में प्रयुक्त होता है। चिबणे क्रिया सिम्भ हिंसार्थः धातु से व्युत्पन्न है।

शुम्भ्[5] (शुम्भ) हिंसायाम् (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

शुम्भ् धातु प्रहार करना अर्थ में प्रयुक्त होती है। उदाहरणार्थ महावीरचरित[6] में देखिए—

प्रागप्राप्त**निशुम्भ**शाम्भवधनुः।

---

१. पा०धा० १।२८१, क्षीर० १।२८८, धा०प्र० १।४०६, चा०धा० १।१४२, जै०धा० १।४९५, काश०धा० १।२०१, कात०धा० १।१३९, शाक०धा० १।६६२, है०धा० १।३४४, क०क०द्रु०धा० २३२
२. ३।५५ पृ०
३. पा०धा० १।२८६, धा०प्र० १।४३१, जै०धा० १।४९५, शाक०धा० १।६७४, है०धा० १।३७५, क०क०द्रु०धा० २४९
४. म०व्यु० कोष, पृ० २८२
५. पा०धा०१।२८७, क्षीर० १।२९२, धा०प्र० १।४३३, जै०धा० १।४९५, कात०धा० १।१४०, शाक०धा० १।६७५, है०धा० १।३७७, क०क०द्रु० धा० २४९
६. २।३३

शिवधनुष, जो कि पहले कभी भंग नहीं हुआ।

निशुम्भ:—भंग।

मालतीमाधव[1] में देखिए—

सावष्टम्भनिशुम्भसम्भ्रमनमद् भूगोलनिष्पीडन।

बलपूर्वक **चरणन्यास** के वेग से झुकी हुई भूमण्डल के भाराक्रान्त से दबी हुई।

निशुम्भ:—चरणाक्रमणेन।

दय्[2] (दय) हिंसायाम् (आ०)— पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

निरुक्त[3] में दय् धातु को अनेकार्थक कहा गया है और अनेकार्थों में हिंसा अर्थ भी है।

मराठी भाषा[4] में डवणें क्रियापद दय हिंसायाम् धातु से व्युत्पन्न है। डवणें क्रिया का अर्थ काटना, चुभोना है।

भल्ल्[5] (भल्ल) हिंसायाम् (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

भल्ल् धातु का हिंसा अर्थ शस्त्रविशेषवाचक भल्ल: शब्द में एवं ऋक्षवाचक भल्लूक: शब्द में स्पष्ट ही है।

रामायण[6] में शस्त्रविशेषवाचक 'भल्लै:' शब्द का प्रयोग हुआ है—

क्षुरार्धचन्द्रोत्तमकर्णिभल्लै:।

---

१. ५।२२

२. पा०धा० १।३१३, क्षीर० १।३२०, धा०प्र० १।४८०, जै०धा० १।४६०, काश०धा० १।४८७, कात०धा० १।४०७, शाक०धा० १।१७६, है०धा० १।७९६, क०क०द्रु०धा० २५९

३. ४।१७।२

४. म०व्यु०कोष पृ० ३४५

५. पा०धा० १।३२४, क्षीर० १।३३१, धा०प्र० १।४९५, जै०धा० १।४९१, काश०धा० १।४९९, कात०धा० १।४१८, शाक०धा० १।१९०, है०धा० १।८१३, क०क०द्रु०धा० २८०

६. ६।५९।१०१

छुरे, अर्धचन्द्र, कर्णि तथा भालों के द्वारा।

महाभारत में शान्तिपर्व[1] में ऋक्षवाचक 'भल्लूकाः' शब्द का प्रयोग हुआ है—

द्वीपिनः खड्गभल्लूका ये चान्ये भीमदर्शनाः।

तुर्व्[2] (तुर्वी) हिंसार्थः (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, हैम, कविकल्पद्रुम।

ऋक् संहिता[3] में 'वध करना' अर्थ में तुर्व् धातु का प्रयोग देखिए—

वृत्र यदिन्द्र **तूर्वसि**।

हे इन्द्र, तुम जिस कारण से शत्रु का **वध करते हो**।

तैत्तिरीय संहिता[4] में इसी अर्थ में प्रयोग देखिए—

तूर्वन् न यामन्नेतशस्य नू रण आ यो घृणे।

युद्ध में प्रवृत्त हुआ पुरुष जिस प्रकार शीघ्र गमन करने वाले अश्व को नियन्त्रित कर **दूसरों के बल को हिंसा करते** हुए शीघ्रता नहीं करता है, उसी प्रकार यह अग्नि भी प्रज्वलित होती है, क्षीण नहीं होती।

तूर्वन्—परबलानि हिंसन्।

मैत्रायणी संहिता[5] में भी उपर्युक्त मन्त्र ही वर्णित है।

धुर्व्[6] (धुर्वी) हिंसार्थः (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

---

१. १२।११६।६
२. पा०धा० १।३७०, क्षीर० १।३७८, धा०प्र० १।५७०, चा०धा० १।१६५, जै०धा० १।४६६, काश०धा० १।२६१, कात०धा० १।१६४, है०धा० १।४७१, क०क०द्रु०धा० २६१
३. ८।६६।६
४. ४।६।१।२
५. २।१०।१।७
६. पा०धा० १।३७०, क्षीर० १।३७८, धा०प्र० १।५७३, चा०धा० १।६५, जै०धा० १।४६६, काश०धा० १।२६१, कात०धा० १।१६४, शाक०धा० १।७८१, है०धा० १।४७४, क०क०द्रु०धा० २६३

ऋक् संहिता[1] में नाश करना अर्थ में धुर्व् धातु का प्रयोग हुआ है—

देवास्तं सर्वे **धूर्वन्तु** ।

सारे देवता उसका **नाश करें** ।

शतपथ ब्राह्मण[2] में सताने के अर्थ में धुर्व् धातु प्रयुक्त हुई है—

तं **धूर्व** यं वयं **धूर्वामः** ।

उसको **सता**, जिसको हम **सताते हैं** ।

बंगला भाषा[3] में धुर्व्य शब्द हिंसा, हनन का वाचक है ।

मराठी भाषा[4] में डहुलणें क्रिया धुर्व हिंसायाम् धातु से व्युत्पन्न है । डहुलणें क्रिया का अर्थ दर्द के मारे परेशान होना है ।

जूष्[5] (जूष) हिंसायाम् (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम ।

वधे — कविकल्पद्रुम ।

ठाणङ्गसुत[6] प्राकृत ग्रन्थ में विनाश अर्थ में जूष धातु का प्रयोग हुआ है ।

कष्[7] (कष) हिंसार्थः (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम ।

वधे — कविकल्पद्रुम ।

कष् हिंसार्थः से तात्पर्य खुजली करना है ।

---

१. ६।७५।१९

२. १।१।२।२०

३. बं०श०कोष १।११६३

४. म०व्यु०कोष पृ० ३४६

५. पा०धा० १।४४३, क्षीर० १।४५४, धा०प्र० १।६८२, चा०धा० १।२३०, जै०धा० १।४९६, काश०धा० १।२९३, कात०धा० १।२२४, शाक०धा० १।८४०, है०धा० १।५०७, क०क०द्रु०धा० ३१०

६. २।१, पाइ०म० पृ० ४५१

७. पा०धा० १।४४७, क्षीर० १।४५८, धा०प्र० १।६८४, चा०धा० १।२३०, जै०धा० १।४९६, काश०धा० १।२९३, कात०धा० १।२२४, शाक०धा० १।८४९, है०धा० १।५१७, क०क०द्रु०धा० ३०८

गोपथ ब्राह्मण[1] में देखिए—

मृगशृङ्गं गृह्णीयात्तेन **कषेताध** ।

वैतानश्रौतसूत्र[2] में देखिए—

तेन **कषेत** ।

(तेन शृङ्गेण **कण्डूयेत**) ।

छान्दोग्य उपनिषद्[3] में देखिए—

सोऽधस्ताच्छकटस्य पामानं **कषमाण**मुपोपविवेश।

उसने एक लकड़े से नीचे **खुजलाते हुए** रैक्व को देखा और वह उसके पास बैठ गया ।

महाभारत में[4] देखिए—

जन्तूनुच्चावचानंगे दशतो न **कषाम** वा ।

नीलकण्ठ टीका में नाश अर्थ में कष् धातु की व्याख्या की गई है—

न **कषाम**—न नाशयाम ।

मराठी भाषा[5] में 'कसणें' क्रिया 'कष्' हिंसायाम् धातु से व्युत्पन्न है । 'कसणें' क्रिया का अर्थ मजबूती से बांधना है ।

बंगला भाषा[6] में भी कष शब्द 'हिंसा' अर्थ का वाचक है ।

खष्[7] (खष) हिंसार्थः (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी ।

वधे कविकल्पद्रुम ।

मराठी भाषा[8] में खसणें क्रिया खष् हिंसायाम् धातु से व्युत्पन्न है । खसणें क्रिया का अर्थ फिसलना, गिरना है ।

वष्[9] (वष) हिंसार्थः (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र,

---

१. १।३।२१

२. ११।२५

३. ४।१।८

४. १२।१८०।१३

५. म०व्यु०कोष पृ० १४७

६. बं०श०कोष १।५७०

७. पा०धा० १।४४७, क्षीर० १।४५८, क०क०द्रु०धा० ३०८

८. म०व्यु०कोष पृ० २००

९. पा०धा० १।४४७, क्षीर० १।४५८, धा०प्र० १।६५१, चा०धा० १।२३०. जै०धा० १।४९६, काश०धा० १।२९३, कात०धा० १।२२४, शाक०धा० १।८३४, है०धा० १।५११, क०क०द्रु०धा० ३२६,

जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, शाकटायन, हैम।
वधे कविकल्पद्रुम।

मराठी भाषा[1] में 'वसकणें' क्रिया 'वष्' हिंसायाम् धातु से व्युत्पन्न है। वसकणें क्रिया का अर्थ क्रोध करना है।

मष्[2] (मष) हिंसार्थः (प०)—पाणिनीय, क्षीतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम।
वधे कविकल्पद्रुम।

अथर्व संहिता[3] में यह धातु 'मसल देना' अर्थ में प्रयुक्त हुई है—

नदनिमोत सर्वान् नि मष्मषाकरं दृषदा खल्वां इव नदनिमा।

कीड़े को, जैसे पत्थर से वनों को मसलते हैं उसी प्रकार मसल डाला।

शांखायन गृह्यसूत्र[4] में भी इसी अर्थ में 'मषम्' शब्द का प्रयोग हुआ है—

गौः कृष्णस्य शुक्लकृष्णानि लोहितानि च रोमाणि मषं कारयित्वा।

काली गाय के शुक्ल कृष्ण और लोहित वर्ण के राखों का चूर्ण कराकर।

बंगला भाषा[5] में भी मष शब्द 'हिंसा' अर्थ में प्रयुक्त होता है।

इस प्रकार मष हिंसार्थः से तात्पर्य चूर्ण कर देना, मसल देना है।

रुष्[6] (रुष) हिंसार्थः(प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम।
वधे कविकल्पद्रुम।

---

१. म०व्यु०कोष० पृ० ६४४
२. पा०धा० १।४४७, क्षीर० १।४५८, धा०प्र० १।६९२, चा०धा० १।२३०, जै०धा० १।४९६, काश०धा० १।२९३, कात०धा० १।२२४, शाक०धा० १।२३६, जै०धा० १।५१२, क०क०द्रु०धा० ३२०
३. ५।२३।८
४. १।२४।७
५. बं०श०कोष २।१७४२
६. पा०धा० १।४४७, क्षीर० १।४५८, धा०प्र०, १।६९३, चा०धा० १।२३०, जै०धा० १।४९६, काश०धा० १।२९३, कात०धा० १।२२४, शाक०धा० १।८३६, है०धा० १।५१४, क०क०द्रु०धा० ३२३

ऋक्-संहिता[1] में यह धातु 'वध करना', 'मारना' अर्थ में प्रयुक्त हुई है—

सव्यामनु स्फिग्यं बावसे वृषा न दानो अस्य रोषति ।

कामनाओं की पूर्ति करने वाला इन्द्र शरीर के एक देश में वर्तमान है । इन्द्र को कोई भी नहीं मार सकता ।

सा०भा०—रोषति, हिनस्ति । इन्द्रं हिंसितुं शक्तः कश्चिदपि नास्ति ।

ऐतरेय ब्राह्मण[2] में क्रुद्ध होना अर्थ में रुष् धातु का प्रयोग हुआ है—

विश्वस्य देवीमृक्यस्य जन्मनो न या रोषाति ।

सारे गतिमान प्राणियों के जन्म की स्वामिनी मृत्यु देवता हमारे ऊपर कभी क्रुद्ध नहीं होती ।

सा०भा०—रोषाति-कुप्यति ।

मराठी भाषा[3] में पारुखणें क्रिया रुष् हिंसायाम् धातु से व्युत्पन्न है । पारुखणें क्रिया का अर्थ खिन्न होना है ।

मराठी ज्ञानेश्वरी ग्रन्थ[4] में प्रयोग देखिए—

स्थ सारासार विचारावें । कवणें काय आचरावें ।

आणि विधिनिषेध आधवे । पारुषता ।

रिष्[5] (रिष) हिंसार्थः (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम ।

वधे कविकल्पद्रुम ।

नष्ट होना अर्थ में ऋक्-संहिता[6] में रिष् धातु का प्रयोग देखिए—

नू चित्स भ्रेषते जनो न रेषन्मनो यो अस्य घोरमाविवासात् ।

जो मनुष्य इन्द्र की यज्ञों में सेवा करता है, वह कभी स्थान से च्युत नहीं होता और न ही नष्ट होता है ।

---

१. ८।४।८

२. ४।१०

३. म०व्यु० कोष, पृ० ४९५

४. १।२४६

५. पा०धा० १।४४७, क्षीर० १।४५८, धा०प्र० १।६९४, चा०धा० १।२३०, जै०धा० १।४९६, काश०धा० १।२९३, कात०धा० १।२२४, शाक०धा० १।८३७, है०धा० १।५१५, क०क०द्रु०धा० ३२३

६. ७।२०।६

शतपथ ब्राह्मण[1] में सताने के अर्थ में रिष् धातु का प्रयोग देखिए—

मा न प्रजा ँ रीरिषः ।

हमारी सन्तान को मत सता ।

शतपथ ब्राह्मण[2] में ही एक अन्य स्थल पर आयु को काटने अर्थ में रिष् धातु का प्रयोग हुआ है—

पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोरिति ।

जब पुत्र पिता हो जाते हैं, आप हमारी पूरी होने वाली आयु को बीच में मत काटो ।

निरुक्त में[3] हिंसा अर्थ में ही रिष् धातु का प्रयोग देखिए—

मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धान्या—

वह अन्तरिक्ष मेघ हमारी हिंसा के लिए अपने को धारण न करे ।

श्वेताश्वतर उपनिषद् में[4] देखिए—

मा नो अश्वेषु रीरिषः ।

हमारे घोड़ों पर क्रोध मत करो ।

भट्टिकाव्य में[5] देखिये—

रेष्टारं रेषितं व्यास्यद् रोष्टाऽक्षः शस्त्रसंहतीः ।

हिंसक हनुमान को मारने के लिए शस्त्रसमूहों को छोड़ा ।

बंगला साहित्य धर्ममंगल[6] में द्वेष, ईर्ष्या अर्थ में 'रिष' शब्द का प्रयोग हुआ है ।

शस्[7] (शसु) हिंसायाम् (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम ।

वधे — कविकल्पद्रुम ।

---

१. १३।८।३।४
२. २।३।३।६
३. १०।४।३१
४. ४।२२
५. ६।२१
६. पृ० ४५२
७. पा०धा० १।४६७, क्षीर० १।४५८, धा०प्र० १।७२८, चा०धा० १।२५०, जै०धा० १।४६६, काश०धा० १।३१०, कात०धा० १।२४०, शाक०धा० १।८३३, है०धा० १।५१५, क०क०द्रु०धा० ३४१

—ऋक् संहिता में[1] विशसनस्थान अर्थ में शसने शब्द का प्रयोग हुआ है।

मित्रकुवो यच्छसने न गावः पृथिव्या आपृगमुया शयन्ते।

शसने—विशसनस्थाने।

शतपथ ब्राह्मण में[2] मारने के अर्थ में शस् धातु का प्रयोग देखिये—

तद्यत्रैनं विशसन्ति।

जहाँ उसको मारते हैं।

मनुस्मृति में[3] अंगों का काट काट कर पृथक् करना अर्थ में शस् धातु प्रयुक्त हुई है—

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी—घातकाः।

विशसिता—अङ्गानि यः कर्तर्यादिना पृथक्पृथक्करोति।

मराठी भाषा में[4] शस्त्र शब्द 'शस् हिंसायाम्' धातु से व्युत्पन्न है। बंगला भाषा में[5] भी शस शब्द हिंसा, वध का वाचक है।

नभ्[6] (णभ) हिंसायाम् (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

ऋक्-संहिता में[7] देखिए—

नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु।

शत्रुओं के धनुष पर चढ़ी हुई प्रत्यंचा को नष्ट कर दे।

सा०भा०—**नभन्ताम्-नश्यन्तु।**

तैत्तिरीय ब्राह्मण में[8] उपर्युक्त मन्त्र ही वर्णित है।

---

१. १०।८६।१४

२. ३।८।१।४

३. ५।५१

४. म०व्यु०कोष पृ० ६८१

५. बं०श० कोष २।२००१

६. पा०धा० १।४८७, क्षीर० १।४८०, धा०प्र० १। , चा०धा० १।२१५, जै०धा० १। , शाक०धा० १।५७२, कात०धा० १।४८०, शाक०धा० १।२८७, है०धा० १।५४६, क०क०द्रु०धा० २४५

७. १०।१३३।१

८. २।५।८।२

ऐतरेय ब्राह्मण में[1] देखिये—

यजमानाः प्रातस्सवने नभाकेन बलं नभयन्ति।

यजमान प्रातःकाल नभाक नामक मन्त्र से बल नामक असुर को नष्ट करते हैं।

निघण्टु में[2] देखिए—

धूर्वति, नभते—वधकर्माणः।

बंगला भाषा[3] में भी 'नभ' शब्द हिंसा अर्थ प्रयुक्त में होता है।

श्नथ्[4] (श्नथ) हिंसायाम् (प०)—चान्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन।

वधे कविकल्पद्रुम।

ऋक्-संहिता[5] में अभिपूर्वक श्नथ् धातु का प्रयोग हुआ है—

इन्द्रस्य वज्रादबिभेदभिश्नथः।

इन्द्र के दोनों ओर से हिंसक वज्र से शत्रु डर गये।

अभिश्नथः—अभितो हिंसकात्।

तैत्तिरीय ब्राह्मण[6] में देखिए—

शुचि नु स्तोमं . श्नथद्वृत्रम्।

इस प्रकार श्नथ् धातु वध करना अर्थ में प्रचलित है।

क्रथ्[7] (क्रथ)हिंसार्थः (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम।

वधे कविकल्पद्रुम।

---

१. ६।२४

२. २।१९

३. बं०श० कोष१।११७८

४. चा०धा० १।५३६, काश०धा० १।६०८, शाक०धा० १।९ , क०क०द्रु०धा० १८९

५. १०।१३।५

६. २।८।५।१

७. पा०धा० १।५२६, क्षीर० १।५३९, धा०प्र० १।८०६, चा०धा० १।५३६, जै०धा० १।४९२, काश०धा० १।६०८, कात०धा० १।५१६, शाक०धा० १।३३५, है०धा० १।१०४५, क०क०द्रु०धा० १८५

महाभारत के कर्ण पर्व[1] में 'हिंसा' में क्रथनाय शब्द का प्रयोग हुआ है—

अहार्यं चैव शुद्धाय क्षयाय क्रथनाय च।

नीलकण्ठ व्याख्या में क्रथनाय हिंसाय कहा गया है।

मेधृ[2] (मेधृ) हिंसायाम् (उ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, काशकृत्स्न, हैम।

वधे कविकल्पद्रुम।

मेध धातु निन्दा करना, क्रोध करना, हिंसा करना अर्थ में प्रचलित है—

ऋक् संहिता में[3] देखिए—

न मेथेते नक्तोषासा विरूपे।

रात्रि और उषा अन्धकार और प्रकाश विरोधी रूप वाली होती हुई भी परस्पर एक दूसरे की हिंसा नहीं करतीं।

निन्दा करने के अर्थ में ऋक् संहिता[4] में ही देखिए—

न पूषणं मेथामसि सूक्तैरभि गृणीमसि।

पूषण देव की हम निन्दा नहीं करते, बल्कि मन्त्रों से उनकी स्तुति करते हैं।

ऋक् संहिता[5] में ही क्रोध करना अर्थ में मेध धातु का प्रयोग देखिए—

न मा मिमेथ न जिही।

(मेरी पत्नी ने) मुझ कपटी पर न क्रोध किया और न ही लज्जाई।

मिथृ[6] (मिथ) हिंसायाम् (उ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, शाकटायन, हैम।

वधे कविकल्पद्रुम।

---

१. ८।३३।५८

२. पा०धा० १।६००, क्षीर० १।६१०, काश०धा० १।६६६, है०धा० १।६०२ क०क०द्रु०धा० १८८

३. १।११३।३

४. १।४२।१०

५. १।१३४।२ (?)

६. पा०धा० १।६००, क्षीर० १।६१०, शाक०धा० १।६०७, है०धा० १।६०१, क०क०द्रु०धा० १८८

बंगला भाषा[१] में मिथ शब्द हिंसा का वाचक है।

मिथ्[२] (मिथ) हिंसायाम् (उ०)—पाणिनीय।

बंगला भाषा[३] में मिथ शब्द हिंसा, वध का वाचक है।

छष्[४] (छष) हिंसायाम् (उ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, शाकटायन।

वधे कविकल्पद्रुम।

मराठी भाषा[५] में चेंचणें क्रिया छष् हिंसायाम् धातु से व्युत्पन्न है। चेंचणे क्रिया का अर्थ प्रहार करना है।

भर्व् (भर्व) हिंसायाम् (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, शाकटायन, हैम।

वधे कविकल्पद्रुम।

भर्व् धातु नाश करना अर्थ में प्रयुक्त होती है।

ऋक् संहिता[७] में देखिए—

अग्निर्जम्भैस्तिगितैरत्ति **भर्वति**, योधो न शत्रून्।

यह अग्नि तीक्ष्णीभूत दन्तस्थानीय ज्वालाओं से हमारे विरोधियों को खाती है, उनकी हिंसा करती है।

भर्वति—हिनस्ति।

अदादिगण

हन्[८] (हन) हिंसायाम् (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप,

---

१. ब०श०कोष २।१७८८

२. पा०धा० १।६००

३. बं०श०कोष २।१७८६

४. पा०धा० १।६१८, क्षीर० १।६२६, धा०प्र० १।८६५, जै०धा० १।४६७, काश०धा० १।६८४, शाक०धा० १।६२७, क०क०द्रु०धा० ३१०

५. म०व्यु०कोष पृ० २८८

६. पा०धा० १।५७५, क्षीर० २।२१, धा०प्र० १।५८०, चा०धा० १।२०१, शाक०धा० १।७८५, हैं०धा० १।४७७, क०क०द्रु०धा० २६४

७. १।१४३।५

८. पा०धा० २।२, क्षीर० २।२, धा०प्र० २।२, चा०धा० २।४, जै०धा० ३।४६८, काश०धा० २।४, कात०धा० २।४, शाक०धा० २।६४४, हैं०धा० २।४२, क०क०द्रु०धा० २२४

चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र,
हैम ।
वधे कविकल्पद्रुम ।

हन् धातु 'वध करना' अर्थ में प्रचलित है ।

ऋक्संहिता में[1] देखिए—

उप क्षत्रं पृञ्चीत हन्ति राजभिः ।

देव अपने को बल से युक्त करता है एवं वरुणादि राजाओं के साथ शत्रुओं को मारता है ।

अथर्व-संहिता[2] में देखिए—

यथा कृत्याकृतं हनत् ।

जिससे वह हत्या करने वाले को मार डाले ।

शतपथ ब्राह्मण[3] में देखिए—

एतेनोपा ॅ शुयाजेन पाप्मानं द्विषन्तं,
भ्रातृव्यमुपत्सर्य वज्रेण वषट्कारेण हन्ति ।

यह यजमान मन्द उच्चारण से वषट्कार रूपी वज्र के द्वारा जिस पापी अहितकारी शत्रु को चाहता है, उसके पास चुपके से जाकर उसको मार डालता है ।

कात्यायनश्रौतसूत्र[4] में देखिए—

सिध्रकमुसलैर्न (३) न ॅ हन्ति ।

रामायण के सुन्दरकाण्ड में[5] मारना अर्थ में देखिए—

अन्यांश्च तलैर्जघान;

अन्यों को थप्पड़ों से मारा ।

उत्तररामचरित[6] में देखिए—

त्रयश्च दूषणखरत्रिमूर्धानो रणे हताः ।

---

१. १।४०।८
२. ५।१४।४
३. १।६।३।२८
४. २०।१।३८
५. ६१।२२
६. २।१५

दिवादिगण

पुथ्[1] (पुथ) हिंसायाम् (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

पुथ् धातु का प्रयोग महाभारत में अधिक हुआ है । पुथ् धातु लड़ना, झगड़ना, मार गिराना अर्थों में प्रयुक्त हुई मिली है ।

महाभारत के कर्णपर्व[2] में देखिए—

एनं गदया **पोथयिष्ये** ।

महाभारत के ही मौसलपर्व[3] में एक अन्य प्रयोग देखिए—

मत्ताः परिपतन्ति स्म पोथयन्तः परस्परम् ।

लोग परस्पर **जूझते हुए** एक-दूसरे पर मतवाले होकर टूटे थे ।

शिवराज-विजय[4] में पटक देने के अर्थ में पुथ् धातु का प्रयोग देखिए—

रुधिरदिग्धं च तच्छरीरं कटि-प्रदेशे समुत्तोल्य भूपृष्ठेऽ**पोथयत्** ।

रुधिर से लथपथ उसका शरीर कमर से उठाकर जमीन पर **पटक दिया** ।

इस प्रकार पुथ् धातु लड़ना, झगड़ना, मारना अर्थों में प्रयुक्त होती है ।

जूर्[5] (जूरी) हिंसायाम् (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, शाकटायन ।

वधे — कविकल्पद्रुम ।

ऋक् संहिता[6] में नष्ट होने के अर्थ में जूर् धातु का प्रयोग हुआ है—

स न ऊर्जामुपाभृत्यया कृपा न जूर्यति ।

---

१. पा०धा० ४।१२, क्षीर० ४।११, धा०प्र० ४।१३, चा०धा० ४/१३ काश० धा० ३।१०, कात०धा० ३।७१३, शाक०धा० ४।१०३७, है०धा० ३।११, क०क०द्रु०धा० १८७

२. ६५।१५

३. ४।४०

४. २।११५ पृ०

५. पा०धा० ४। , क्षीर० ४।४४, धा०प्र० ४।५०, जै०धा० ४।४६६, काश०धा० ३।६७, शाक०धा० ४।११२६, क०क०द्रु०धा० २६५

६. १।१२८२

रध्[1] (रध) हिंसायाम् (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

नाश अर्थ में शतपथ ब्राह्मण[2] में रध् धातु का प्रयोग देखिए—

तस्माद् ह न स्वा ऋतीयेरन् । य एषां परस्तरामिव भवति स एनान-नुव्यवैति ते प्रियं द्विषतां कुर्वन्ति द्विषद्भूयो रध्यन्ति तस्मान्नऽर्तीयेरन्त्स हैव विद्वान्नऽर्तीयंते प्रियं द्विषतां करोति न द्विषद्भयो रध्यति तस्मान्नऽर्तीयंत ।

इसलिए आपस में झगड़ना नहीं चाहिए क्योंकि इनका कोई दूर (शत्रु) भी होता है जो इनमें घुस जाता है और शत्रु को जो प्रिय होता है, वे उसी को करने लगते हैं और शत्रु उनका विध्वंस कर देता है इसलिए झगड़ा नहीं करना चाहिए। जिसको इसका ज्ञान है वह झगड़ता नहीं और वही करता है जो शत्रु को अप्रिय होता है और शत्रु उसका नाश नहीं कर सकता, इसलिए झगड़ा नहीं करना चाहिए ।

बंगला भाषा[3] में रध शब्द हिंसा, वध का वाचक है ।

मराठी भाषा[4] में निरडणें, निरढलणें क्रियाएँ रध्-हिंसायाम् धातु से व्युत्पन्न हैं। निरडणें, निरढलणें क्रियाओं का अर्थ to season, to harden (योग्य बनाना) है ।

रिष्[5] (रिष) हिंसायाम् (प०)—पाणिनीय ।

नष्ट होने के अर्थ में ऋक् संहिता[6] में रिष् धातु का प्रयोग देखिए—

स धा वीरो न रिष्यति ।

वह यजमान वीर्ययुक्त होता हुआ नष्ट नहीं होता ।

रिष्यति—विनश्यति ।

आपस्तम्बश्रौतसूत्र[7] में देखिये—

---

१. पा०धा० ४।६०, क्षीर० ४।८४, धा०प्र० ४।८७, चा०धा० ३।३४, जै०धा० ४।४६८, काश०धा० ३।३३, कात०धा० ३।७३७, शाक०धा० ३।११०५, है०धा० ३।४५, क०क०द्रु०धा०२१५

२. ३।४।२।३

३. बं०श०कोष २।१८६२

४. म०व्यु०कोष पृ० ४५४

५. पा०धा० ४।१२७

६. १।१८।४

७. ७।१६।६

न वा उ तन्म्रियसे न रिष्यसि देवा ँ इदेषि पथिभिः सुगेभिः।

छान्दोग्य उपनिषद्[1] में देखिए—

स यथैकपाद्व्रजन्रथो वैकेन चक्रेण वर्तमानो रिष्यत्येवमस्य यज्ञो रिष्यति यज्ञं रिष्यन्तं यजमानोऽनुरिष्यति।

जिस प्रकार एक पांव से चलने वाला पुरुष अथवा एक पहिये से चलने वाला रथ नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार इसका यज्ञ भी नाश को प्राप्त हो जाता है। यज्ञ के नाश होने के पश्चात् यजमान का नाश होता है।

मनुस्मृति[2] में देखिये—

तेन यायात् सतां मार्गं तेन गच्छन् न रिष्यते।

सज्जनों के मार्ग से चले, ऐसा करने से मनुष्य पीड़ित नहीं होता।

मराठी भाषा[3] में भैंस वाचक रेडा शब्द रिष् हिंसायाम् धातु व्युत्पन्न है।

बंगला भाषा[4] में हिंसा, द्वेष, ईर्ष्या अर्थ में रिष शब्द का प्रयोग होता है।

स्वादिगण

रि[5] हिंसायाम् (प०)—पाणिनीय, धातुप्रदीप।

मराठी भाषा[6] में खरवर्णे क्रिया रि हिंसायाम् धातु से व्युत्पन्न है। खरवर्णे क्रिया का अर्थ रोमांचित होना है।

क्षि[7] हिंसायाम् (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, कविकल्पद्रुम।

यह धातु शतपथ ब्राह्मण में[8] आयु को कम करना अर्थ में प्रयुक्त हुई—

एष वै मृत्युर्यत्संवत्सरः। एष हि मर्त्यानामहोरात्राभ्यामायुः क्षिणोत्यथ म्रियन्ते।

यह जो संवत्सर है वह मृत्यु ही है, क्योंकि वह दिन और रात के द्वारा मर्त्यों की आयु को क्षीण करता है और वे मर जाते हैं।

---

१. ४।१६।३

२. ४।१७८

३. म०व्यु०कोष पृ० ६२०

४. बं०श० कोष २।१९२०

५. पा०धा० ५।३०, धा०प्र० ५।३१

६. म०व्यु० कोष पृ० ६१२

७. पा०धा० ५।३०, क्षीर० ५।३३, धा०प्र० ५।३२, क०क०द्रु०धा० ४७

८. १०।४।३।१

चिरि[1] हिंसायाम् (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, कविकल्पद्रुम।

जिघांसायाम् काशकृत्स्न, कातन्त्र।

मराठी भाषा[2] में शिरशिरी शब्द चिरि हिंसायाम् धातु से व्युत्पन्न है। शिरशिरी शब्द का अर्थ काँपना है।

दाश्[3] (दाश) हिंसायाम्—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, कविकल्पद्रुम।

मराठी भाषा[4] में 'डाचणें' क्रिया 'दाश् हिंसायाम्' धातु से व्युत्पन्न है। डाचणें क्रिया का अर्थ गले में जलन होना, काटना है।

तुदादिगण

ऋफ्[5] (ऋफ) हिंसायाम् (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

मराठी भाषा[6] में रुपणें क्रिया 'ऋफ हिंसायाम्' धातु से व्यत्पन्न है। 'रुपणें' क्रिया का अर्थ 'डूबना, काटना' है।

चृत्[7] (चृती) हिंसायाम् (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

भट्टिकाव्य[8] में चृत् धातु वध अर्थ में प्रयुक्त हुई है—

---

१. पा०धा० ५।३०, क्षीर० ५।२३, धा०प्र० ५।३३, चा०धा० ५।२२, काश० धा० ४।८७, कात०धा० ५।८४२, क०क०द्रु०धा० ४८

२. म०व्यु० कोष पृ० ६८८

३. पा०धा० ५।३०, क्षीर० ५।२३, धा०प्र० ५।३५, क०क०द्रु०धा० ३००

४. म०व्यु०कोष पृ० ३४८

५. पा०धा० ६।३५, क्षीर० ६।२८, धा०प्र० ६।३५, चा०धा० ६।८८०, जै०धा० ६।५००, काश०धा० ५।३२, कात०धा० ५।३०, शाक०धा० ७।१३०७, है०धा० ५।६५, क०क०द्रु०धा० २३८

६. म०व्यु० कोष पृ० ६१८

७. पा०धा० ६।३५, क्षीर० ६।३६, धा०प्र० ६।४४, चा०धा० ६।३७, शाक० धा० ७।१३२०, है०धा० ५।५५, क०क०द्रु०धा० १८१

८. १६।२०

चरस्यन्ति बालवृद्धांश्च ।

(वानर) बालक और बुड्ढे राक्षसों को भी मार डालेंगे ।

मराठी भाषा[1] में चिरडणें क्रिया चृत् हिंसायाम् धातु से व्युत्पन्न है । 'चिरडणें' क्रिया का अर्थ 'दबाना' है ।

मृण्[2] (मृण) हिंसायाम् (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

अथर्व-संहिता[3] में वध अर्थ में मृण् धातु प्रयोग हुआ है—

अनासो दस्यूंरमृणो वधेन ।

शब्दरहित असुरों को शस्त्र से मार दिया ।

तृह्[4] (तृह्) हिंसायाम् (प०)—क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, काशकृत्स्न, हैम ।

अथर्व-संहिता[5] में नष्ट करने के अर्थ में तृह् धातु प्रयुक्त हुई है—

दृष्टमदृष्टमतृहमथो कररुमतृहम् ।

सा०भा०—मैं नेत्र से दिखने वाले और नेत्र से न दिखने वाले शरीर के भीतर स्थित कीड़ों को नष्ट करता हूँ ।

मराठी भाषा में[6] टरकणें क्रिया फाड़ने के अर्थ में प्रयुक्त होती है । टरकणें 'तृह हिंसायाम्' धातु से व्युत्पन्न है ।

स्तृह्[7] (स्तृहु) हिंसायाम् (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, कातन्त्र, हैम, कविकल्पद्रुम ।

---

१. म०व्यु०कोष पृ० २८२

२. पा०धा० ६।४१, क्षीर० ६।४२, धा०प्र० ६।५०, चा०धा० ६।४२, जै०धा० ६।५००, काश०धा० ५।४२, कात०धा० ६।.०, शाक०धा० ७।१३२८, है०धा० ५।४८, क०क०द्रु०धा० १७७

३. ५ २९।१०

४. क्षीर० ६।५७, धा०प्र० ६।६७, चा०धा० ६।५७, काश० धा०, ५।७० है०धा० ५।१०८

५. २।३१।२

६. म०व्यु०कोष पृ० ३३५

७. पा०धा० ६।५७, क्षीर० ६।५७, धा०प्र० ६।६८, कात०धा० ५।६१७, है० धा० ५।११०, क०क०द्रु०धा० ३५३

मराठी भाषा[1] में आठोरणें, आठरणें क्रियाएं सिकुड़ना अर्थ में प्रयुक्त होती है। आठोरणें, आठरणें क्रियाएँ स्तृह् हिंसायाम् धातु से व्युत्पन्न हैं।

तृंह[2] (तृन्ह्) हिंसायाम् (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

विदारण अर्थ में ऋक्-संहिता[3] में तृंह धातु का प्रयोग देखिए—

उद्नो ह्रदमपिबज्जर्हृषाणः कूटं स्य तृंहद्।

अत्यन्त हृष्ट होते हुए वृषभ ने जलाशय और पर्वत की चोटी को सींग से विदारित किया।

शतपथ ब्राह्मण[4] में बुराई का नाश करना अर्थ में तृंह धातु प्रयुक्त हुई है—

यजमानस्य पाप्मानं तृंहती परिप्लवेते।

देवचक्र यजमान की बुराई का नाश करते हुए घूमा करते हैं।

रुश्[5] (रुश) हिंसायाम् (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

तीक्ष्ण अर्थ में भागवत पुराण[6] में रुश् धातु का प्रयोग हुआ है—

वारितो मदयन्त्यापो रुशतीः पादयोर्जहौ।

(रानी मदयन्ती के) रोक देने के कारण उसने तीक्ष्ण जल को अपने पैरों पर डाल दिया।

---

१. म०व्यु०कोष पृ० ३३५

२. पा०धा० ६।५७, धा०प्र० ६।६६, चा०धा० ६।५७, जै०धा० ६।५०२, काश०धा० ५।७०, कात०धा० ५।६१७, शाक०धा० ७।१३४६, है०धा० ५।१०६, क०क०द्रु०धा० ३४६

३. १०।१०२।४

४. १२।२।२।२

५. पा०धा० ६।१२७, क्षीर० ६।१२४, धा०प्र० ६।१४५, चा०धा० ६।११५, जै०धा० ६।५०१, काश०धा० ५।५६, कात०धा० ५।६०३, शाक०धा० ७।१२८५, है०धा० ५।६६, क०क०द्रु०धा० ३०३

६. ६।६।२४

रिश्[1] (रिश) हिंसायाम् (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

हिंसा अर्थ में ऋक्संहिता[2] में रिश् धातु का प्रयोग देखिये—

प्रजावतीः सूयवसं **रिशंतीः** श्रद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।

गौएं वत्स से युक्त हों । शोभनतृण को खाने के लिए हिंसा वाली हों ।

रिशंती रिशत्यो—भक्षणार्थं हिंसत्यो भवत ।

निरुक्त में[3] शत्रुओं के नाशक अर्थ में रिशादस शब्द का प्रयोग हुआ है—

अस्ति हि वः सजात्यं **रिशादसो** देवासो अस्त्याप्यम् ।

हिंसा करने वालों के नाशक देवजनों, निश्चय से तुम्हारा समानबन्धुत्व परस्पर उपकार करने का है ।

रेशयतां—हिंसावतां शत्रूणां नाशकाः ।

बंगला भाषा[4] में रिश शब्द हिंसा का वाचक है ।

रुधादिगण

हिंस्[5] (हिंसि) हिंसायाम् (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

ऋक् संहिता में[6] बाधा पहुंचाना अर्थ में हिंस् धातु का प्रयोग हुआ है—

न यं **हिंसन्ति** धीतयः ।

जिस इन्द्र को (धीतयः—कर्माणि, परिचरणानि) कर्म **बाधा नहीं पहुंचाते** ।

---

१. पा०धा० ६।१२७, क्षीर० ६।१२४, धा०प्र० ६।१४६, चा०धा० ६।११५, जै०धा० ६।५०१, काश०धा० ५।५६, कात०धा० ५।६०३, शाक०धा० ७।१२८५, है०धा० ५।६६, क०क०द्रु०धा० ३०३

२. ६।२८।७

३. ६।३।५३

४. बं०श० कोष २।१६२०

५. पा०धा० ७।२५, क्षीर० ७।२४, ध०प्र० ७।१६, चा०धा० ७।१५, जै० धा० ७।५०१, काश०धा० ६।१५, कात०धा० ६।६७६, शाक०धा० ६।१४३६, है०धा० ६।२२, क०क०द्रु०धा० ३४३

६. ६।३४।३

हिंसन्ति—न बाधन्ते ।

अथर्वसंहिता में[1] इस धातु का दुःखित होना अर्थ में प्रयोग हुआ है—

इदं देवाः शृणुत ये यज्ञीया—पाओ स वद्धौ दुरिते;
यो अस्माकं मन इदं **हिनस्ति** ।।

जो यज्ञ के योग्य हैं ऐसे देवताओं, तुम मेरे वाक्य को सुनो, जो हमारा शत्रु पहले हमारे सन्मार्ग में चित्त को दुःखित कर चुका है ।

शतपथ ब्राह्मण में[2] हानि पहुंचाना अर्थ में हिंस् धातु का प्रयोग हुआ है—

तथो हैनमेष वज्रो न **हिनस्ति** ।

इस प्रकार वज्र उसको **हानि नहीं पहुंचाता** ।

सताने के अर्थ में शतपथ ब्राह्मण में[3] ही देखिए—

तत्र जपति । विश्वकर्म्मस्तनूपा असि मा मो दोषिष्टं मा मा[७] हिं-
सिष्टमेष वा···।

अब वह जपता है—हे विश्वकर्म्मा, तू शरीर की रक्षा करने वाला है । हे दोनों अग्नियों, मुझे न जलाओ, मुझे न **सताओ** ।

कात्यायनश्रौतसूत्र[4] में देखिये—

स्फ्येनाहृत्य बहिर्वेदरनूकान्तेषूपदधाति तिष्ठन्मा मा **हिं सीदिति**
प्रत्यृचं प्रतिदिशं पुरस्तात्प्रथमम् ।

गीता[5] में देखिये—

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्;
न **हिनस्त्यात्मनात्मानं** ततो याति परां गतिम् ।

क्योंकि वह पुरुष सब में समभाव से स्थित हुए परमेश्वर को समान देखता हुआ अपने द्वारा आपको **नष्ट नहीं करता है**, इससे वह परम गति को प्राप्त होता है ।

(शरीर के नाश होने से आत्मा का नाश नहीं मानता है) ।

---

१. २।१२।२

२. १।१।१।१६

३. १।५।१।२५

४. १७।३।११

५. १३।२८

मालतीमाधव[1] में देखिये—

हिनस्ति प्रत्यङ्गं ज्वर इव गरीयानित इतः ।

गुरुतर ज्वर के सदृश प्रत्येक अंग को भीतर और बाहर पीड़ित कर रहा है ।

भट्टिकाव्य में[2] देखिये—

उत्तेरिथ समुद्रं त्वं मदर्थेऽरीन् जिहिंसिथ ।

आपने मेरे लिए समुद्रतरण किया और शत्रुओं को मारा ।

इस प्रकार प्रयोगों को देखते हुए स्पष्ट है कि हिंस् धातु पीड़ित होना, सताना, बाधा पहुँचाना अर्थों में प्रसिद्ध है । नाश और वध अर्थ में हिंस् धातु के अत्यन्त कम प्रयोग हैं ।

बंगला भाषा[3] में हिंस् शब्द हिंसा अर्थ में प्रयुक्त होता है, उदाहरणार्थ— बंगला महाभारत[4] में हिंस्रक और हिंसन शब्दों का प्रयोग हुआ है ।

तनादिगण

क्षण्[5] (क्षणु) हिंसायाम् (उ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

शतपथ ब्राह्मण[6] में यज्ञ को नष्ट कर देने के अर्थ में क्षण् धातु का प्रयोग हुआ है—

स वै वाचंयम एव स्यात् । ब्रह्मन्पुरस्थास्यामीत्येतस्माद्वचसो विवृहन्ति वा एत यज्ञं क्षण्वन्ति ये मध्ये यज्ञस्य पाकयज्ञिययेडया चरन्ति ।

अब वह चुपचाप रहे जब तक (अध्वर्यु) न कहे कि हे ब्रह्म, मैं आगे चलूं ? जो (ऋत्विज) यज्ञ के बीच में पाकयज्ञिया इडा करते हैं, वह यज्ञ को नष्ट कर देते हैं ।

---

१. २।१

२. १४ ५७

३. बं०श०कोष २।२३६०

४. १।२६ पृ०

५. पा०धा० ८।३, क्षीर० ८।३, धा०प्र० ८।३, चा०धा० ८।३, जै०धा० ८।५०१, काश०धा० ७।६, कात०धा० ७।६६१, शाक०धा० ८।१४११, है०धा ०७।३, क०क०द्रु०धा० १७२

६. १।७।४।१६

शतपथ ब्राह्मण[1] में ही एक अन्य स्थल पर घाव होना अर्थ में क्षण् धातु का प्रयोग हुआ है।

अथ पूर्णपात्रान्त्समवमृशन्ति। योनेकेप्सुषोमा इत्याचक्षते यथा वै युक्तोवहे-देवमेते यऽआर्त्विज्यं कुर्वन्त्युत वै युक्तः क्षणते वा वि वा लिशते शान्तिरापो भेषजम्।

अब वे मरे हुए पात्रों को छूते हैं जिनको कुछ लोग अप्सुषोमा (जलों में सोम) कहते हैं जैसे जुता हुआ घोड़ा ले जाता है इसी प्रकार यह भी ऋत्विज का काम करते हैं परन्तु जुते हुए घोड़े के घाव हो जाता है और वह खुजलाता है तब जल शान्ति और औषधि हैं।

प्राकृत ग्रन्थ आचाराङ्गसूत्र[2] में क्षण शब्द हिंसा अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—

न लिप्पइ छणपएण वीरे।
(न लिप्यते क्षणपदेन वीरः)।

धर्म का प्रचार करने की शक्ति से सम्पन्न वीर हिंसा के स्थानभूत अपनी आत्मा की विराधना से तथा संयम की विराधना से कभी भी उपलिप्त नहीं होता।

मराठी भाषा[3] में खणणें क्रियापद क्षण् हिंसायाम् धातु से व्युत्पन्न है। खखणें क्रिया का अर्थ तंग करना, पीड़ा देना है, उदाहरणार्थ—

ज्ञानेश्वरी ग्रन्थ[4] में देखिए—

अप्रवृतीचे खणुवाले।

क्र्यादिगण

द्रू[5] (द्रू) हिंसायाम् (उ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, काश-कृत्स्न, शाकटायन, हैम।

वधे — कविकल्पद्रुम।

---

१. ४।४।३।१३
२. २।६।१ पृ० ३६
३. म०व्यु० कोष पृ० १९४
५. १५।१६५
६. पा०धा० ९।१०, क्षीर० ९।१०, धा०प्र० ९।१०, काश०धा० ८।७, शाक० धा० ६।११९७, है०धा० ८।९, क०क०द्रु०धा० ६३

ऋक् संहिता में[1] में वध, हिंसा अर्थ में द्रू धातु का प्रयोग देखिए—

तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानैः ।

शीघ्रतापूर्वक निरन्तरगति से परसेना की हिंसा करते हुए ।

क्षि[2] (क्षिष्) हिंसायाम् (प०)—क्षीरतरंगिणी, चान्द्र, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम ।

ऋक् संहिता[3] में प्रहार करना अर्थ में क्षि धातु का प्रयोग देखिए—

अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान् क्षिणन्ति शत्रूंरनपव्ययतः ।

हिंसक शत्रुओं को पैरों के अग्रभाग से मारता है ।

क्षिणन्ति—हिन्सन्ति ।

अथर्व संहिता[4] में क्षीण करना अर्थ में प्रयुक्त हुई है—

क्षिणामि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वानहम् ।

अमोघ वीर्य बल वाले मन्त्र से शत्रुओं को क्षीण करता हूँ और अपनों को उत्कृष्ट विजय प्राप्त कराता हूँ ।

इस प्रकार क्षि हिंसायाम् से तात्पर्य प्रहार करना, क्षीण करना है ।

हिष्क्[5] (हिष्क) हिंसायाम् (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, काशकृत्स्न, हैम, कविकल्पद्रुम ।

मराठी भाषा में[6] फिसकणे क्रिया प्र उपसर्ग पूर्वक हिष्क् धातु से व्युत्पन्न है । फिसकणे का अर्थ to drop down, to be taken in है ।

बर्ह्[7] (वर्ह) हिंसायाम् (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम ।

---

१. ४।४।१

२. क्षीर० ६।३७, चा०धा० ६।२७, कात०धा० ८।१०२७, शाक०धा० ६।१२२६, है०धा० ८।३४

३. ६।७५।७

४. ३।१६।३

५. पा०धा० १०।१३०, क्षीर० १०।१३३, धा०प्र० १०।१४६, काश०धा० १०।१३३, है०धा० ६।२५०, क०क०द्रु०धा० ८६

६. म०व्यु०कोष पृ० ५२८

६. पा०धा० १०।१११, क्षीर० १०।११०, धा०प्र० १०।१२४, काश०धा० ६।६७, कात०धा० ६।११००, शाक०धा० १०।१०५६, है०धा० ६।४७,

मराठी भाषा में[1] चपेट मारना अर्थ में बर्ह हिंसार्थः धातु से व्युत्पन्न मडकविणे क्रिया का प्रयोग होता है।

बंगला भाषा में बर्ह शब्द हिंसा अर्थ का वाचक है।

लूष्[2] (लूष) हिंसायाम् (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम।

वधे कविकल्पद्रुम।

प्राकृत ग्रन्थ सुअगडांगसुत[3] में लूसन्ति क्रिया का प्रयोग हुआ है—

आयदण्डसमायोर मिच्छासंठियमावणा
हरिसघओसमावन्ना केई लूसन्ति नारिया।

मराठी भाषा[4] में लुसणें क्रिया लुष् हिंसायाम् धातु से व्युत्पन्न है। लुसणे क्रिया धनद्रव्यादि का अपहरण करना एवं किसी को खींचना अर्थों की वाचक है।

जस्[5] (जसु) हिंसायाम् (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम।

वधे कविकल्पद्रुम।

शतपथ ब्राह्मण[6] में जस् धातु का प्रयोग कमज़ोर करना अर्थ में हुआ है—

---

१. म०व्यु०कोष पृ० ५६१

२. पा०धा० १०।६४, क्षीर० १०।६४, धा०प्र० १०।७६, चा०धा० १०।५१, जै०धा० १०।५०३, काश०धा० ६। , कात०धा० ६।११००, शाक०धा० १०।१५५५, है०धा० ६।१३८, क०क०द्रु०धा० ३२३

३. १।३।१।१४

४. म०व्यु०कोष पृ० ६३४

५. पा०धा० १०।११६, क्षीर० १०।११७, धा०प्र० १०।१२६, ज०धा० १०।५०३, काश०धा० ६। , कात०धा० ६।११८६, शाक०धा० १०।१५६८, है०धा० ६।१४६, क०क०द्रु०धा० ३३३

७. २।२।२१।६

योऽनृतं वदति यथाग्नि ँ् समिद्धं समुदकेनाभिषिंचेदेव ँ् हेन ँ् स जासयति ।

जो झूठ बोलता है मानों वह जलती आग पर पानी डालता है, क्योंकि वह इस प्रकार उसको कमज़ोर करता है ।

मराठी भाषा[1] में चचणें क्रिया जस् हिंसायाम् धातु से व्युत्पन्न है । चचणें क्रिया का अर्थ स्वर्गवास होना, मर जाना है ।

---

१. म०व्यु०कोष पृ० २६४

पञ्चम अध्याय

धातुपाठों में धात्वर्थभेद

७० धातुओं के अर्थ के सम्बन्ध में वैयाकरणों में अनैक्य है किन्तु हमें केवल १८ धात्वर्थों के सम्बन्ध में प्रमाण मिले हैं, अतः उन्हीं धात्वर्थों को यहां लिया जा रहा है। कहीं-कहीं धातु अनैकार्थक है, और अनेक अर्थों में जिस अर्थ के सम्बन्ध में वैयाकरणों में अनैक्य है, केवल उसी विशिष्ट अर्थ के सम्बन्ध में प्रयोग दिखाये गये हैं। अन्य अर्थों के सम्बन्ध में, वैयाकरण जहां एकमत हैं, प्रयोग नहीं दिखाये गये हैं। विशिष्ट अर्थ अधोरेखांकित हैं।

धातु-सूची इस प्रकार है—

१	मन्द्	२	जल्
३	हुण्ड्	४	कुश्
५	तेव्	६	खर्ज्
७	उष्	८	मान्
९	विट्	१०	मुण्ड्
११	लट्	१२	मण्ड्
१३	लङ्घ्	१४	कित्
१५	यज्	१६	रुह्
तुदादिगण		चुरादिगण	
१७	कुड्	१८	पुस्त्

मन्द्[1] (मदि) स्तुतिमोदमदस्वप्नगतिषु (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी,

---

१. पा०धा० १।१३, क्षीर० १।१३; धा०प्र० १।१३, चा०धा० १।३१५, जै०धा० १।४८९, काश०धा० १।३८२, कात०धा० १।३०१, शाक०धा० १।१२, है०धा० १।७२३, क०क०द्रु०धा० १६३

	जैनेन्द्र, शाकटायन, हैम ।
स्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु	धातुप्रदीप, काशकृत्स्न, कातन्त्र ।
जाड्ये	चान्द्र ।
स्वप्ने जाड्ये मदे मोदे स्तुतौ गतौ	कविकल्पद्रुम ।

निघण्टु[1] में मन्द् धातु को दीप्त्यर्थक कहा गया है—

मन्दते ज्वलतिकर्माण: ।

जाड्य अर्थ में मन्द् धातु का प्रयोग स्पष्ट ही है । मूर्ख, मन्दबुद्धि के लिए **मन्द** शब्द का प्रयोग किया जाता है ।

रघुवंश[2] में देखिए—

मन्दः कवियशःप्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम् ।

मन्दमति होने पर भी कवियों की कीर्ति पाना चाहता हूँ, अत: हँसी का पात्र होऊँगा ।

बंगला भाषा[3] में मन्द शब्द निद्रा, मद, गर्व, हर्ष, दीप्ति, जाड्य अर्थों का वाचक है ।

जाड्य अर्थ में मन्द शब्द का अत्यधिक प्रयोग किया जाता है । चन्द्रगोमी ने जाड्य धात्वर्थ को मुख्यार्थ जानकर केवल जाड्य अर्थ में पाठ किया है ।

जल्[4] (जल) घात्ये (प०)—क्षीरतरंगिणी, शाकटायन, हैम ।

घातने	पाणिनीय ।
धान्ये	धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र ।
धान्ये	कविकल्पद्रुम ।

टीकाकार चन्नवीर[5] ने जल् धान्ये धात्वर्थ की व्याख्या आर्द्रीभाव अर्थ में की है—

धान्ये—आर्द्रीभावे । जलति—आर्द्रीभवति ।

---

१. १।१६

२. १।३

३. बं०श०कोष २।१७३१

४. पा०धा० १।५६१, क्षीर० १।१।५७०, धा०प्र० १।८३५, चा०धा० १।५६३, जै०धा० १।४६२, काश०धा० १।६३६, शाक०धा० १।१।५४/, कात०धा० १।३६४, है०धा० १।६७३, क०क०द्रु०धा० २७४

५. काश०धा० १।६३६

क्षीरस्वामी[1] घातनम् धात्वर्थ की व्याख्या मूर्खता अर्थ में करते हैं—

घात्यम्—जडत्वम्, अतैक्ष्ण्यम् ।

भट्टोजिदीक्षित सिद्धान्तकौमुदी[2] में घातनम्—तैक्ष्ण्यम् कहते हैं ।

जल् धान्ये धात्वर्थ जीवनोपयोगीक्रिया, आच्छादन क्रिया एवं समृद्धहोना इन सब अर्थों के बोध में समर्थ है—

धीयते अनेनेति धानं, तस्य भावः धान्यम्—जीवनोपयोगी क्रिया ।

जल (पानी) के बिना प्राणी का जीवित रहना असम्भव है, अतः जल् धान्ये से तात्पर्य यहाँ जीवनोपयोगी क्रिया है ।

धान्ये धात्वर्थ आच्छादन क्रिया का भी द्योतक है—

धीयते आच्छाद्यते अनेनेति धानं, तस्य भावः धान्यम् ।

मछलियों को पकड़ने के लिए बिछाया जाने वाला जाल का वाचक जाल शब्द जल् धातु से व्युत्पन्न है ।

धान्य धात्वर्थ की व्युत्पत्ति समृद्धि अर्थ में भी सम्भव है—

धनस्य भावः धान्यं—समृद्धिः ।

इस प्रकार 'जल धान्ये' केवल इतने ही धात्वर्थनिर्देश से यह अस्पष्ट ही रह जाता है कि वैयाकरणों को धान्ये धात्वर्थ से कौन सी व्याख्या अभिप्रेत है ।

क्षीरस्वामी और भट्टोजिदीक्षितकृत तैक्ष्ण्यम्, अतैक्ष्ण्यम् अर्थ में व्याख्या विपरीतार्थक होती हुई भी एक ही समय में सम्भव है—

साहित्य में प्रचलित जाल्म शब्द दुष्ट, नीच का वाचक है ।[3] दुष्ट व्यक्ति को बुराई, भलाई का पता नहीं चलता, नीच कर्म करने के लिए भी तैयार हो जाते हैं, अतः वे अतीक्ष्ण, मूर्ख शब्दों से व्यवहृत होते हैं । दुष्ट व्यक्ति अन्यों की अपेक्षा चालाक होते हैं, किसी न किसी तरीके से कार्य साध लेते हैं, अतः तीक्ष्ण कहलाते हैं । इस प्रकार तैक्ष्ण्यम् और अतैक्ष्ण्यम् दोनों विपरीतार्थ एक ही समय में सम्भव हैं ।

बंगला भाषा[4] में भी जल शब्द घातन, आच्छादन, जीवन, समृद्धि अर्थों में प्रयुक्त होता है ।

---

१. १।५७०

२. पृ० १०४

३. अ०को० २।१०।१६

४. बं०श० कोष १।६२०

हुण्ड्[1] (हुडि) सङ्घाते वरणे (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी ।

सङ्घाते हरणे	धातुप्रदीप ।
सङ्घाते	चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम ।
मग्ने संघे च	कविकल्पद्रुम ।
वरणं—स्वीकारः	क्षीरतरंगिणी[2] ।

टीकाकार चन्नवीर[3] ने पराजित होना अर्थ में हुण्ड् धातु की व्याख्या की है—

हुण्डते—पराजयते ।

संस्कृत साहित्य में हुण्ड् धातु के प्रयोग अनुपलब्ध हैं किन्तु बंगला भाषा[4] में प्रचलित हुण्ड् शब्द राशीकरण, स्वीकरण, हरण अर्थों का वाचक है । बंगला हुण्ड शब्द हुण्ड् धातु से ही व्युत्पन्न है । निमज्जन अर्थ में बंगला भाषा में हुड शब्द का प्रयोग किया जाता है । वोपदेव भी बंगाल देश के हैं, स्यात् इसी अभिप्राय से वोपदेव ने मग्ने अर्थ में हुण्ड् धातु का पाठ किया है ।

क्रुश्[5] (क्रुश) आह्वाने रोदने च (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप ।

रोदनाह्वानयोः	जैनेन्द्र ।
आह्वानरोदनयोः	शाकटायन, हैम ।
रोदे हूतौ	कविकल्पद्रुम ।
आह्वाने	चान्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र ।

ऋक् संहिता[6] में आह्वान अर्थ में क्रुश् धातु का प्रयोग देखिए—

---

१. पा०धा० १।१७२, १८०, क्षीर० १।१७२, १८०, धा०प्र० २७६, चा०धा० १।३७७, जै०धा० १।४६०, काश०धा० १।४३४, कात०धा० १।३५४, शाक०धा० १।६३, है०धा० १।६८२, क०क०द्रु०धा० १६८

२. १।१७२

३. काश०धा० १।४४३

४. बं०श०कोष २।२३७३

५. पा०धा० १।५८५, क्षीर० १।५६६, धा०प्र० १।८५६, चा०धा० १।५८२, जै०धा० १।४६२, काश०धा० १।६५५, कात०धा० १।५६४, शाक०धा० १।३८५, है०धा० १।६८६, क०क०द्रु०धा० २६६

६. १०।३७।१८

विक्रोशनासो विष्वे च आयन्;

विविध प्रजापति को आह्वान करते हुए सब अङ्गिरस आये।

ऋक् संहिता[1] में ही डर से चिल्लाना अर्थ में कुश् धातु का प्रयोग देखिए—

वसन्नरण्यान्यां सायमक्रुक्षदिति मन्यते।

भयानक जंगल में रहते हुए मनुष्य नाना प्रकार के पक्षी, मृग आदि के शब्द को सुनते हुए मानों कोई चोर चिल्ला रहा है, डरे हुए समझे जाते हैं।

अथर्वसंहिता[2] में विलाप करना अर्थ में प्रयोग देखिए—

क्रोशतु विकेशी पुरुषे हते।

पति के मारे जाने पर बिखरे बालों वाली (पत्नी) विलाप करने लगी।

ताण्ड्य ब्राह्मण[3] में चिल्लाना अर्थ में प्रयोग देखिए—

एतेन वा इन्द्र इन्द्रक्रोशे विश्वामित्रजमदग्नी इमा गाव इत्याक्रोशत्।

इन्द्र इन्द्रकोश संज्ञक स्थान पर है, विश्वामित्रजमदग्नी—ये गौएं हैं, इस प्रकार जोर से चिल्लाये।

अक्रोशत्—उच्चैर्घोषं कृतवान्।

रामायण के अयोध्याकाण्ड[4] में रट लगाना अर्थ में क्रुश् धातु का प्रयोग देखिये—

एष क्रोशति नत्यूहस्तं शिखीं प्रतिकूजति।

चातक पी कहां, पी कहां रट लगा रहा है, मोर बोल रहा है, मानों पपीहे की बात का उत्तर दे रहा हो।

भट्टिकाव्य[5] में आर्त्तनाद करना अर्थ में क्रुश् धातु का प्रयोग देखिए—

चकम्पेऽतीव चुक्रोश जीवनाशं ननाश च।

वह कांपा, अतिशय आर्तनाद करने लगा और जीवन से रहित हो गया।

---

१. १०।१४६।४

२. १०।११।७

३. १३।४।१४

४. ५६।६

५. १४।३१

राजतरङ्गिणी[1] में भी चिल्लाना, आर्तनाद करना अर्थ में क्रुश् धातु प्रयुक्त हुई है—

ज्वालामपश्यत्क्रोशन्त्याः शृगाल्या निर्गतां मुखात्;

चिल्लाती हुई शृगाली के मुख से उसने आग की लपट निकलती देखी।

बंगला भाषा[2] में क्रुश् शब्द रोदन, आह्वान, आक्रोश, चिल्लाना अर्थों में प्रयुक्त होता है।

कन्नड़ भाषा[3] में क्रुष्ट शब्द क्रुश् धातु से व्युत्पन्न है। कन्नड़ क्रुष्ट शब्द पुकारना, चिल्लाना, रोदन, शोरगुल अर्थों का वाचक है।

इस प्रकार क्रुश् धातु के प्रयोगों को देखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि रोना, चिल्लाना अर्थ में क्रुश् धातु आह्वान अर्थ की अपेक्षा अधिक प्रसिद्ध रही है। आह्वान अर्थ में ऋक्-संहिता में क्रुश् धातु का प्रयोग हुआ है किन्तु वहाँ आह्वान देवताओं से ही सम्बद्ध है। किसी व्यक्ति का नाम लेकर बुलाना आह्वान नहीं है; बल्कि हवन करते समय पितरों, देवताओं को उनका नामोच्चारण कर हवि दी जाती है, वही आह्वान है। चन्द्रगोमी, दुर्ग आदि वैयाकरणों ने केवल आह्वान अर्थ में क्रुश् धातु का पाठ किया है, स्यात् उन्हें रोदन अर्थ आह्वान अर्थ के अन्तर्गत ही अभिप्रेत होगा।

तेव्[4] (तेवृ) देवने (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, कातन्त्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

रुजायाम् (प०)—काशकृत्स्न।

देवने (आ०)—काशकृत्स्न।

टीकाकार चन्नवीर[5]कृत व्याख्या इस प्रकार है—

तेव् देवने, दुःखे; तेवति दुःखितो, भवति।

तेव् रुजायाम्, रोगे; तेवति, रिक्तो भवति।

---

१. ६।१८४

२. बं०श०कोष १।६६८

३. क०हि०कोष पृ० २१[illegible]

४. पा०धा० १।३२७, क्षीर० १।३३४, धा०प्र० १।४६८, चा०धा० १।४३८, जै०धा० १।४६१, काश०धा० १।२६३, ५०३, कात०धा० १।४२१, शाक०धा० १।१६२, हैं०धा० १। , क०क०द्रु०धा० २६१

५. काश०धा० १।२६३, ५०३

टीकाकार दुर्गादास[1] देवनम् शब्द की व्याख्या क्रीडा अर्थ में करते हैं—

देवनमिह क्रीडा ।

तेवते जालः कन्दुकैर्नित्यमिति हलायुधः ।

भट्टमल[2] देवनमिह रोदनम् कहते हैं ।

इस प्रकार दुःख, रोग, क्रीडा अर्थ में तेव् धातु का प्रयोग माना गया है ।

संस्कृत तथा अन्य भाषाओं में तेव् देवने धात्वर्थ के सम्बन्ध में संकेत उपलब्ध नहीं हैं किन्तु चन्नवीरकृत व्याख्या तेवते-रिक्तो भवति कन्नड़ भाषा[3] में प्रचलित तेवलु और तेवलि शब्दों से पुष्ट होती है —

तेवुलि, तेवलु—बाल झड़ने का रोग ।

बाल झड़ जाने से सिर गंजा हो जाता है । चन्नवीर ने स्यात् इसी अभिप्राय से तेवते, रिक्तो भवति व्याख्या की है । चन्नवीर भी कन्नड़ प्रदेश के ही हैं, कन्नड़ देश में प्रचलित अर्थ में तेव् रुजायाम् धात्वर्थ की उन्होंने व्याख्या की है ।

खर्ज्[4] (खर्जु) **पूजने च (व्यथने)**(प०)—पाणिनीय ।

मार्जने	चान्द्र, शाकटायन ।
मार्जने च (व्यथने)	क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र काशकृत्स्न, कातन्त्र, हैम ।
व्यथामृजोः	कविकल्पद्रुम ।

टीकाकार चन्नवीरकृत[5] व्याख्या इस प्रकार है—

खर्जति—शोधयते, पीडितो भवति पीडया ।

खर्जूः—पीडा ।

कात्यायन श्रौतसूत्र[6] में शब्द करना अर्थ में खर्ज् धातु का प्रयोग हुआ है—

---

१. श०क०द्रु०कोष

२. श०क०द्रु०कोष

३. क०हि०कोष कोष पृ० ३०५

४. पा०धा० १।१४१, क्षीर० १।१४१, धा०प्र० १।२२६, चा०धा० १।६८, जै०धा० १।४६४, काश०धा० १।६७, कात०धा० १।६७, शाक०धा० १।५५६, है०धा० १।१४५, क०क०द्रु०धा ११८

५. काश०धा० १।६७

६. ८।४।४

यजमानः संस्कारात्

अक्षे खर्जत्यक्रन्ददग्निरिति जपति ।

खर्जनं च शब्दकरणम् ।

कात्यायन श्रौतसूत्र[1] में एक अन्य स्थल पर देखिए—

स्वगोष्ठमिति च खर्जति ।

भाष्य—चक्रघर्षणजः शब्दः खर्जपदवाच्यः, स्वं च खर्जति चक्रघर्षणजं शब्दं कुर्वत्यनसीत्यर्थः ।

मानव श्रौतसूत्र[2] में इसी अर्थ में खर्ज् धातु का प्रयोग देखिए—

यदि खर्जेत्क्रन्दवत्यानुमन्त्रयेत ।

इस प्रकार वैदिक साहित्य में पूजन, मार्जन, व्यथन अर्थों से भिन्न शब्द करना अर्थ में खर्ज् धातु के प्रयोग मिले हैं। बाद के साहित्य में खर्ज् धातु पूजा, मार्जन अर्थ में प्रसिद्ध हो गई होगी, शब्द करना अर्थ लुप्त हो गया होगा । सभी वैयाकरणों ने शब्द अर्थ में धातु का पाठ नहीं किया ।

बंगला भाषा[3] में खर्ज शब्द पूजन, कण्डूयन अर्थों का वाचक है ।

प्राकृत भाषा[4] में खर्ज् शब्द खुजली अर्थ का वाचक है ।

खुजली करने में पीड़ा तो होती है अतः व्यथन अर्थ में खर्ज् धातु स्पष्ट ही है । वैयाकरणों द्वारा निर्दिष्ट मार्जन अर्थ भी खुजली अर्थ से भिन्न नहीं है । मार्जन पोंछना, उस स्थल को साफ करना अर्थ उसी से सम्बद्ध है । इस प्रकार खर्ज् धातु पूजा, व्यथन, मार्जन अर्थ में प्रचलित है, बंगला और प्राकृत भाषा इसमें प्रमाणस्वरूप हैं ।

उष्[5] (उष) दाहे (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, शाकटायन, हैम ।

रुजायाम् काशकृत्स्न, कातन्त्र ।

वधे, दाहे कविकल्पद्रुम ।

---

१. १६।६।२०

२. ६।१।४।३०

३. बं०श०कोष १।७२३

४. पाइ०म० पृ० ३४०

५. पा०धा० १।४४६, क्षीर० १।४६० धा०प्र० १।६६६, चा०धा० १।२३२, काश०धा० १।२६०, कात०धा० १।२२१, शाक०धा० १।८२७, है०धा० १।५३३, क०क०द्रु०धा० ३०७

टीकाकार चन्नवीरकृत[1] व्याख्या इस प्रकार है—

रुजायाम्—रोगे पीडायां वा । उषति पीडयति ।

टीकाकार दुर्गादासकृत[2] व्याख्या इस प्रकार है—

दहि-भस्मीकरणे ।

यश्चापि धर्म्मसमयात् प्रच्युतो धर्म्मजीवनः ।

दण्डेनेव तमप्योषेत् स्वकाद्धर्म्माद्धि विच्युतम् ।। मनुस्मृति ६।२७३

टीकाकार दुर्गादास ने दहि भस्मीकरणे धात्वर्थ की पुष्टि में मनुस्मृति से जो श्लोक उद्धृत किया है, चिन्त्य है । उपर्युक्त श्लोक में उष् धातु भस्म करना अर्थ के स्थान पर पीड़ित करना अर्थ को व्यक्त रही है—

(धर्मजीवी ब्राह्मण यदि अपने धर्म से भ्रष्ट हो जाये तो राजा उसे दण्ड देकर पीड़ित करें ।)

ऋक् संहिता[3] में उष् धातु का प्रयोग देखिए—

विश्वं ततृषाणमोषति न्यर्शसानमोषति ।

जितने भी अनुचरसंघ हैं, उनको दग्ध करता है । पूर्ण रूप से दग्ध करता है, ताकि कुछ न बचे ।

ओषति—दहति ।

नि ओषति—निःशेषेण दहति ।

अथर्वसंहिता[4] में देखिए—

ओष दर्भ सपत्नान् मे ओष मे पृतनायतः ।

ओष मे सर्वान् दुर्हार्द ओष मे द्विषतो मणे ।

हे दर्भमय मणे, मेरे शत्रुओं को भस्म कर, मेरे लिए सेना एकत्रित करना चाहने वाले शत्रुओं को भस्म कर, दूषित हृदय वाले सब शत्रुओं को भस्म कर । मुझसे द्वेष रखने वालों को भस्म कर ।

शतपथ ब्राह्मण[5] में नष्ट करना अर्थ में उष् धातु का प्रयोग देखिये—

स यत्पूर्वोऽस्मात् । सर्वस्मातसर्वान् पाप्मन औषतस्मात्पुरुष ओषति ह वै स तं योऽस्मात्पूर्वो बुभूषति य एवं वेद ।

---

१. काश०धा० १।२६०

२. श०क०द्रु०कोष १।२७५ पृ०

३. ११।३०।८

४. १६।२६।७

५. १४।४।२।२

चूंकि इसने सबसे पहले पापों को दग्ध किया इसलिए इसका नाम पुरुष हुआ। जो भेद को समझता है और इस संसार में श्रेष्ठ होना चाहता है, वह अपने पापों को दग्ध कर देता है।

बृहदारण्यक उपनिषद्[1] में भी उपर्युक्त पंक्ति ही वर्णित है।

भट्टिकाव्य[2] में उष् धातु का प्रयोग देखिये—

ओषाञ्चकार कामाग्निः।

कामाग्नि ने (रावण को) जलाया।

भट्टिकाव्य[3] में ही एक अन्य स्थल पर देखिए—

चिचेत रामस्तत् कृच्छ्रमोषाञ्चक्रे शुचाथ सः

रामचन्द्र ने होश में आकर कष्ट कर अनुभव किया, तब वे शोक से दग्ध हुए।

कन्नड़ भाषा[4] में उषित शब्द उष् धातु से व्युत्पन्न है। उषित शब्द का अर्थ जला हुआ है।

बंगला भाषा[5] में उष शब्द दाह और वध का वाचक है।

इस प्रकार उष् धातु के प्रयोगों को देखते हुए स्पष्ट हो जाता है कि उष् धातु आग से जलकर भस्म होना अर्थ में प्रचलित रही है। भस्म होना अर्थ ही मुख्यार्थ है किन्तु बाद में धात्वर्थ के क्षेत्र में विकास हुआ और प्रकरणवश शोक से दग्ध होना, कामाग्नि से दग्ध होना, अर्थों में प्रयुक्त होने लगी।

मान्[6] (मान) पूजायाम् (आ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम।

अर्च्चे विचारे कविकल्पद्रुम।

टीकाकार[7] चन्नवीर ने इसकी व्याख्या आदर अर्थ में की है—

---

१. १।४।१

२. ६।१

३. १४।६२

४. क०हिं०कोष पृ० १००

५. बं०श०कोष १।४५१

६. पा०धा० १।६६०, क्षीर० १।६६८, धा०प्र० १।६८०, चा०धा० १।४६०, जै०धा० १।४६०, काश०धा० १।५६१, कात०धा० १।४६६, शाक०धा० १।१५७, है०धा० , क०क०द्रु०धा० २२२

७. का०धा० १।१५६

पूजायाम्—आदरे; मीमांसते—आद्रियते ।

सामान्यतः अवस्था में वृद्ध, गुरुजनों को आदरसूचक मान्य माननीय शब्दों से सम्बोधित करते हैं।

पूजा अर्थ में मान् धातु से निष्पन्न मान्य, माननीय शब्दों का व्यवहार होता है । पूजा से तात्पर्य यहाँ आदर, सत्कार है । पूजा अर्थ सभी वैयाकरणों को अभिप्रेत है, अतः एक ही उदाहरण देना पर्याप्त है—

रामायण[1] में देखिए—

अश्विनो मानार्थं हि सर्वलोकपितामहः,
सर्वाविध्यत्वमतुलमनयोर्दत्तवान् पुरा ।

सम्पूर्ण लोगों के पितामह ब्रह्मा ने अश्विनीकुमारों का मान रखने के लिए इन दोनों को अनुपम वर दिया कि तुम्हें कोई भी मार नहीं सकता ।

विचार करना अर्थ में मान् धातु अत्यधिक प्रयुक्त हुई है—

अथर्वसंहिता[2] में देखिए—

तं देवा **अमीमांसन्त** वशेया३मवशेति ।

उसी समय देवताओं ने मीमांसा की कि यह वशा है या अवशा है ।

अथर्वसंहिता[3] में देखिए—

पश्यन्त्यस्याश्चरितं पृथिव्यां पृथङ्नरो बहुधा **मीमांसमानाः** ।

मनुष्य इसके चरित्र की अनेक प्रकार से **मीमांसा करके** इसके चरित्र को पृथिवी में अनेक रूप वाला देखते हैं ।

शतपथ ब्राह्मण[4] में देखिए—

त्वं नेविष्ठं याज्ञवल्क्याग्निहोत्रस्या**मीमांसिष्ठाः** ।

अनर्घराघव[5] में देखिये—

मीमांसयते किमार्यो यंऽकौशिकेऽप्यनुशासति ।

इस प्रकार विचार करना अर्थ में मान् धातु प्रचलित है ।

मीमांसा षड्दर्शनान्तर्गत है । पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा शास्त्र के ये दो भाग हैं । जैमिनि-प्रणीत यज्ञादिकर्मकाण्ड की निरूपिका पूर्वमीमांसा है

---

१. ५।६०।२
२. १२।४।४२
३. ९।१।३
४. ११।६।२।४
५. २।५८

एवं उत्तरमीमांसा ब्रह्मनिरूपिका है। मीमांसाशास्त्र के अध्येता को मीमांसक कहा जाता है—

मीमांसमधीते वेद वेति मीमांसकः।

निर्वचनात्मक अर्थ के अनुसार जो व्यक्ति मीमांसा शास्त्र को समझता है, उस पर विचार करता है, उस व्यक्ति के लिए मीमांसते तिङन्त का प्रयोग होना चाहिए था, किन्तु चरित्र पर विचार करने, अपने गोत्र की जाँच पड़ताल अर्थ में मान् धातु के प्रयोग देखे गये हैं। इस प्रकार मीमांसा शब्द अपने संकुचित अर्थ मीमांसा शास्त्र नामक विचारणा को छोड़कर किसी भी प्रकार की जाँच पड़ताल, किसी पर भी विचार करना अर्थ में प्रयुक्त होता है। इस प्रकार मान् धातु के अर्थ में अर्थविस्तार स्पष्ट है।

विट्[1] (विट) शब्दे (प०)—काशकृत्स्न।

टीकाकार चन्नवीर[2] ने विट् शब्दे धात्वर्थ की व्याख्या हँसने अर्थ में की है—

विट शब्दे—हास्यशब्दे—वेटति - हसति।

संस्कृत साहित्य में विट् धातु के प्रयोग अनुपलब्ध हैं। मराठी भाषा[3] में विटंबणें क्रिया उपहास करना, मजाक उड़ाना अर्थ में प्रयुक्त होती है। स्यात् चन्नवीर मराठी भाषा से प्रभावित हैं।

मुण्ड्[4] (मुडि) प्रमर्दने, खण्डने (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, हैम।
छिदि मर्दे — कविकल्पद्रुम।
खण्डने — चान्द्र, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन।

मुण्ड् (मुडि) मार्जने (आ०)—पाणिनीय, धातुप्रदीप, चान्द्र, शाकटायन, हैम।

---

१. काश०धा० १।११०
२. वही
३. म०व्यु० कोष पृ० ६५८, म०श०कोष ६।
४. पा०धा० १।२२०, २१८, १७८, क्षीर० १।१७८, २११, २२३, धा०प्र० १। , चा०धा० १।१०६, ३८१, जै०धा० १।४६४, काश०धा० १।१८०, ४४४, कात०धा० १।१०७, ३६५, शाक०धा० १।६४२, है०धा० १। , क०क०द्रु०धा० १६३, १६४

मज्जने	क्षीरतरंगिणी, काशकृत्स्न, कातन्त्र ।
शुद्धौ	जैनेन्द्र ।
मग्ने	कविकल्पद्रुम ।

सायण[1] मार्ज्जन धात्वर्थ की व्याख्या शुद्धि अर्थ में करते हैं--

शुद्धिर्न्यग्भावो मार्ज्जनम् ।

दुर्गादास टीकाकार[2] वोपदेवनिर्दिष्ट छिदि धात्वर्थ की व्याख्या केश-छेदन अर्थ में करते हैं—

छेद इह लोमच्छेद एव ।

मुण्डति मुण्डं नापितः, लोमरहितं करोतीत्यर्थः ।

वोपदेवनिर्दिष्ट मुडि छिदि धात्वर्थ से किसी भी प्रकार का छेदन लिया जा सकता था किन्तु दुर्गादास टीकाकार ने केशच्छेदन अर्थ में व्याख्या कर छिदि धात्वर्थ के क्षेत्र को सीमित कर दिया है ।

केशच्छेदन अर्थ में मुण्ड् धातु का पाठ उचित ही जान पड़ता है । हिन्दुओं में यह प्रथा प्रचलित है कि नवजात बच्चे का छः महीने अथवा एक साल की अवधि में (अपने-अपने रीति रिवाज़ के अनुसार एक निश्चित समय के बाद) मुण्डन संस्कार किया जाता है ।

मुण्डन शब्द मुण्ड् धातु से व्युत्पन्न है ।

मृच्छकटिक[3] में मुण्डितं शब्द का सुन्दर श्लोक देखिए—

शिरो मुण्डितं तुण्डं मुण्डितं चित्तं न मुण्डितं किमर्थं मुण्डितम्,
यस्य पुनश्च चित्तं मुण्डितं साधु सुष्ठु शिरस्तस्य मुण्डितम् ।

सिर मुंडा लिया, मुंह मुड़ा लिया, किन्तु यदि चित्त नहीं मुंडाया (साफ किया) किसलिए मुंडाया ? और फिर जिसका चित्त अच्छे प्रकार से मुंडा हुआ है, उसका सिर भलीभांति मुंड गया है ।

यहां चित्त को पवित्र करना, अन्तःकरण की शुद्धि अर्थ में मुण्ड् धातु प्रयुक्त हुई है । अतः धातुपाठों में मार्जन अर्थ में मुण्ड् धातु का पाठ उचित ही है । मार्जन अर्थ से किसी भी पदार्थ-द्रव्य की शुद्धि की जा सकती है । मज्जने धात्वर्थ से भी शरीर की शुद्धि ही समझनी चाहिए । मुण्ड् धातु सामान्यतः सिर मुंडाने अर्थ में प्रसिद्ध है—

---

१. माध०धा० १।१७८

२. श०क०द्रु० कोष ३।७४२

३. ८।३।११

रामायण के सुन्दरकाण्ड[1] में देखिये—

रावणश्च मया दृष्टो **मुण्ड**स्तैलसमुक्षितः ।

मैंने सिर मुंड़ाये हुए, तेल से नहाये हुए रावण को देखा ।

वायु पुराण[2] में देखिए—

अर्द्धं शकानां शिरसो **मुण्डयित्वा** व्यसर्जयत् ।

मुद्राराक्षस[3] में देखिए—

क्षपणक, उपासक, मुण्डितमुण्डस्त्वं नक्षत्राणि पृच्छसि ?

क्षपणक, उपासक, सिर मुंडाकर तुम नक्षत्र पूछ रहे हो ?

इस प्रकार मुण्ड् धातु सिर मुंडाने अर्थ में प्रसिद्ध है । केशच्छेदन से सिर की सफाई हो जाती है । मुण्ड धातु धीरे-धीरे चित्त के पवित्रीकरण अर्थ में भी प्रयुक्त होने लगी, इस प्रकार अर्थ की दिशा में विकास हुआ ।

लट्[4] (लट) बाल्ये (प०) —पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र ।

बाल्ये च जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम ।

बाल्योधत्योः कविकल्पद्रुम ।

चकार पाठ से 'परिभाषण' अर्थ का संग्रह होता है ।

क्षीरस्वामी[5] बालक्रिया अर्थ में बाल्यम् धात्वर्थ की व्याख्या करते हैं—

बाल्यम्—बालक्रिया ।

टीकाकार चन्नवीरकृत[6] व्याख्या इस प्रकार है—

बाल्ये च—बालक्रियायाम्, अव्यक्तध्वनौ च ।

लटति—अव्यक्तं शब्दयति (तुतलाता है)।

टीकाकार दुर्गादास[7] को देखिए—

बालोऽज्ञः, तस्य भावो बाल्यं व्यामोह इति यावत् ।

लटति लोकः शिशुः स्यात् ।

किञ्चिद्वदति वेत्यर्थः ।

---

१. ५।२२
२. २६।१३९
३. ५।३
४. पा०धा० १।१९८, क्षीर० १।२००, धा०प्र० १।२९६, चा०धा० १।८७, जै०धा० १।४९४, काश०धा० १।८६, कात०धा० १।८५, शाक०धा० १।५६१, है०धा० १।२१०, क०क०द्रु०धा० १४३
५. १।२००
६. काश०धा० १।८६
७. श०क०द्रु०कोष ४।२०४

यहाँ शिशु की क्रियाएँ खेलना, तुतलाना आदि अर्थ न लेकर बहुत विस्तृत अर्थ लिया गया है। नवजात शिशु को जिस प्रकार से किसी भी बात का ज्ञान नहीं होता, उसी प्रकार से यह संसार भी अज्ञानी है, मोह माया के बन्धन में फंसा हुआ है। तत्वमसि, अहं ब्रह्मास्मि का ज्ञान न होने के कारण पुनर्जन्म के चक्र में फंसा रहता है। इस प्रकार दुर्गादास अज्ञान मितभाषी अर्थ में लट् धातु मानते हैं।

संस्कृत भाषा[1] में लटक: शब्द दुर्जन का वाचक है—

लटति यथेच्छया वदतीति लटक:।

मराठी भाषा[2] में भी लटक शब्द दुर्जन का वाचक है एवं लटीकवाद वायदा न निभाना अर्थ का वाचक है—

देतो म्हणून बोललों आतां जर न दिल्हें तर,
मजकले लटीकवाद येकले।

दुर्जन यथेच्छया बोलते हैं। अत: परिभाषण अर्थ में लट् धातु स्पष्ट है, किन्तु बाल्यभाव मितभाषी अर्थ में लट् धातु के प्रयोग अनुपलब्ध हैं।

भण्ड् (भडि) परिहासे (आ०)—कातन्त्र।

कुत्सायाम्	काशकृत्स्न।
पारिभाषणे	पाणिनि, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, चान्द्र, जैनेन्द्र, शाकटायन, हैम, कविकल्पद्रुम।

परिहासे और कुत्सायाम् धात्वर्थ अन्य वैयाकरणों ने नहीं लिए हैं, किन्तु भण्ड् धातु परिहास और कुत्सा अर्थ में प्रचलित है—

कन्नड़ भाषा[4] में भण्डन शब्द हंसोड़ा अर्थ में प्रयुक्त होता है। भण्डन शब्द भण्ड् परिहासे धातु से व्युत्पन्न है।

भंडन शब्द दुष्टता, लड़ाई के उपक्रम का वाचक है। जो दुष्ट होगा, निन्दा अवश्य करेगा अत:; निन्दा अर्थ स्पष्ट है।

---

१. श०क०द्रु०कोष ४।२०४

२. म०श० कोष

३. पा० धा० १।१७६, क्षीर० १।१७६, धा०प्र० १।२७०, चा०धा० १।३८०, जै०धा० १। , काश० धा० १।१७१, ४४३, कात०धा० १।३६४' शाक०धा० १।१०१, है०धा० १। , क०क०द्रु०धा० २०१

४. क०हि०कोष पृ० ३६०

लङ्घ[1] (लघि) अनुगत्योः (आ०)—कविकल्पद्रुम ।

अन्य वैयाकरणों ने उपवास अर्थ में लङ्घ् धातु का पाठ नहीं किया है, अतः विचारणीय है कि उपवास अर्थ में लङ्घ धातु प्रचलित है या नहीं ।

शिशुपालवध[2] में लङ्घन शब्द उपवास अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—

स्रस्ताङ्गसन्धौ विगताक्षपाटवे रुजा निकामं विकलीकृते रथे,
आप्तेन तक्ष्णा भिषजेव तत्क्षणं प्रचक्रमे लङ्घनपूर्वकः क्रमः ।

ढीली पड़ी हुई पहियों की सन्धि वाले, नष्ट हुई धुरे की शक्ति वाले रथ के टूटने से निकम्मे होने पर चतुर बढ़ई ने पादक्रमणपूर्वक कार्य (रथ को सुधारने का कार्य) इस प्रकार आरम्भ कर दिया, जिस प्रकार शिथिल अंगों के जोड़ वाले नष्ट हुई नेत्रादि इन्द्रियों की सामर्थ्य वाले (अतएव) रोग से अत्यन्त विकल होने पर निपुण वैद्य उपवासपूर्वक चिकित्सा कार्य को आरम्भ कर देता है ।

लङ्घनम्—पादेनाक्रमणम् उपवासश्च ।

सिन्धी भाषा[3] में लङ्घ शब्द व्रत रखना अर्थ में प्रचलित है ।

मराठी भाषा[4] में उपवास अर्थ में लंघन शब्द का प्रयोग होता है, उदाहरणार्थ—ज्ञानेश्वरी ग्रन्थ में देखिये—

प्राकृत भाषा[5] में लंघइ, लघेइ शब्दों का प्रयोग उपवास अर्थ में होता है ।

बंगला साहित्य महाभारत[6] में भी लङ्घ शब्द उपवास अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

कित्[7] (कित) निवासे रोगापनयने च (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी,

---

१. क०क०द्रु०धा० ६८
२. १२।२५
३. सि०डि०
४. १७।५०
५. पा०म०
६.
७. पा०धा० १।७१३, क्षीर० १।२७०, धा०प्र० १।१००१, चा०धा० १।३०५, जै०धा० १।४६२, काश०धा० १।३७२, कात०धा० १।२६१, शाक०धा० १।४३६, है०धा० १।२८६, क०क०द्रु०धा० १८०

	धातुप्रदीप, काशकृत्स्न, कातन्त्र ।
निवासे	चान्द्र, जैनेन्द्र, शाकटायन, हैम ।
संशयेच्छावासारोग्ये	कविकल्पद्रुम ।

निवास (वास) अर्थ में कित् धातु का प्रयोग सभी वैयाकरणों को अभिप्रेत है, किन्तु रोगापनयन, संशय, इच्छा अर्थ में वैयाकरणों में अनैक्य है ।

निवास अर्थ में केतनः, निकेतनम् शब्दों का प्रयोग बहुलतया हुआ है, अतः एक-दो उदाहरण देना ही पर्याप्त होगा—

विसर्जिताथ सा तेन गता शल्य**निकेतनम्**[1] ।

विदा की हुई वह वरारोहा शाल्व के **स्थान** पर गई ।

वनमुपगम्य महेन्द्रकृत**केतनः**[2] ।

निवास अर्थ में कित् धातु के तिङन्त रूप उपलब्ध नहीं हैं ।

रोगापनयन अर्थ में कित् धातु के प्रयोग देखिए—

तैत्तिरीय ब्राह्मण[3]—

पशवोऽ**चिकित्सन्** ।

अन्नपूर्ण उपनिषद्[4]—

योगशिखा उपनिषद्[5]—

संशय अर्थ में—विचिकित्सति, मनः संशते ।[6]

मराठी भाषा में कित शब्द संशय अर्थ में एवं केत शब्द इच्छा अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—

श्रीमद्दासबोधग्रन्थ[7] में देखिए—

नाना कित निवारिले ।

एक अन्य उदाहरण—

---

१. दे०भा०पु० १।२०।४२

२. वा०रा० १।७५।८

३. ३।७।६।२

४. २।१

५. ६।५९

६. श०क०द्रु०कोष २।१२६

७. १।१।१२

यथे न मानव । किंत । हा मृत्युलोक विख्यात ।
प्रगट जाणसी समस्ता लाहान थोर ।[1]

इच्छा अर्थ में राधाविलास ग्रन्थ[2] में केत शब्द का प्रयोग हुआ है ।

यज्[3] (यज) देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु (उ०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, शाकटायन, हैम ।

देवपूजायाम् — चान्द्र ।

देवार्च्चादानसङ्गक्तौ — कविकल्पद्रुम ।

काशकृत्स्न धातुपाठ के टीकाकार चन्नवीर देवपूजासंगतिकरणदानेषु धात्वर्थ में निर्दिष्ट संगतिकरण शब्द को संगति और करण दो पृथक्-पृथक् पद मानकर व्याख्या करते हैं—

देवपूजासंगतिकरणदानेषु—देवपूजाया, धारणे, करणे, दाने च[4] ।

सङ्गतिकरण से तात्पर्य सामान्यतः सज्जनों से मेलमिलाप करना है। सङ्गतिकरण अर्थ यज् धातु का गौण अर्थ है। यज्ञ जैसे पवित्र अवसर पर लोगों की उपस्थिति स्वाभाविक है, अतः सज्जनों के साथ मेल-मिलाप हो जाता है। टीकाकार चन्नवीरकृत धारण और करण अर्थ में सङ्गतिकरण पद की व्याख्या धात्वर्थ को नष्ट करने के बजाय भ्रम को उपस्थित करती है।

चन्नवीरकृत व्याख्या के अनुसार—

सः वस्त्रं दधाति ।
सः कार्यं करोति ।

इन वाक्यों के स्थान पर यदि

सः वस्त्रं यजति ।
सः कार्यं यजति ।

वाक्यों का प्रयोग करें तो वे अपने सही अर्थ का बोध करायेंगे किन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं देखा जाता। धारण अर्थ में डुधाञ् और करना अर्थ

---

१. ३।६।४२
२. द्र०म०व्यु०कोष
३. पा०धा० १।७२४, क्षीर० १।७२६, धा०प्र० १।   , चा०धा०१।६३०, जै०धा० १।   , काश०धा० १।६६६, कात०धा० १।६०८, शक०धा० १।८६१, है०धा० १।   , क०क०द्रु०धा० १२६
४. काश०धा० १।६६६

में डुकृञ् धातु का प्रयोग देखा जाता है। अतः धारण और करण भिन्नार्थ न होकर एकार्थ हैं। धारण करना यज्ञ से सम्बद्ध है। धारण करना अर्थात् यज्ञ के निष्पादन अर्थ में यज् धातु का प्रयोग करें तो पूर्वपद यज्ञम् होना चाहिए—

यज्ञं यजति।

तभी यज् धातु करणवाची हो सकती है। ऋक् संहिता[1] में 'जीवयाजं यजते' प्रयोग हुआ है, किन्तु ऐसे प्रयोग विरले ही हैं, न के बराबर। सामान्यतः यजति तिङन्त रूप के प्रयोगमात्र से ही यज्ञ करना अर्थ स्पष्ट हो जाता है, यज्ञम् शब्द के प्रयोग की आवश्यकता नहीं रह जाती।

रुह्[2] (रुह) बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च (प०)—पाणिनीय।

बीजजन्मनि	क्षीरतरंगिणी, शाकटायन।
प्रादुर्भावे	चान्द्र।
जनने	जैनेन्द्र।
जन्मनि	काशकृत्स्न।
जन्याम्	कविकल्पद्रुम।

टीकाकार चन्नवीरकृत[3] व्याख्या इस प्रकार है—

जन्मनि—प्रसवे रोहति प्रसूते

रूह रूहम् रोहठाम् रोहणीयम्—चत्वारोऽङ्कुरे।

इन सब धात्वर्थनिर्देशों को देखते हुए यह विचारणीय है—बीजजन्मनि, जन्मनि, प्रादुर्भावे अर्थ एक दूसरे के स्थानापन्न हैं अर्थात् एकार्थी हैं, अथवा भिन्न-भिन्न अर्थ के द्योतक हैं? यदि ये अर्थ एकार्थक हैं, तो इन तीनों अर्थों में से कौन-सा अर्थ धात्वर्थबोध कराने में अधिक सशक्त है? और यदि ये अर्थ-निर्देश भिन्न-भिन्न अर्थ के द्योतक हैं तो आज इन अर्थों में से कौन-सा अर्थ अधिक प्रचलित है?

ऋक् संहिता[4] में ऊपर चढ़ना अर्थ में रुह् धातु प्रयुक्त हुआ है—

दिवा रोहांस्यरुहत्पृथिव्या अरीरमत्पतयत्कच्चिदभ्वम्।

---

१. १।३१।५

२. पा०धा० १।५८९, क्षीर० १।५९८, धा०प्र० १।८६२, चा०धा० १।५८६, जै०धा० १।४९२, काश०धा० १।६५८, कात०धा० १।५६७, शाक०धा० , है०धा० १।९८८, क०क०द्रु०धा० ३४९

३. काश०धा० १।६५८

४. ६।७१।५

शतपथ ब्राह्मण[1] में इसी अर्थ में रुह् धातु का प्रयोग देखिए—

रोहिण्यामु ह वै पशवः। अग्नी आदधिरे मनुष्याणां काम रोहेमेति ते मनुष्याणां काममरोहयन्।

रोहिणी नक्षत्र में ही पशु अग्नियों का आधान करते हैं कि मनुष्यों की इच्छा तक **चढ़ सकें**। उन्होंने मनुष्य की कामनाओं तक **रोहण किया**।

बृहदारण्यक उपनिषद्[2] में वृक्ष का अंकुरित होना एवं मनुष्य के जन्म अर्थ में रुह् धातु का प्रयोग मिलता है—

यद् वृक्षो वृक्णो **रोहति** मूलान्नवतरः पुनः।
मर्त्यः स्विन्मृत्युना वृषणः कस्मान्मूलात् प्ररोहति।

यदि वृक्ष को काट दिया जाता है जो अपने मूल से **पुनः** और भी नवीन होकर **अंकुरित हो जाता है**। इस प्रकार यदि मनुष्य को मृत्यु काट डाले तो वह किस मूल से **उत्पन्न होगा**।

भागवत पुराण[3] में अङ्कुरोत्पत्ति अर्थ में रुह् धातु का प्रयोग हुआ है—

कामधियस्त्वयि रचिता न परम रोहन्ति यथा करम्भबीजानि।

आपके प्रति की हुई विषयवासनाएं वैसे ही कर्मफलदायिनी नहीं होतीं जैसे चुने बीजों से **अंकुर उत्पन्न नहीं होते**।

रघुवंश काव्य[4] में सौंपना अर्थ में रुह् धातु का प्रयोग हुआ है—

गुणवत्सु **रोपितश्रियः**।

योग्य पुत्रों को राज्य का भार **सौंपकर**।

बुद्धचरित[5] में उगना अर्थ में रुह् धातु का प्रयोग देखिए—

कामरागाग्निदग्धे तु धर्मो हृदि न **रोहति**।

कामरूप अग्नि से दग्ध हृदय में फिर से धर्म नहीं **उगता**।

बुद्धचरित[6] में ही एक अन्य प्रयोग देखिए—

ऋतुभूम्यम्बुविरहाद्यथा बीजं न **रोहति**;
रोहति प्रत्ययैस्तैस्तैस्तद्वत्सोऽपि मतो मम।

---

१. २।१।२।७
२. ३।९।८
३. ६।१६।३९
४. ८।११
५. २३।३९
६. १३।७२

जैसे ऋतुभूमि व जल के अभाव से बीज **अंकुरित नहीं होता है** और उन प्रत्ययों के होने से **अंकुरित होता है**, वैसे ही मैं उसे भी मानता हूँ।

पंचतन्त्र[1] में घाव भरना अर्थ में रुह् धातु का प्रयोग देखिए—

रोहति सायकैर्विद्धं, छिन्नं **रोहति** वासिना।
वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न **प्ररोहति** वाक्क्षतम्॥

वाणों से विद्ध अंग भर **जाता है**, तलवार का घाव भी **पूरा हो जाता है** किन्तु वाणी से विद्ध हृदय कभी नहीं **भरता**, इसलिए दुर्वाच्य और घृणास्पद वचन कभी नहीं बोलना चाहिए।

राजतरंगिणी[2] में विघ्नों का उपस्थित होना अर्थ में रुह् धातु प्रयुक्त हुई है—

हितं लोकोत्तरं किंचिच्चिकीर्षसन्नतात्मनः,
रोहन्ति हा धिक्प्रत्यूहा मितपुण्यतया नृणाम्।

जनता के कल्याणार्थ कोई लोकोत्तर कार्य करने वाले उदार पुरुषों के कार्य में पुण्यों की अल्पतावश अवश्य विघ्न **उपस्थित होते हैं**।

राजतरंगिणी में ही एक अन्य स्थल पर रुह् धातु (पितृद्रोहरूपी पापमय वृक्ष का) अंकुरित, पल्लवित होना अर्थ में प्रयुक्त हुई है—

स **रोहद्** द्रोहसंकल्पजन्मना पाप्मनाश्रितः।

(धूर्त की सतत प्रेरणा से राजपुत्र के मन में) पितृद्रोहरूपी पापमय वृक्ष **अंकुरित** तथा **पल्लवित हो गया**।

राजरंगिणी[4] में ही एक अन्य स्थल पर (भ्रान्त बुद्धि का) उत्पन्न होना अर्थ में रुह् धातु का प्रयोग देखिए—

अतिकारुण्यमिषतस्तवायं पृथिवीपते,
कश्चिन्मतिविपर्यासप्रकारो हृदि **रोहति**।

हे राजन्, मुझे ऐसा लगता है कि दया के आधिक्य से आपकी बुद्धि कुछ भ्रान्त सी हो गई है।

इस प्रकार इन उदाहरणों को देखते हुए स्पष्ट है कि रुह् धातु बीजोत्पत्ति अर्थ से ही सम्बद्ध है किन्तु अर्थविस्तार होने से विघ्नों का उगना, मनुष्य का

---

१. काकोलूकीयम् ३।१११
२. १।१५८
३. ७।६२७
४.

उत्पन्न होना, भ्रान्त बुद्धि का उत्पन्न होना अर्थ में प्रकरणवश रुह् धातु का प्रयोग हुआ है। जिनेन्द्रबुद्धि, काशकृत्स्न आदि वैयाकरणों ने जन्मनि, जनने धात्वर्थों का निर्देश कर रुह् धातु के अर्थक्षेत्र को विस्तृत कर दिया है।

पाणिनिकृत बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च अर्थनिर्देश में प्रादुर्भाव से उन्हें मनुष्य की उत्पत्ति अर्थ अभिप्रेत होगा।

बंगला भाषा[1] में रुह् शब्द जन्म, बीजोत्पत्ति, स्फूर्ति अर्थों में प्रचलित है।

कन्नड़ भाषा[2] में रुहिसु क्रिया प्रकट हो, रूपित हो अर्थ में प्रयुक्त होती है।

तुदादिगण

कुड्[3] (कुड) बाल्ये (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, धातुप्रदीप, काशकृत्स्न।

बाहुल्ये	चान्द्र।
बाल्ये च	जैनेन्द्र, कातन्त्र, शाकटायन, हैम।
बाल्ये दमे	कविकल्पद्रुम।

चकार पाठ से यहाँ कुड् धातु से पूर्व पठित कूड धातु के धसने अर्थ का संग्रह होता है।

टीकाकार चन्नवीर[4] ने बाल्ये धात्वर्थ की व्याख्या क्रीडा अर्थ में की है—

बाल्ये—बालभावे, कुडति—क्रीडति

टीकाकार दुर्गादास[5] भी बाल्ये धात्वर्थ की व्याख्या बच्चों का खेलना अर्थ में करते हैं—

बाल्यमिह शिशुव्यापारः।
कुडति, अकुडीत सिताभिः शिशुः।

---

१. बं०श०कोष २।१६२५
२. क०हि०कोष पृ० ३८८
३. पा०धा०६।८८, क्षीर० ६।८५, धा०प्र० ६।१०३, चा०धा० ६।८४, जै० धा० ६।५०१, काश०धा० ५।१९८, कात०धा० ५।६४५, शाक०धा० ७।१३८०, है०धा० ५।१३०, क०क०द्रु०धा० १५५
४. काश०धा० ५।१९८
५. श०क०द्रु०कोष

संस्कृत साहित्य में कुड् धातु के प्रयोग अनुपलब्ध हैं किन्तु सिन्धी, कन्नड़ भाषाओं से क्रीडा एवं अदन (घसन) अर्थ में कुड् धातु से व्युत्पन्न शब्दों का प्रयोग मिला है ।

सिन्धी भाषा[1] में कुडण शब्द खेलना अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है । पंजाबी भाषा[2] में कुड़ी शब्द बालिका के लिए प्रयुक्त होता है ।

कन्नड़ भाषा[3] में कुड़िके शब्द छोटे बर्तनों का वाचक है, जिनसे छोटी-छोटी लड़कियाँ खेला करती हैं । इस प्रकार कन्नड़ कुड़िके शब्द कुड् धातु के बालक्रीडा अर्थ में प्रचलित होने की ओर ही संकेत कर रहा है । बेकार बैठकर जो व्यक्ति खाता रहता है, उस व्यक्ति के लिए कन्नड़ भाषा में कूतकोंडु शब्द का प्रयोग किया जाता है ।

चान्द्र धातुपाठ में कुड् बाहुल्ये धात्वर्थनिर्देश चिन्त्य है । बहुलस्य भावः बाहुल्यम् । बाहुल्य शब्द का अर्थ अधिकता है । बाहुल्ये अर्थ में प्रमाण उपलब्ध नहीं है ।

कुड् धातु बालक्रीडा अर्थ में अधिक प्रसिद्ध है । अदन अर्थ में भी प्रमाण कम ही हैं ।

चुरादिगण

पुस्त्[4] (पुस्त) आदरानादरयोः (प०)—पाणिनीय, क्षीरतरंगिणी, जैनेन्द्र, काशकृत्स्न, कातन्त्र, हैम ।

संघाते, आदरानादरयोः धातुप्रदीप ।

वन्देऽनाहत्याहत्योः कविकल्पद्रुम ।

ग्रन्थवाचक पुस्तक शब्द पुस्त् आदरे धातु से व्युत्पन्न है। पुस्तक को सर्वदा सम्मान की दृष्टि से ही देखा जाता है ।

---

१. सि०डि० पृ०

२.

३. क०हि० कोष पृ० १८५

४. पा०धा० १०।४७, क्षीर० १०।४८, धा०प्र० १०।६७, जै०धा० १०।५०३, काश०धा० ९।४१, काश०धा० ९।१०८२, है०धा० ९।७९-८०, क०क० द्रु०धा० १८२

हरिवंश पुराण[1] में कहा गया है—

मानं वक्ष्ये पुस्तकस्य शृणु देवि, समासतः;
मानेनास्य फलं विन्द्यादमाने श्रीर्हता भवेत् ।

पन्नों के समूह से ही पुस्तक बनती है, स्यात् इसी आशय से मैत्रेयरक्षित ने संघात अर्थ में पुस्त् धातु का पाठ किया है ।

लेप्यादिशिल्पकर्म पुस्त शब्द से व्यवहृत होता है । अमर टीका[2] में कहा गया है—

मृदा वा दारुणा वाथ वस्त्रेणाप्यथ चर्म्मणा,
लोहरत्नैः कृतं वापि पुस्तमित्यभिधीयते ।

लेप्यादि शिल्पकर्म से व्यक्ति मजदूरी भी करते हैं किन्तु उनके इस कार्य को आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता । इस प्रकार आदर, अनादर दोनों अर्थ एक दूसरे से विपरीतार्थक हैं, पुस्त् धातु का इन दोनों अर्थों में ही प्रयोग देखा जाता है ।[3]

बंगला भाषा में पुस्त शब्द बन्धन, आदर, अनादर, लेपनादिक्रिया अर्थों का वाचक है ।

---

१. २५६।७६
२. अ०को० २।१०।२८
३. बं०श० कोष २।१३५१

उपसंहार

प्रस्तुत अध्ययन के उपरान्त कुछ बातें, जिन्होंने समष्टि रूप में विचारों को प्रभावित किया, इस प्रकार हैं—

धातुपाठों में उल्लिखित धातुएँ परस्मैपदी, आत्मनेपदी और उभयपदी तीनों प्रकार की हैं। पाणिनीय धातुपाठ में परस्मैपदी धातुओं के वर्ग में आत्मनेपदी और आत्मनेपदी धातुओं के वर्ग में उभयपदी धातुओं का पाठ किया गया है। भू धातु के बाद परस्मैपदी धातुओं का वर्ग ही आना चाहिए था, किन्तु ऐसा न कर आत्मनेपदी धातुएँ रखी गई हैं। सेट् धातुओं में अनिट् धातुओं का पाठ किया गया है, व्यञ्जनान्त धातुओं में भी दन्त्यवर्णान्त धातुओं का पाठ कण्ठ्यवर्णान्त धातुओं से पूर्व किया गया है। जबकि क्रम इससे विपरीत होना चाहिए था। इस प्रकार क्रम को ध्यान में न रखते हुए पाणिनि ने अतुल्यजातीय पदार्थों का सन्निवेश किया है। धातुओं को क्रम में न रखने से पाणिनि का कोई विशेष प्रयोजन तो सिद्ध नहीं होता, अतः ऐसा प्रतीत होता है कि पाणिनि ने ऐसे स्थलों को प्राग्धातुपाठों से अविकलरूप में संगृहीत करके पूर्वाचार्यों के प्रति आदरभाव व्यक्त किया है। चान्द्र, कातन्त्र, काशकृत्स्न, शाकटायन धातुपाठों में धातुएँ क्रमपूर्वक पढ़ी गई हैं। आनुपूर्वी की दृष्टि से हैम धातुपाठ अन्य धातुपाठों की अपेक्षा वैज्ञानिक है। हैम धातुपाठ में धातुएँ अकारादिक्रम से रखी गई हैं एवं प्रत्येक गण एक विशिष्ट अनुबन्ध में समाप्त होता है और इस गण की प्रत्येक धातु उस अनुबन्ध से युक्त है जिससे धातुओं के गण की परीक्षा में सरलता होती है।

धात्वर्थनिर्देश की परम्परा प्राचीन समय से चली आ रही है। प्राचीन पाणिनीय धातुपाठ में भी धातुएँ अर्थसहित निर्दिष्ट हैं। कतिपय वैयाकरण पाणिनीय धातुपाठ में भी निर्दिष्टार्थ भीमसेनप्रोक्त मानते हैं। महाभाष्य-टीका में हमें पाणिनीय और भीमसेनीय दोनों प्रकार के प्रमाण उपलब्ध हैं; अतः यही निष्कर्ष निकलता है कि पाणिनि ने संहिता रूप में एवं अर्थसहित दोनों प्रकार

से धातुएँ पढ़ी थीं। पाणिनीय धातुपाठ के लघु और बृहद् दो पाठ रहे होंगे। संहिता रूप में पठित धातुओं का पाठ लघुपाठ रहा होगा, बृहत्पाठ में धातुएँ अर्थसहित होंगी। भीमसेन ने धात्वर्थों को ग्रन्थरूप में निबद्ध किया होगा। इसमें भी प्रामाणिक बुद्धि नहीं उत्पन्न हो सकती किन्तु भीमसेनीय धात्वर्थ-निर्देश में प्रमाण उपलब्ध होने के कारण भीमसेन का निराकरण भी नहीं किया जा सकता। अतः मेरे विचार में भीमसेन ने धात्वर्थों का परिष्कार किया होगा, आज जो पाणिनीय धातुपाठ उपलब्ध है वह सायणद्वारा परिष्कृत है।

धातुपाठों में धातुएँ कहीं एकार्थी हैं और कहीं अनेकार्थी हैं। एकार्थी धातुओं की प्रतिशत संख्या अपेक्षाकृत अधिक है और चान्द्र धातुपाठ में एकार्थी धातुओं की संख्या सब धातुपाठों से अधिक है। एकार्थी, अनेकार्थी धातुओं में भी अर्थनिर्देश कहीं भावकृदन्त शब्दों से हुआ है, कहीं कारककृदन्त शब्दों हुआ है; कहीं समस्त असमस्त उभयविध पदों से हुआ है; कहीं भावकर्मतद्धितान्त शब्दों से हुआ है; 'कगे नोच्यते' 'वनु च नोच्यते' भी धात्वर्थनिर्देश के वैचित्र्य को द्योतित करते हैं। इस प्रकार धात्वर्थनिर्देश अनेक प्रकारों से किया गया है, धात्वर्थनिर्देश की शैली में अनेकरूपता है। कतिपय वैयाकरणों के मत में 'च' युक्त समस्त पदों से अर्थनिर्देश एवं जहाँ समस्त, असमस्त उभयविध पदों से अर्थनिर्देश किया गया है, उनमें असमस्त पद पश्चाद्वर्ती विद्वानों द्वारा विहित है। उनके मत में यदि एक ही व्यक्ति द्वारा अर्थनिर्देश किया गया होता तो उभयविध पदों मे न होकर एक ही समस्त पद में होता। कुछ वैयाकरणों के मत में चकार-पाठ से जो अर्थनिर्देश किया गया है, वह धात्वर्थ के विरल प्रयोग को सूचित करता है। किन्तु मेरा विचार है कि चकार-पाठ से अर्थनिर्देश एवं उभयविध पदों में असमस्त पद से अर्थनिर्देश पश्चाद्वर्त्ती विद्वानों द्वारा विहित नहीं है, बल्कि ये प्रकार रचनाशैली की पद्धति के वैचित्र्य को ही द्योतित करते हैं। धात्वर्थनिर्देश भिन्न-भिन्न प्रकारों में किया गया है, अतः चयुक्त समस्त पद एवं उभयविध पदों से धात्वर्थनिर्देश को भी धात्वर्थनिर्देशशैली के प्रकार के अन्तर्गत ही समझना चाहिए।

इसी प्रकार कगे नोच्यते, वनु च नोच्यते धात्वर्थ के सम्बन्ध में भी वैयाकरण मतभेद रखते हैं। 'नोच्यते' से तात्पर्य अर्थनिर्देश नहीं किया गया माना जाता है। अर्थनिर्देश न करने में विभिन्न वैयाकरणों ने विभिन्न कारण दिये हैं: (क) धातु अनेकार्थी हैं (ख) धातु क्रियासामान्यवाची है (ग) कगे वनु धातुओं के अर्थ अनिश्चित हैं। ये तीनों कारण अपने आप में खण्डित हो जाते

है । कृ धातु क्रियासामान्यवाची होते हुए भी धातुपाठों में अर्थसहित निर्दिष्ट है । अव् धातु १९ अर्थों में पढ़ी गई है, अतः अनेकार्थी है । धातुपाठों में धातुएँ जिन-जिन अर्थों में निर्दिष्ट हैं केवल उतने ही अर्थों में प्रयुक्त होती हैं ऐसा नहीं है—'प्रयोगतोऽनुगन्तव्या अनेकार्था हि धातवः' । मेरा जहाँ तक विचार है, कगे और वनु धातुएँ घटादि प्रकरण में पढ़ी गई हैं और पाणिनि को उनकी मित् संज्ञा अभिप्रेत नहीं है, अतः नोच्यते पद के प्रयोग से उन्होंने अपना मत स्पष्ट किया है । पाणिनि यदि चाहते तो वे अन्य प्रकरण में कगे, वनु धातुओं का पाठ कर सकते थे तब मित् संज्ञा का अपने आप ही निषेध हो जाता किन्तु ऐसा न कर उन्होंने पूर्ववर्त्ती वैयाकरणों द्वारा जिस स्थल पर उसका निर्देश किया था, उसी स्थल पर रखकर पूर्ववर्त्ती वैयाकरणों के प्रति आदर भाव व्यक्त किया है ।

भावकृदन्त शब्दों से जो धात्वर्थनिर्देश किये गये हैं वे क्रिया को व्यक्त न कर संज्ञा या क्रिया की विशेषता को प्रकट करते हैं। कारककृदन्त और अव्युत्पन्न शब्दों से जो धात्वर्थनिर्देश किये गए हैं वे या तो विशेषण हैं या संज्ञावाची शब्द हैं, अतः उनमें भी क्रिया अव्यक्त है । अतिदेश से धात्वर्थनिर्देश में भी एक धातु के अर्थ को दूसरी धातु के अर्थ के रूप में रखा गया है, अतः क्रिया व्यक्त नहीं है और कविकल्पद्रुम अतिदेश-धात्वर्थनिर्देश के आधिक्य से ही क्लिष्ट हो गया है—एक धातु के अर्थ को देखने के लिए अनेक धातुओं को देखना पड़ता है । गति, शब्द और हिंसा अर्थ में भी धातुओं का बहुत बड़ा वर्ग है; किन्तु सभी गत्यर्थक, शब्दार्थक तथा हिंसार्थक धातुओं का केवल गतौ, शब्दे, हिंसायाम् अर्थनिर्देश करने से उनकी विशिष्ट गति, शब्द, हिंसा का बोध नहीं होता, अतः वे अस्पष्टार्थ की कोटि में आ जाती हैं । इस प्रकार व्यक्त क्रियावाची धात्वर्थों की न्यूनता एवं अव्यक्त क्रियावाची धात्वर्थों की अधिकता है । व्यक्त क्रियावाची धात्वर्थों की अधिकतम संख्या ६ प्रतिशत है और वह जैनेन्द्र धातुपाठ में है ।

धातुपाठों में अर्थनिर्देश सूत्रशैली में है, अतः वर्तते, भाष्यते क्रियापद लुप्त हैं । पाणिनि से पूर्ववर्त्ती आचार्यों की शैली में वर्तते, भाष्यते विधेयपदों का प्रयोग हुआ है एवं 'कर्माणः' उत्तरपद से धात्वर्थनिर्देश प्रचुर संख्या में हैं ; किन्तु पाणिनि के समय में 'कर्माणः' उत्तरपद का स्थान अर्थ उत्तरपद ने ले लिया और पाणिनि के बाद यह शैली उत्तरोत्तर कम होने लगी और भाव-कृदन्त शब्दों से धात्वर्थनिर्देश अधिक होने लगा ।

चुरादिगणपठित 'पट पुट-भाषार्थाः' धातुसूत्र के सम्बन्ध में कतिपय वैयाकरणों का मत है कि 'भाषार्थाः' पद अपने आप में धात्वर्थ नहीं है। भाषार्थाः पद से तात्पर्य उनके मत में 'भाषा से जानना चाहिए' है, अर्थात् इन धातुओं के अर्थ अनिश्चित हैं, साहित्य में इनके प्रयोगों को देखकर इनके अर्थ निश्चित कर लेने चाहिए। किन्तु भाषार्थाः, भासार्थाः पद अपने आप में धात्वर्थ हैं—(भाषा अर्थः येषां ते, भासः अर्थः येषां ते)। पट्, पुट् धातुओं के प्रयोग भी शब्द एवं दीप्ति अर्थ में मिले हैं। 'भाषार्थाः' अर्थ से यहाँ केवल स्पष्टवाक् न होकर अस्पष्ट वाक् का भी ग्रहण होता है।

यही इस अध्ययन का निष्कर्ष है।

परिशिष्ट

धातुओं का अकारादिक्रम

२३६ श्रिव	१८०	२५३ हय्	१४५
२३७ श्यै	१८०	२५४ हा	१८३
२३८ सिध्	२५३	२५५ हि	१८३
२३९ सिम्म्	२५३	२५६ हिक्क्	२१६
२४० सृ	१६९	२५७ हिष्क्	२७५
२४१ सृप्	१७९	२५८ हिण्ड्	१३९
२४२ सेल्	१४९	२५९ हुड्	१३२
२४३ स्रु	१७०	२६० हुण्ड्	२८२
२४४ स्कन्द्	१७८	२६१ हूड्	१३२
२४५ स्खल्	१५०	२६२ होड्	१३२
२४६ स्तृह्	२७०	२६३ हेष्	१९९
२४७ स्फुर्	७०	२६४ हिंस्	२७२
२४८ स्पन्द्	९७	२६५ हर्य्	१४६
२४९ स्यम्	२१९	२६६ ह्लस्	२२५
२५० स्वन्	२०३	२६७ ह्लाद्	२०२
२५१ हन्	१८०, २६४	२६८ ह्लेष्	२९०
२५२ हम्म्	१३७	२६९ ह्वल्	१६०

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

अथर्ववेद—विश्वेश्वरानन्द-वैदिक-शोध संस्थान, होशियारपुर।

अनर्घराघव (सम्पा०) श्री रामचन्द्र मिश्र, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१, १९६०

अभिज्ञानशाकुन्तल—एम०आर० काले, बुकसेलर्स पब्लिशिंग कम्बा०, बम्बई ४४, १९६१

अमरुशतक (सम्पा०) चिन्तामन रामचन्द्र देवधर, औरियण्टल बुक एजेन्सी १५, पूना-२

अष्टाध्यायी (सम्पा०) श्रीशचन्द्र वसु, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद, १८९१

आगमशास्त्र (सम्पा०) विधुशेखर भट्टाचार्य, यूनिवर्सिटी ऑफ़ कलकत्ता, १९४३

आपस्तम्बधर्मसूत्र (सम्पा०) प०अ० चिन्नस्वामी शास्त्री, जयकृष्णदास हरिदास गुप्त, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ ऑफ़िस, बनारस सिटी, १९३२

आपस्तम्बश्रौतसूत्र (सम्पा०) प०अ० चिन्नस्वामी शास्त्री, ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, १९५५

आर्यमंजुश्रीमूलकल्प (सम्पा०) परशुराम शर्मा, महायान-सूत्र-संग्रह, द्वितीय खण्ड, मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा, १९६४

आश्वलायन गृह्यसूत्र (सम्पा०) टी० गणपति शास्त्री, अनन्तशयन त्रिवेन्द्रम्, १९२३

आश्वलायनश्रौतसूत्र (सम्पा०), हरिनारायण आप्टे, आनन्दाश्रम मुद्रणालय, १९१७

ईशावास्योपनिषत् (सम्पा०) नारायण रामाचार्य, निर्णय सागर मुद्रणालय, मुंबई-२, १९४८

उत्तररामचरित (सम्पा०) जनार्दन शास्त्री पाण्डेय, मोतीलाल बनारसीदास, १९७०

ऋग्वेदसंहिता, सम्पा० एन० एस० सोनटणवे, वैदिक संशोधन मण्डल, २-५ मण्डल १९३६, ६-८ १९४१, ९-१० १९४६

ऐतरेयब्राह्मण (सम्पा०) अनन्तकृष्ण शास्त्री, त्रिवेन्द्रम् भाग-१, १९४२, भाग-२, १९५२, भाग-३ १९५५

कठोपनिषत् (सम्पा०) नारायण रामाचार्य, निर्णयसागर मुद्रणालय, मुंबई-२, १९४८

कथासरित्सागर (सम्पा०), केदारनाथ शर्मा सारस्वत, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना-३, १९६०

कविकल्पद्रुम धातुपाठ (सम्पा०), जी० बी० पलसुले, पूना १९५४

काठकसंहिता (सम्पा०) श्रीपाद शर्मा सातवलेकर, व० श्री० सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, मुंबई, १९४३

कातन्त्रधातुपाठ (दुर्गसिंह) अप्रकाशित, जिज्ञासु शोध भवन, सोनीपत ।

कातन्त्रव्याकरण (सम्पा०) श्री गुरुनाथ भट्टाचार्य, कलकत्ता, बंगाल, १९१६

कात्यायनश्रौतसूत्र, भाग-१ (सम्पा०) पं० नित्यानन्द पन्त, भाग-२, पं० गोपाल शास्त्री नेने, जयकृष्णदास हरिदास गुप्त, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, विद्याविलास प्रेस, बनारस, १९३९

कात्यायनश्रौतसूत्र (सम्पा०), वेबर, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ ऑफ़िस, वाराणसी-१

कालिदास-ग्रन्थावली (सम्पा०) रामप्रताप त्रिपाठी, किताव महल प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

काव्यप्रकाश (सम्पा०) डॉ० नगेन्द्र, वाराणसी ज्ञानमण्डल लि०

काशकृत्स्न धातुव्याख्यान (सम्पा०), युधिष्ठिर मीमांसक, भारतीय प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, अजमेर

काशिका (न्यास व्याख्या) (सम्पा०) श्रीशचन्द्र चक्रवर्ती, नरेन्द्र रिसर्च सोसाइटी ऑफ़ राजशाही, बंगाल, १९१३-१६

काशिका (पदमंजरी व्याख्या), मैडिकल हाल यन्त्रालय, काशी, सं० १९५२

किरातार्जुनीय (सम्पा०) प० शोभित मिश्र, चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला, बनारस, १९५२

कौशिकसूत्र—जर्नल ऑफ़ अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी, भाग १४, न्यू

हैवन, फ़ार द अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी, १९८०

गीतगोविन्द (सम्पा०) आर्येन्द्र शर्मा, खाण्डेराव पाण्डेय, संस्कृत परिषद् उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद-७, १९६९

गोपथब्राह्मण (सम्पा०), राजेन्द्रपाल मित्र, बिबलिओथिका इण्डिका, कलकत्ता, १८७२

गर्भोपनिषत् (सम्पा०) नारायण रामाचार्य, निर्णय सागर मुद्रणालय मुंबई-२, १९४८

गायत्रीरहस्योपनिषत्, अप्रकाशित उपनिषत्संग्रह, अड्यार पुस्तकालय, १९४८

गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर १९६६

चरकसंहिता (सम्पा०), जयदेव विद्यालंकार, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली-७, १९६६

चान्द्रधातुपाठ (सम्पा०) लोबिश लिवजिग, जर्मन, १९०२

छान्दोग्योपनिषद् (शाङ्कर भाष्य), गीता प्रेस गोरखपुर, सं १९९४

जैनेन्द्रधातुपाठ (जैनेन्द्र महावृत्तिस्थ) (सम्पा०) प० शम्भुनाथ त्रिपाठी, १९५६

जमिनीयब्राह्मण (सम्पा०) रघुवीर, लोकेशचन्द्र, सरस्वती विहार, नागपुर, १९५४

ताण्ड्यमहाब्राह्मण (सम्पा०) चिन्नस्वामी, पट्टाभिराम शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, बनारस, १९३५

तेजोबिन्दूपनिषत् (सम्पा०) नारायण रामाचार्य, निर्णय सागर मुद्रणालय, मुंबई-२, १९४८

तैत्तिरीयारण्यक (सम्पा०) बाबा शास्त्री फड़के, विनायक गणेश आप्टे, आनन्दाश्रम मुद्रणालय, १९२६

तैत्तिरीयब्राह्मण, सम्पा० गोडबोले, विनायक गणेश आप्टे, आनन्दाश्रम मुद्रणालय, १९३४

तैत्तिरीयसंहिता, श्रीपादशर्मा स्वाध्यायमण्डल, सूरत, १९५७

दशकुमारचरित (सम्पा०), पं० रामतेज शास्त्री, पं० केदारनाथ, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, बनारस १९४८

दूतवाक्य (सम्पा०) अनन्तराम शास्त्री बेताल, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, वाराणसी-१, १९६३

दैवम्—भारतीय प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, अजमेर, संवत् २०१९

धातुप्रदीप (सम्पा०) श्रीशचन्द्र चक्रवर्ती, विमल चरण मैत्र, वरेन्द्र रिसर्च सोसाइटी, राजशाही, १९१९

नवसाहसाङ्कचरित (परिमल पद्मगुप्त), चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१, १९६३

नागानन्द (श्री हर्ष), आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली-६

नारदपरिव्राजकोपनिषत् (सम्पा०) नारायण रामाचार्य, निर्णय सागर मुद्रणालय, मुंबई-२, १९४८

निरुक्त (निघण्टु सहित) सम्पा० परमेश्वरानन्द शास्त्री, मेहरचन्द लक्ष्मणदास, दरियागंज, दिल्ली-६, १९६४

नैषधीयचरित (सम्पा०), त्रिभुवन प्रसाद उपाध्याय, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ आफ़िस, वाराणसी-१, १९६१

पाणिनीयधातुपाठ (माधवीयधातुवृत्तिस्थ) सायण, (सम्पा०) स्वामी द्वारिका दास शास्त्री, तारा पब्लिकेशन्स, वाराणसी, १९६४

पञ्चतन्त्र (सम्पा०) पं० रामचन्द्र झा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१, १९५९

पद्मपुराण (रविषेण), (सम्पा०) पं० पन्नालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, १९५९

प्रक्रियाकौमुदी (सम्पा०) कमलाशंकर, संस्कृत प्राकृत ग्रन्थमाला, भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना, १९२५

प्रतापरुद्रीय (विद्यानाथ) (सम्पा०) डॉ० वे० राघव पूर्वमाडवीथि, मद्रास-४, १९७०

प्रतिमा (सम्पा०) डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, रामनारायण लाल इलाहाबाद, १९५८

प्रसन्नराघव (जयदेव) चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१, १९७२

बालचरित—चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१, १९६१

बुद्धचरित—चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९६२-६३

बृहज्जाबालोपनिषत् (सम्पा०) नारायण रामाचार्य, निर्णय सागर मुद्रणालय, मुंबई-२, १९४८

बौधायनधर्मसूत्र (सम्पा०) श्री चिन्नस्वामी शास्त्री, जयकृष्णदास हरिदास गुप्त, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ आफ़िस, बनारस, १९३४

भट्टिकाव्य—चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, बनारस-१, १९५१-५२

भविष्यमहापुराण—खेमराज श्रीकृष्णदास, वैंकटेश्वर स्टीम प्रेस, मुंबई, १९५९

भागवत महापुराण—पण्डित पुस्तकालय, काशी, १९५२

भामिनीविलास (सम्पा०) हरदत्त शर्मा, ओरियण्टल बुक एजेन्सी, पूना, १९३५

भावप्रकाश (भावमित्र) मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, दिल्ली-६, १९५८

मत्स्यपुराण—खेमराज श्रीकृष्णदास, वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस

मनुस्मृति (सम्पा०) नारायण रामाचार्य, सत्यभामाबाई पाण्डुरंग, निर्णय-सागर मुद्रणालय, १९४६

महाभारत—गीता प्रेस, गोरखपुर

महाभारत (नीलकण्ठ टीका), सदाशिव वीथि, चित्रशाला प्रेस, पूना,

महाभारत (सम्पा०) वी० एस० सुखथांकर, भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीटयूट, पूना, १९५९

महाभाष्य (सम्पा०) भार्गवशास्त्री, शिवदत्त रघुनाथ, सत्यभामाबाई पाण्डुरंग, निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई, १९५१

महाभाष्य-दीपिका (सम्पा०), के० वी० अभ्यंकर, भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, १९७०

महावीरचरित, चौखम्बा विद्याभवन, बनारस-१, १९५५

महावीरचरित (सम्पा०) आनन्दीराम बरूह, १९६९

मानवश्रौतसूत्र (सम्पा०) आचार्य रघुवीर, इण्टरनेशनल एकाडमी ऑफ इण्डियन कल्चर, हौज़ ख़ास एन्क्लेव, नई दिल्ली-१६, १९६३

मार्कण्डेयपुराण—खेमराज श्रीकृष्णदास, श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस मुम्बई, १९५९

मालतीमाधव (सम्पा०) शेषराज शर्मा शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ बनारस, १९५४

मीमांसादर्शन—विनायक गणेश आपटे, आनन्दाश्रम मुद्रणालय, १९२९
मृच्छकटिक (सम्पा०) रामानुज ओझा, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ ऑफ़िस, बनारस, १९५४
मेघदूत (सम्पा०) संसारचन्द्र, मोतीलाल बनारसीदास, १९७०
मैत्रायणी उपनिषत् (सम्पा०) नारायण रामाचार्य, निर्णयसागर मुद्रणालय, मुंबई-२, १९४८
मैत्रायणीसंहिता (सम्पा०) पादशर्मा, स्वाध्यायमण्डल, भारत मुद्रणालय, औंधनगर, मुंबई प्रान्त, वि० सं० १९९८
मुद्राराक्षस (सम्पा०) एम० आर० काले, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९६५
याज्ञवल्क्यस्मृति—हरिनारायण आप्टे, आनन्दाश्रम मुद्रणालय, १९०४
योगचूडामण्युपनिषत्—नारायण रामाचार्य, निर्णय सागर मुद्रणालय, मुंबई-२, १९४८
रघुवंश—चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, बनारस-१, १९५३
राजतरंगिणी (सम्पा०) पाण्डेय रामतेज शास्त्री, पण्डित पुस्तकालय, काशी, १९६०
रामपूर्वतापिन्युपनिषत् — नारायण रामाचार्य, निर्णय सागर मुद्रणालय, १९४८
रामायण—गीता प्रेस गोरखपुर, संवत् २०२४
लघुमंजूषा—चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ आफ़िस, विद्याविलास प्रेस, बनारस
वाक्यपदीय—पुण्यराज टीका भाग-२ (सम्पा०), बलदेव उपाध्याय, वाराणसी, १९६८
वाक्यपदीय—ब्रह्मकाण्ड, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफ़िस, वाराणसी-१, १९६१
वाक्यपदीय—हेलाराज टीका भाग-३ (सम्पा०) गोस्वामी दामोदर, कृष्णदास गुप्त ब्रजभूषणदास एण्ड कम्पनी, बनारस संस्कृत सीरीज, १९२८
वाजसनेयिसंहिता—पाण्डुरंग जावजी, निर्णय सागर प्रेस बम्बई, १९२९
विक्रमांकदेवचरित (सम्पा०)—विश्वनाथ शास्त्री भारद्वाज, हिन्दू विश्वविद्यालयीय संस्कृत साहित्य अनुसन्धान समिति, १९५८
विक्रमोर्वशीय—रामनारायणलाल बेनीमाधव, इलाहाबाद-२, प्रथम संस्करण

विष्णुपुराण—गीता प्रेस, गोरखपुर

वेणीसंहार (भट्टनारायण) चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, वाराणसी-१, १९५३

वैखानसधर्मसूत्र (प्रश्न) (सम्पा०), टी० गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम, १९१३

वैतानश्रौतसूत्र (सम्पा०) विश्वबन्धु, वी० वी० आर० आई० प्रेस, होशियारपुर, १९६७

व्याकरणमहाभाष्य (सम्पा०)—एस्० डी० जोशी, पूना यूनिवर्सिटी, १९७५

शतक-त्रय (सम्पा०) दामोदर धर्मानन्द कोसंबी, भारतीय विद्या भवन, मुंबई, १९४६

शतपथ ब्राह्मण—गंगा विष्णु; श्री कृष्णदास लक्ष्मी वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस मुंबई, १९४०

शब्दकौस्तुभ (सम्पा०) पं० गोपाल शास्त्री नेने, जयकृष्णदास हरिदास गुप्त, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ आफ़िस बनारस १९३३

शाकटायनधातुपाठ (पाल्यकीर्ति शाकटायन) लाजरस कम्पनी प्रेस, बनारस

शांखायनगृह्यसूत्र (सम्पा०) एस०आर० सहगल, राजोरी गार्डन, नई दिल्ली-१५, १९६०

शिवोपनिषत्—अप्रकाशित उपनिषत् संग्रह, अड्यार पुस्तकालय, १९३३

शिवराजविजय (अम्बिकादत्त व्यास), बनारस, १९५२

शिशुपालवध (सम्पा०) भगवानदत्त मिश्र, चौखम्बा विद्याभवन, बनारस-१, १९५५

श्वेताश्वतरोपनिषत् (सम्पा०), नारायण रामाचार्य, निर्णयसागर मुद्रणालय, मुंबई-२, १९४८

षड्विंशब्राह्मण (सम्पा०), डा० वे० रामचन्द्र शर्मा, केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति, १९६७

सामरहस्योपनिषत्—अप्रकाशित उपनिषत् संग्रह, अड्यार पुस्तकालय, १९३३

साहित्यदर्पण (विश्वनाथ), मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली-७, १९७३

सिद्धान्तकौमुदी (सम्पा०), श्रीपरमेश्वरानन्द शर्मा, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९६०

सुश्रुतसंहिता (सम्पा०) त्रिविक्रम यादव शर्मा, नारायण रामाचार्य, पाण्डुरंग, जावजी, मुंबई, शक १९८०

हरिवंशपुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर

हितोपदेश, पण्डित पुस्तकालय, काशी

हिन्दीधातुसंग्रह, हार्नली

हैम धातुपाठ (हैमप्रकाश महाव्याकरणस्थ) उत्तरार्द्ध (सम्पा०) श्री विजय क्षमाभद्र सूरि जी महाराज, मारवाड़

अग्रवाल वासुदेवशरण—पाणिनिकालीन भारतवर्ष, मोतीलाल बनारसीदास नेपाली खपरा, बनारस, २०१२ वि०

उपाध्याय बलदेव—संस्कृत शास्त्रों का इतिहास, शारदा मन्दिर, वाराणसी-१, १९७३

डॉ० गौरीनाथ शास्त्री—फ़िलासफ़ी आफ़ वर्ड एण्ड मीनिंग, संस्कृत कालेज, कलकत्ता, १९५९

डॉ० रामविलास शर्मा—भाषा और समाज, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा०) लि०, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली-१, १९६१

त्रिपाठी भागीरथप्रसाद—पाणिनीय धातुपाठसमीक्षा, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९६५

त्रिपाठी रामसुरेश—संस्कृत व्याकरण-दर्शन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-६, १९७२

द्विवेदी कपिलदेव—अर्थविज्ञान और व्याकरणदर्शन, हिन्दुस्तानी एकादमी उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, १९५१

नेमिचन्द्र—आचार्य हेमचन्द्र और उनका शब्दानुशासन-एक अध्ययन, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१, १९६३

प० चारुदेव—व्याकरणचन्द्रोदय, तृतीय भाग, मोतीलाल बनारसीदास, १९७१

पलसुले जी०बी०—द संस्कृत धातुपाठाज़ (अ क्रिटिकल स्टडी), डक्कन कालेज, पूना, १९६१

प्रेमी नाथूराम—जैन साहित्य और इतिहास, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर (प्रा०) लिमिटेड, मुंबई-२, १९५६

बेल्वल्कर, एस० के०—सिस्टम्स ऑफ़ संस्कृत ग्रामर, पूना, १९१५

ब्यूलर—लाइफ आफ़ हेमचन्द्र, पूना, १९३६

मीमांसक, युधिष्ठिर—संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास, भारतीय प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, अजमेर, संवत् २०१९

मुसलगांवकर—आचार्य हेमचन्द्र, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, १९७१

मैक्समूलर—भाषाविज्ञान पर भाषण, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ, १९६४

वर्मा, सत्यकाम—संस्कृत व्याकरण का उदभव और विकास, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली-७, १९७१

शाह अम्बालाल—जैन साहित्य का बृहद् इतिहास (सम्पा०) प० दलसुख मालवणिया, डॉ० मोहनलाल मेहता, १९६९

ह्विटनी—संस्कृत ग्रामर, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली-६, १९६२

ह्विटनी—रूट्स वर्ब-फार्म्स एण्ड प्राइमरी डेरिवेटिव्स ऑफ़् द संस्कृत लैंग्वेज, लिपज़िग, १८८५

प्राकृत

आचारांगसूत्र—पं० मुनि श्री कन्हैयालाल जी महाराज, श्री उ० भा० श्वे० स्था० जैन शास्त्रोद्धार समिति, राजकोट (सौराष्ट्र), १९५८

उत्तराध्ययन सूत्र—पं० मुनि श्री कन्हैयालालजी महाराज, श्री उ० भा० श्वे० स्था० जैनशास्त्रोद्धार समिति, राजकोट, सौराष्ट्र, १९५८

कर्पूरमंजरी (सम्पा०) नारायण रामाचार्य, निर्णयसागर मुद्रणालय, मुंबई, १९४१

काव्यानुशासन (हैमचन्द्र) सम्पा० प्रो० रसिक लाल सी० पारीख, वी० एम० कुलकर्णी, श्री महावीर जैन विद्यालय, मुंबई, १९६४

कुमारपाल प्रतिबोध (सोमप्रभाचार्य) (सम्पा०) मुनिराज जिन विजय, सेन्ट्रल लाइब्रेरी, बड़ोदा

गउडवह—भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना, १९२७

गाथासप्तशती (सम्पा०) डॉ० जगन्नाथ पाठक, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ ऑफिस, वाराणसी-१, १९६९

दाठावंस (सम्पा०), विमला चरनला, मोतीलाल बनारसीदास, द पंजाब

संस्कृत बुक डिपो, लाहौर, १९२५
दिव्यावदान (सम्पा०)—डॉ० पी० एल० वेष, मिथिला विद्यापीठ, १९५९
देशीनाममाल (सम्पा०) मुरलीधर बनर्जी, कलकत्ता यूनिवर्सिटी, १९३१
पउमचरिउ (सम्पा०) हरिवल्लभ चूनीलाल भायणी, सिंधी जैनशास्त्र शिक्षा-पीठ, भारतीय विद्या भवन, मुंबई-२, १९५३
पाइजलच्छीनाममाला (सम्पा०) वेचरदास जीवराज दोशी, काशीराम जैन ग्रन्थमाला, आर० सि० एच० बरड एण्ड को० २३९, अब्दुल रहमान स्ट्रीट, बम्बई-३, १९६०
प्रश्नव्याकरणसूत्र (सम्पा०)—श्रेष्ठि मंधुभाई तिलकचंद झवेरी, वेणीचन्द्र सूरजचन्द्र आगमोदय समिति, १९१९
प्राकृत व्याकरण(सम्पा०)—शङ्कर पाण्डुरंग पण्डित, द भण्डारकर ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, पूना, १९३०
भविसयक्षकहा (सम्पा०)—सी०डी० दलाल, ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा,
यशस्तिलकचम्पू (सम्पा०)—प० सुन्दरलाल शास्त्री, श्री महावीर जैन ग्रन्थ-माला, १९६०
विशेषावश्यक भाष्य (सम्पा०) राजेन्द्र विजय, दिव्यदर्शन कार्यालय, कालू-शीनी पोल, कालुपुर रोड, अहमदाबाद, वि० सं० २४८९
सनत्कुमारचरित (सम्पा०) फतहसिंह, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, १९६९
सूअगडांगसुध (सम्पा०) पुष्फभिक्खू, श्री सूत्रागमप्रकाश समिति, जैन स्थानक-रेलवे रोड, गुडगांव छावनी (पूर्व पंजाब)
सेतुबन्ध (सम्पा०) पण्डित शिवदत्त, पाण्डुरंग जीवजी, मुंबई, १९३५
स्थानांगसूत्र—प० मुनि कन्हैयालाल जी महाराज, अ०भा० श्वे० स्था० जैन शास्त्रोद्धार समिति, (राजकोट, सौराष्ट्र), १९६४
संयुत्तनिकाय पाली (सम्पा०) भिक्षु जे० कश्यप, पाली पब्लिकेशन बोर्ड, बिहार गवर्नमेण्ट, १९५९

बंगला

कविकंकणचण्डी—स्व० मुकुन्दराम चक्रवर्ती, जगन्नाथदास, कलकत्ता, चित्तपुर रोड, १९३०

विद्यापति-पदावली (सम्पा०) नगेन्द्रनाथ गुप्ता, क्षितीशचन्द्र मुखोपाध्याय, वसुमती साहित्य मन्दिर, कलकत्ता, १९३५

महाभारत—काशीराम दास (सम्पा०) स्वामी परमानन्द ग्रन्थ प्रकाश कलकत्ता

श्री धर्ममंगल—घनराम चक्रवर्ती (सम्पा०) पीयूषकान्ति महापात्र, कलकत्ता यूनिवर्सिटी, १९६२

मराठी

रुक्मिणीस्वयंवर—नरीन्द्र (सम्पा०) प्रो० गणेश महादेव डोलके, विदर्भ संशोधन मण्डल, नागपुर, १९७१

ज्ञानेश्वरीगूढार्थदीपिका—वेदान्तकेसरी श्री बाबा जी महाराज पण्डित, श्री ज्ञानेश्वर मथुराद्वैत सांप्रदायिक मंडल, दहिसाथ, अमरावती विदर्भ, १९६०

रुक्मिणीहरण—सामराज, महाराष्ट्र काव्यग्रन्थ शक १८२७

श्रीमद्दासबोधग्रन्थ—वोरा एण्ड कम्पनी पब्लिशर्स प्रा० लि०, मुंबई-२, १८८३

सर्वसंग्रह (कर्णपर्व)—मोरोपन्त, मुंबई, शक १७८३

शोधप्रबन्ध, लेख

धात्वर्थविज्ञानम्—शोधप्रबन्ध, भगीरथप्रसाद त्रिपाठी, वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय, २०२६ वि०

अनेकार्था हि धातवः—लेख, भागीरथ प्रसाद त्रिपाठी, सरस्वती सुषमा, विश्व-संस्कृत-सम्मेलनांक, २६ वर्ष, २ अंक, वे० सं० २०२८, कार्यालय अनुसन्धान संस्थान, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी-२

पाणिनीये धातुपाठेऽर्थनिर्देशः—लेख, पं० चारुदेव, द जर्नल ऑफ़ ओरियण्टल रिसर्च मद्रास, भाग २७, १८५७-५८

जैन शाकटायन काण्टेम्पोरेरी विद अमोघवर्ष फस्ट—लेख, के० बी० पाठक, इण्डियन एण्टिक्वेरी, १९१४ क्रमांक ४३

कोष

अमरकोष—श्रीमदमरसिंह, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ ऑफिस, वाराणसी-१ १९६८

उपनिषद्वाक्यकोष—जी० ए० जेकब, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९६३

कन्नड़हिन्दीकोष—डॉ० एन० एस० दक्षिणामूर्ति, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९७१

कम्पेरेटिव डिक्शनरी आफ् इण्डोआर्यन लैंग्वेज, आर० एल० टरनर, लन्दन आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, तोरोन्टो, १९६६

चतुर्वेद-वैयाकरण-पदसूची (सम्पा०) विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, १९६०

टेक्नीकल टर्म्स एण्ड टेक्नीक ऑफ् संस्कृत ग्रामर—के०सी० चटर्जी, कलकत्ता यूनिवर्सिटी, १९६९

डिक्शनरी आफ़् संस्कृत ग्रामर—के० वी० अभ्यंकर, ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, १९६१

डिस्क्रिप्टिव कैटलाग आफ़् संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट, भाग-६, हरप्रसाद शास्त्री, एशियाटिक सोसाइटी आफ़ बंगाल, कलकत्ता, १९३१

द पंजाबी डिक्शनरी—भाई मायासिंह, लेंग्वेज डिपार्टमेंट, पंजाबी वि०वि० पटियाला, १९६१

पंजाबी कोष—पंजाबी डिपार्टमेंट, पटियाला, १९५५

पाइअसद्दमहण्णव—पण्डित सेठ हरगोविन्द दास त्रिक्रमनंद, कलकत्ता, १९२८

बङ्गय शब्द-कोष—हरिचरण बन्द्योपाध्याय, साहित्य एकेडमी पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, १९६७

मराठी व्युत्पत्तिकोष—कृष्णाजी पाण्डुरंग कुलकर्णी, केशव मिकाजी ढवले, श्री आर्य समर्थ सदन, मुंबई-२, १९४६

महाराष्ट्री शब्दकोष (सम्पा०) श्री यशवन्त राम दाते श्री चिन्तामणि गणेश कर्वे, श्री आंबा चांदोरकर, चिन्तामणिशंकर दातार, महाराष्ट्र कोश-मण्डल लि०, पूना-२, १९३३

वाचस्पत्यम् कोष—तारानाथ भट्टाचार्य, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ वाराणसी-१ १९६२

वैदिक-पदानुक्रम-कोष सम्पा०—विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानन्द-वैदिक-शोध संस्थान, होशियारपुर, ब्राह्मण आरण्यक भाग, १९७३

वेदांग-सूत्र भाग, १९७१

शब्दकल्पद्रुम कोष—राजा राधाकान्तदेव, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९६१

संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी—मोनियर विलियम, आक्सफोर्ड क्लेरेण्डन प्रेस, १८९९

संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी—वी०एस्० आप्टे, प्रसाद प्रकाशन, पूना, १९५८

हिन्दी इंगलिश डिक्शनरी—परमानन्द मेवाराम, एस्० जे० कोऑपरेटिव सोसाइटी, हैदराबाद सिन्ध १९१०

हलायुधकोष (सम्पा०) जयशंकर जोशी, प्रकाशन व्यूरो, सूचना विभाग उत्तर प्रदेश, संस्कृत भवन, वाराणसी ।